समस्थान-सूत्र सार्थम

भाग-1

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

सर्वाधिकार सुरक्षित

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

समस्थानसूत्रसार्थम्

(प्रथमस्कंध)

(१३)

—०:०:०—

लेखक :—

अध्यात्मयोगि शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ

पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक वर्णी मनोहर जी 'सहजानन्द' महाराज

—::०::—

कार्य सम्पादक:—

पं० बिहारीलाल जी शास्त्री

—:०:—

प्रकाशक :—

मंत्री श्री सहजानन्द-शास्त्रमाला

प्रथम संस्करण प्रति २२००	वी० नि० सं० २४८०	मूल्य २)

१० प्रति खरीदने पर १ प्रति बिना मूल्य ।

❀ ॐ ❀

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

समस्थानसूत्रम्

अथप्रथमोऽध्यायः

मंगलाचरणम्

समं स्वज्ञं च सर्वज्ञं स्तुत्वा साम्याय शं स्वयम् ।
सूत्रयामि समस्थानं स्वोपयोगविशुद्धये ॥१॥

अन्वय—स्वयं शं समं स्वज्ञं च सर्वज्ञं साम्याय स्तुत्वा ।
स्वोपयोगविशुद्धये समस्थानं सूत्रयामि ॥

अर्थ—अपने आप सुखस्वरूप, रागद्वेष रहित होने से समतामय, निश्चय से आत्माके जानने वाले व व्यवहार से त्रिलोक त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य गुण पर्यायोंके जानने वाले परमात्मा को साम्यभाव के लिये स्तवन नमस्कार करके मैं अपने उपयोग की विशुद्धि के लिए समस्थानसूत्र को सूत्रित करता हूं (संक्षेप में रचता हूँ) ॥१॥

सूत्र—सर्वमद्वैतमद्वैतं स्वतः ॥२॥

अर्थ—अपनी अपनी अपेक्षा से सर्वपदार्थ एक एक ही है ॥

विशेषार्थ—अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव से वह पदार्थ एक है अद्वैत है, किसी भी पदार्थ में किसी भी पदार्थ के कोई प्रदेश, गुण या पर्याय सम्मिलित नहीं होते । वह आत्मा भी अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव चतुष्टय से अद्वैत है एक है । सर्व आत्मा का समुदाय रूप आत्मा एक नहीं है क्योंकि सर्व आत्माओं में रहने वाले ज्ञान सुख आदि गुण पृथक् पृथक् उन उन ही में हैं ।

शंका—आत्मा तो एक है परन्तु मन जुदे जुदे हैं इसलिए मनके व्यापार से जानना सुख होना जुदा जुदा हो गया है ।

समाधान—ज्ञान और सुखका उपादान मन नहीं है और न ज्ञान सुख मनकी क्रिया है किन्तु ज्ञान सुख मय इस आत्मा के कर्म शरीर को अपने अज्ञानवश अपनी ही स्वतन्त्रता से अधीनता होने की स्थिति में जैसे कितने ही ज्ञान और सुख में इन्द्रियां निमित्त कारण हैं इसी प्रकार कुछ ज्ञान और सुखों में मन निमित्त कारण है । ज्ञान और सुख कर उपादान विशिष्ट विशिष्ट स्थितियों में रहने वाला आत्मा ही है और वह ज्ञान सुख सबका पृथक् पृथक् है इसलिए उनका आश्रयभूत आत्मा भी सब अनेक हैं ।

शंका—यह आत्माकी अनेकता भ्रम से मालूम होती है जैसे कि सूर्य तो एक है परन्तु जल में प्रतिबिम्ब पड़ने से सूर्य अनेक दीखते हैं।

सामाधान—जलके प्रतिबिम्ब में दिखने वाला वह सूर्य नहीं है जो आकाश में किसी विशेष स्थल में भ्रमण करता है किन्तु उस सूर्यके निमित्त से प्रत्येक जलपात्र में वे जल के रूप गुणके ही विशेष परिणमन हैं इसलिए वे जल प्रतिबिम्ब अनेक हैं उनसे भिन्न वह सूर्य है जो वह एक है इसलिए इस दृष्टान्त से आत्मा की अनेकता का भ्रम सिद्ध नहीं होता।

शंका—आत्मा अनेक हों इसमें मुझे कोई विवाद नहीं है आत्मा अनेक ही हैं किन्तु अन्य द्रव्य क्या सब मिलकर एक हैं अथवा कितने हैं?

सामाधान—जैसे आत्मा अंनतानन्त हैं तो पुद्गल परमाणु उनसे भी अंनतानन्त गुणे हैं तथा धर्मद्रव्य एक है अधर्मद्रव्य एक है और आकाश द्रव्य एक है किन्तु कालाणु असख्यात हैं। इनका विस्तृत विवेचन सिद्धान्त ग्रन्थों से देख लेना चाहिये यहाँ इसके विवेचन का प्रकरण न होने से नहीं कह रहे हैं।

शंका—यह सब द्रव्य अनंतानन्त हैं किन्तु इनके अतिरिक्त अभी बहुत कुछ आपने छोड़ दिया है जैसे गुण ये तो

सबकीसंख्या से भी अनंतानन्त गुणे मौजूद हैं और फिर कर्म अनेक क्रियायें, तथा सामान्य, विशेष, समवाय आदि।

समाधान—द्रव्य तो जितने कहे उतने ही हैं प्रत्येक द्रव्य स्वयं अनंत शक्तिमान् है और वह प्रतिक्षण परिणमता रहता है जो इसकी शक्तियों की भेद कल्पना है वे ही तो गुणकहलाते और जो परिणमन है वह कर्म कहलाता और इन द्रव्यों में, ये जातीयता की सदृशता की कल्पना है वह सामान्य है और जो वैसादृश्य की तर्कणा है वह विशेष है। द्रव्य अखंड अनंत शक्तिमान् है उसे समझने के लिए गुणभेद की कल्पना है सो समझने के लिए बुद्धिकृत भिन्न गुणों का गुणी से तादात्म्य सम्बन्ध कहने के लिए समवाय शब्द प्रयुक्त कर दिया जाता। इस कारण से गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय ये पृथक् वस्तु नहीं हैं।

उत्थानिका—द्रव्यों की ऐसी इतनी व्यवस्था क्यों है? इस प्रकार प्रश्न होने पर कारण बताते हुये कहते हैं—

सूत्र—तत्र परानुपलब्धेः ॥२॥

अर्थ—एक वस्तु में पर किसी भी वस्तु की उपलब्धि नहीं है।

विशेषार्थ—यदि एक वस्तु में दूसरी वस्तु का प्रवेश हो

जाय तो कुछ भी सत् नहीं रह सकता यदि कहो नहीं रह सकता तो न रहो सो यह बात प्रत्यक्ष विरुद्ध है। इससे यह बात निर्विवाद है कि प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूप से अखण्ड एक है। अब इसी तत्व की सिद्धि के लिये द्वितीय कारण भी कहते हैं।

सूत्र—स्वस्यैवानुभवनाच्च ।

अर्थ—प्रत्येक वस्तु में अनुभवन-परिणमन खुद का ही होता है अतः वस्तु अखण्ड एक है।

विशेषार्थ—प्रत्येक वस्तु निज के द्रव्य गुण पर्याप्य रूप ही रहती है उसका उस रूप में ही परिणमन होता है। यदि कोई किसी का परिणमन या अनुभवन करने लगे तो पृथक्त्व व्यवस्था नहीं रहेगी और ऐसा होने पर वह एक कौन रहे इसकी व्यवस्था नहीं अतः सर्व का लोप (अभाव) हो जावेगा। अतः वस्तु स्वयं अखण्ड एक है। इस तरह अनेक द्रव्य जो स्वयं सत् हैं वर्णित करके वे सब एक हैं ऐसी प्रतीति और प्रसिद्ध का कारण बताते हुए सर्व की एकता सिद्ध करते हैं।

सूत्र—संग्रहात्सर्वमप्येकम् ।४।।

अर्थ—संग्रहनय से सर्व भी द्रव्य एक है।

विशेषतार्थ—किसी सादृश्य से उसके अन्तर्गत सर्व पदार्थों को एक जाति में समन्वित करके एक दृष्टि

बनाने वाले अभिप्राय को संग्रहनय कहते हैं इस दृष्टि में देखा जाय तो सर्व द्रव्य अर्थात् अनन्तानन्त जीव अनन्तानन्त पुद्गल, असंख्यात कालद्रव्य और एक एक धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य व आकाशद्रव्य ये सब एक हैं।

इस एकता का हेतु क्या है इस प्रश्न का होना अवश्यंभावी है जिसके उत्तर में कहते हैं—

सूत्र—सदपरित्यागात् ॥५॥

अर्थ—सभी द्रव्य सत् का परित्याग नहीं करते हैं अर्थात् सभी सत् हैं इसलिये सब सत् हैं एक हैं।

विशेषतार्थ—सत् नाम सत्ता से होते-रहने का है, प्रत्येक पदार्थ सत् है सबको मात्र सत्स्वरूप से देखते हैं तब कुछ भी भेदक तत्त्व नहीं रहने से सब एक है इस अभिप्राय में अन्य तत्व पर दृष्टि नहीं है अन्य दृष्टि होने पर वह महासत्ता के अभिप्राय से च्युत हो जाता है और अवान्तर सत्ता पर उपयुक्त होता है जिसकी दृष्टि में सर्व पदार्थ अपनी विशेषता के कारण अनेक हैं। यहाँ सत्सामान्य की दृष्टि से उपयुक्त हुआ जा रहा है अतः संग्रहनय से सर्वही एक है।

अब एक पने की दृष्टि में ऊर्ध्व ऊर्ध्व चलने वाले अभिप्रायों से यात्रा करने वाली दृष्टि से 'इस प्रकार तो

सत् होने पर भी एक ज्ञाता और एक सत् रूप विश्व दो पदार्थ तो होंगे ही' अपना मन्तव्य रखती है—

सूत्र—संकल्पाज्ज्ञानमात्रमेव ॥६॥

अर्थ—संकल्प अर्थात् नैगमनय से सर्व एक ज्ञानमात्र ही है।

विशेषार्थ—नैगमनय का अर्थ है—निगमः संकल्पस्तत्र भवो नैगमः नैगमश्चासौ नयश्चेति नैगमनयः। इस अभिप्राय में जो भी प्रतीत हो वह सब ज्ञान मात्र है, वस्तु स्वातन्त्र्य की दृष्टि से आत्मा आत्मा को ही जानता है पर को नहीं, ज्ञेयाकार विशिष्ट ज्ञान होने पर यह सर्व बाह्य प्रतीत होता है यदि निश्चयतः देखा जाय तो जिस सबको जाना है वह अन्तर्ज्ञेय ही है अतः सर्व ज्ञानमात्र है।

अब इस ही का हेतु कहते हैं—

सूत्र—ज्ञानानतिक्रमणात् ॥७॥

अर्थ—सर्व ज्ञेय ज्ञान का अतिक्रमण नहीं करते हैं अतः सर्व ज्ञानमात्र है।

विशेषार्थ—ऐसा किसी ज्ञाता के लिये कुछ नहीं है जो उसके ज्ञान का विषय न हो और वह सत् समझ सके। अथवा ज्ञान में प्रतिभासित होने पर ही ज्ञाता के द्वारा यह है ऐसा व्यवहार से निश्चय करते हैं अतः सब

पदार्थ ज्ञान का उल्लंघन नहीं करते अतः सर्व ज्ञानमात्र ही है।

इस तरह अद्वैत दृष्टि यात्रा करती हुई एक ज्ञान-मात्र भाव तक पहुंची वह ऐसा प्रश्न किये जाने पर "कि ऐसा एक भी जाना तो उसमें अनेक की अपेक्षा तो रहती है इससे भी कोई ऊर्ध्व दशा है" अपने बलिदान की भी परवाह न करके शब्दों से संकेत करती है—

सूत्र—परमभावे परमभावेन किञ्चिदपि न ॥८॥

अर्थ—परमभाव-अनुभव-निर्विकल्प दशा में परमभाव की अपेक्षा से कुछ भी नहीं है।

विशेषार्थ—पर्यायों को बोध करके पर्यायों के गुण में संक्षिप्त करे और गुणों को द्रव्य में अन्तर्धान करे फिर द्रव्य को ऐसी तीक्ष्ण सूक्ष्म दृष्टि से देखे कि द्रव्य का विकल्प न रहे मात्र अर्थानुभव रहे उस अनुपम अवस्था में परमभाव कहिये (पूर्णभाव को वर्णन करने वाला कोई नय नहीं है या विकल्प से भी समझा देने वाला नहीं है सो उसकी अपेक्षा) की अपेक्षा से कुछ भी नहीं है यह निरपेक्ष निर्विकल्प अद्वैत ठहर गया अब इसका हेतु कहते हैं।

सूत्र—विकल्पासत्त्वात् ॥९॥

अर्थ—उस परमभाव में विकल्प का असत्त्व होने से।

विशेषार्थ—जब तक विकल्प रहता है तब तक पूर्ण अर्थ का अनुभव नहीं होता क्योंकि विकल्प एक देश को ही विषय करते हैं। जब परमशुद्ध निश्चय नय की दृष्टि का अवलम्बन करके ऊर्ध्व ऊर्ध्व दृष्टि की यात्रा होती है तब वह दृष्टि दृष्टिपक्ष को छोड़कर अनुभव परिणमन में परिणत हो जाती है उस समय किसी भी नय पक्ष का अवकाश नहीं वहाँ एक पूर्ण अर्थ का अनुभवन ही है। अतः परमभाव में निरपेक्ष एक है।

अब इसी विषय में फलितार्थ कहते हैं—

सूत्र—सर्वमविकल्पमत एव ॥१०॥

अर्थ—इस ही कारण सर्व पदार्थ निर्विकल्प अखंड ही है।

विशेषार्थ—जैसे कि अनुभव में विकल्प नहीं हैं और पूर्ण अर्थ का अनुभव है वैसे ही पूर्णानुभव के ज्ञेय को देखें तो वह भी जो जैसा पूर्ण है वह वैसा ही अविकल्प पूर्ण है। वस्तु एक है अभेद्य है उसको समझाने के लिये एक एक गुण या पर्याय का अंश बुद्धि में लिया जाता है परन्तु पदार्थ तो पदार्थ में अविकल्प-अखण्ड ही है क्योंकि वस्तु में भेद नहीं है वह अभेद स्वभावी है। इस तरह सब वस्तु जो संग्रहनय की अपेक्षा एक भी है और विशिष्ट स्व स्व, सत्ता की अपेक्षा प्रत्येक एक है वह अविकल्प अखण्ड ही है।

इस विषय में हेतु कहते हैं।

सूत्र—याथात्म्यापरिभाषणाञ्च ॥११॥

अर्थ—वस्तु यथार्थ जैसा कि वह समग्रं आत्मा-स्वरूप है वैसा परिभाषण हो ही नहीं सकता अतः प्रत्येक वस्तु निर्विकल्प-अखण्ड है।

विशेषार्थ— प्रत्येक द्रव्य-द्रव्यदृष्टि से नित्य है तो पर्यायदृष्टि से अनित्य है इसी तरह एक है अनेक भी हैं इत्यादि अनेक विरुद्ध धर्मों का वस्तु में नय वश समन्वय है ऐसी अनेकानात्मक वस्तु का न तो किसी विकल्प में अन्तर्जल्प करने की शक्ति है और न वचनों से भी विवेचन हो सकता है तब वस्तु का याथात्म्य किसी भी प्रकार परिभाषित नहीं किया जा सकता है। इसलिये यह निःसंदेश सिद्ध है कि वस्तु अपने पूर्ण स्वभावमय है और वह अखण्ड है—निर्विकल्प है।

अब यहाँ शंका होती है— कि जब वस्तु का परिभाषण नहीं हो सकता विकल्प जल्प नहीं हो सकता तो यह उत्तम ही बात है बोलना बन्द हो गया तब सर्व सिद्धि ही है सारी आपत्ति तो बोल चाल राग संसर्ग से है वह तो होना बन्द हो जायेगा तब तो जीव सभी स्वस्थ हैं धर्म प्रवृत्ति की क्या आवश्यकता रहेगी इसके उत्तर में कहते हैं—

सूत्र—अन्तर्वहिर परिभाषणमप्यशक्यम् ॥१२॥

अर्थ—अन्तर्जल्प का न होना व बाह्य परिभाषण का न होना भी अशक्य है।

विशेषार्थ—वस्तु तो समग्र यथार्थ रूप से वक्तव्य भी नहीं विकल्प्य भी नहीं यह तो वस्तुविषयक बात है किन्तु जगत् के जन्तु ऐसा अपनी बुद्धि में कर सकने के लिये अशक्त हैं अर्थात् इन जीवों से बोले बिना विचारे बिना रहा ही नहीं जा सकता है। इसका कारण क्या है?

इसका उत्तर देते हैं—

सूत्र—मोहसंस्कारात् ॥१३॥

अर्थ—इस जीव के अनादि काल से मोहका संस्कार लगा हुआ है जिससे यह स्वरूप में निश्चित रह नहीं पाता और अन्तर्जल्प वहिर्भाषण करता है।

विशेषार्थ—यह जीव सुवर्ण पाषाण किटट् की तरह अनादि से ही कर्म नोकर्मवद्ध है जिनके उदयकाल में जीव अपनी विकृति से विभाव रूप परिणमता है। मन वचन काम रूप परिणमे नोकर्म के योग में बना रहता है अतः वह अपनी अविकल्प स्वभाव स्थिति में नहीं रह सकता है। तब यह अन्तर्जल्प भी करता है और बाह्य भाषण भी करता है।

इस प्रकार अन्तर्जल्प व परिभाषण करने पर क्या विशेषता होती है ऐसी आशंका होने पर कहते हैं—

सूत्र—ततश्च व्यवहारः ॥१४॥

अर्थ—वचनालाप से व्यवहार चलता है।

विशेषार्थ—यह समग्र सिद्धान्त–चर्या आदि रूप व्यवहार वचनालाप के बिना नहीं हो सकता और वचनालाप अन्तरंग में उस प्रकार बुद्धि हुए बिना नहीं हो सकता।

अब इस ग्रन्थ की उद्देश्यता अभिधेयता की सन्धि करते हुए बतलाते हैं कि इस व्यवहार से क्या विधेय है—

सूत्र—व्यवहारेण भेद प्ररूपणम् ॥१५

अर्थ—व्यवहार के द्वारा भेद का प्ररूपण होता है।

विशेषार्थ—निश्चयनय का विषय अभेद अखण्ड एक पूर्ण वस्तु सामान्य का ज्ञानात्मक होता है वह दृष्टि स्वयं निज विषय की भी प्ररूपणा में असमर्थ है तब अर्थ के विकल्प भेद पर्याय का विषय करने वाला व्यवहार ही प्ररूपणा का मूल है। इस ग्रन्थ में भी भेदों का वर्णन होगा वह यद्यपि व्यवहार का विषय है तथापि उसका मूल द्रव्य अथवा उत्पाद मूल विचारने से भेद प्ररूपणा में विकसित क्षयोपशम (बोध) भेदों को

मूल में गर्भित करके एकत्व को विशदतया विषय कर सकता है ।

अब भेद प्ररूपणा किस किस प्रयोजन के लिये हो सकती है इसका विवरण करते हैं—

सूत्र—तच्च द्वाभ्याम् ॥१६॥

अर्थ—भेद को प्ररूपण चर्चन दो प्रयोजनों का प्रयोजिक हो सकता है ।

विशेषार्थ—प्रायः कोई भी विषय अपने प्रतिपक्ष को भी रखता है इस लिये इसका प्रयोजन भी सप्रतिपक्ष है ।

इन्हीं प्रयोजनों को दिखाते हैं—

सूत्र—संसृटतिधर्म्यध्यानाभ्याम् ॥१७॥

अर्थ—भेद प्ररूपण, सांसरिक ध्यान या धर्म्मध्यान दो प्रयोजनों के लिये हो सकता है ।

विशेषार्थ—भेदों का विकल्पों का निरुपण पर पदार्थ विषयक ज्ञान के अनुराग अथवा अपना महत्व प्रदर्शन व अन्य व्यवहार आदि प्रयोजनों को साधे तब तो संसृटतिध्यान के लिये है किन्तु अशुभोपयोग से बचने के लिये पदार्थविषयक आत्मविषयक ज्ञान में उपयोग रखा जावे तो वह प्ररूपण धर्मध्यान के लिये है ।

अब धर्म्मध्यान की प्रयोजकता को कहते हैं—

सूत्र—धर्म्मध्यानं साम्याय ॥१८॥

अर्थ—धर्म्मध्यान समता के प्रयोजन के लिये है।

विशेषार्थ—आत्मा का सुख हित समता में है। धर्म्मध्यान भी समता के प्रयोजन को लेकर किया जाता है अन्यथा वह धर्मध्यान नहीं है। यहाँ यह प्रकृत बात लेना है कि इसे ग्रन्थ से जो भेद प्ररूपणा है उसका उपयोग समता को प्रयोजक धर्म ध्यान के लिए करना है।

अब समता को विशेषित करते हैं—

सूत्र—साम्यं समृद्धिः॥१६॥

अर्थ—समता भाव आत्मा का ही निजस्वभावरूप समृद्धि है।

विशेष—ऋद्धि समृद्धि उसे कहते हैं जो अधिकारी के उत्कर्षता करे। यह साम्यभाव आत्मा के सहज अविनाशी उत्तम अनुपम सुख का मूल है, स्वरूप है आत्मा की सत्य समृद्धि इस ही भाव में है। अन्य तो क्या आत्मा और कर्म जो व्यवहार में है संयुक्त है उनके जानने—भेद करने की सीमा भी यदि कोई हो सकती तो यही समता समता के आभ्यन्तर तो जीव और समता के बाह्य जीव नहीं। यदि जीव का वास्तविक स्वरूप समझना है तो यही सीमा देखनी होगी। यही साम्यभाव समृद्धि है आत्मा की आलौकिक संपत्ति है।

अब इसका कारण बताते हैं—

सूत्र—परमसुखरूपात् ॥२०॥

अर्थ—क्योंकि वह समृद्धि स्वयं परमसुखस्वरूप है।

विशेषार्थ—धर्म, चारित्र, समता, स्वरूपसमवस्थान सभी एकार्थवाचक हैं, धर्म समतास्वरूप है वह सहजसुखरूप है। धर्म का विकास अकषायी ज्ञान स्वभाव के अनुभवन में है। वाह्य पदार्थों का लक्ष्य रूप आत्मपरिणमन धर्म से बाह्य है अतः विषम होने से स्वयं दुःखस्वरूप है। यह धर्म पुण्यभाव के आदर में भी नहीं है। अन्य तो क्या मंदकषायरूप भाव भी स्वयं धर्म नहीं जबकि ज्ञानस्वभाव की अनुभूति जिस पद में चाहे देशसंयमावरण भी उदित हो तो भी धर्म का मार्ग है। इसी ही अखण्ड निर्विकल्प निजज्ञानस्वभाव की दृष्टि समता का मूल है इसकी ही सिद्धि के अर्थ प्रयत्नशीलों के सर्व व्यवहार धर्मों का प्रयोग बीच में आता है।

इस प्रकार वस्तु का स्वभाव अवक्तव्य पुनरपि वक्तव्य बनाने पर वह एक अखण्ड है तथापि ज्ञान की अस्थिर दशा में उपयोग को अशुभ से बचाने के लिये अर्थ यह भेद प्ररूपण किया जा रहा है।

(अपूर्ण)

॥ इति ॥ समस्थानसूत्रे प्रथमोऽध्यायः

अथद्वितीयोध्यायः

सूत्र--अथ द्वौ ॥१॥

अर्थ--अब दो दो स्थान वर्णित किए जाते हैं ॥१॥

सूत्र—जीवाजीवौ पदार्थौ ॥२॥

अर्थ--पदार्थ दो प्रकार के होते हैं—

१ जीव २ अजीव ॥२॥

जीव—जिसमें चेतना (ज्ञान, दर्शन) पाई जावे वह जीव है।

अजीव—जिसमें चेतना न पाई जावे वह अजीव है।

सूत्र--मुक्तसंसारिणौजीवौ ॥३॥

अर्थ--जीव २ प्रकार के होते हैं—

१ मुक्त जीव २ संसारी जीव।

मुक्त जीव--जीव उन्हें कहते हैं जो आठों कर्मों से तथा राग, द्वेष, मोह आदि विभावों से व शरीर से रहित हों।

संसारी जीव—उन्हें कहते हैं- जो चारों गतियों (संसार) में परिभ्रमण करते हैं।

सूत्र--त्रसस्थावरौ संसारिणौ ॥४॥

अर्थ--संसारी जीव २ प्रकार के हाते हैं—

१ त्रस २ स्थावर।

त्रस जीव—दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों को कहते हैं।

स्थावर जीव—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकयिक और वनस्पतिकायिक जीवों को कहते हैं।

सूत्र—समनस्कामनस्कौ पंचेन्द्रियौ ॥५॥

अर्थ—पंचेन्द्रिय जीव २ प्रकार के होते हैं।

१ समनस्क (सैनी) २ अमनस्क (असैनी)।

सैनीजीव—उन्हें कहते हैं जो मन सहित हों जिनमें हित और अहितके विचारनें की शक्ति हो।

असैनी जीव—उन्हें कहते हैं जो मन रहित हों।

सूत्र—उपयोगौ ज्ञानदर्शने ॥६॥

अर्थ—उपयोग २ प्रकारका है—१ ज्ञान २ दर्शन।

ज्ञान—बहिमुर्ख चित् प्रकाश को ज्ञान कहते हैं।

दर्शन—अन्तमुर्ख चित् प्रकाश को दर्शन कहते हैं।

सूत्र—प्रमाणे प्रत्यक्षपरोक्षे ॥७॥

अर्थ—प्रमाण २ प्रकार का है-१ प्रत्यक्ष और २ परोक्ष।

प्रत्यक्ष—इन्द्रियों की सहायता के बिना आत्मीय शक्ति से पदार्थों के स्पष्ट जानने को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

परोक्ष—इन्द्रिय और मनकी सहायता से पदार्थों के जानने को परोक्ष ज्ञान कहते हैं।

सूत्र—पारमार्थिकसांव्यवहारिके प्रत्यक्षे ॥८॥

अर्थ—प्रत्यक्ष २ प्रकार का है--

१ परमार्थिक २ सांव्यवहारिक ।

पारमार्थिक—जो बिना किसी सहायताके अर्थात् आत्मीय शक्ति से पदार्थ को स्पष्ट जाने उसे पारमार्थिक कहते हैं ।

सांव्यवहारिक—जो इन्द्रिय और मन की सहायता से पदार्थ को एक देश स्पष्ट जाने उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं ।

सूत्र—सकलविकले पारमार्थिके ॥६॥

अर्थ—पारमार्थिक प्रत्यक्ष दो प्रकार हैं-

१ सकल और २ विकल ।

सकल—केवल ज्ञान (जो समस्त द्रव्य, गुण, पर्यायों को आत्मीय शक्ति से जाने) को सकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं ।

विकल—उसे कहते हैं जो रूपी पदार्थों को बिना किसी की सहायता के स्पष्ट जाने ।

सूत्र—अवधिमनःपर्ययौ विकले ॥१०॥

अर्थ—विकल प्रत्यक्ष २ प्रकार का है-

१ अवधि और २ मन पर्यय ।

अवधि—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा लिये हुये जो रूपी पदार्थ को स्पष्ट जाने उसे अवधि ज्ञान कहते हैं ।

मनःपर्यय—द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव की मर्यादा लिये हुये जो दूसरे के मन में तिष्टते हुये रूपी पदार्थ को स्पष्ट जाने उसे मनःपर्यय ज्ञान कहते हैं।

सूत्र—परोक्षे मतिश्रुते ॥११॥

अर्थ—परोक्ष प्रमाण २ प्रकार का है—

१ मतिज्ञान २ श्रुतज्ञान।

मति ज्ञान—जो पाँच इन्द्रिय और मन की सहायता से पदार्थ को जाने उसे मतिज्ञान कहते हैं।

श्रुतज्ञान—मतिज्ञान से जाने हुये पदार्थ की सहायता से उसी पदार्थ के भेदों को तथा अन्य पदार्थ को जाने उसे श्रुतज्ञान कहते हैं।

सूत्र—गुणभवप्रत्ययावधी ॥१२॥

अर्थ—अवधिज्ञान २ प्रकार है—

१ गुणप्रत्यय २ भवप्रत्यय।

गुणप्रत्यय—भव के निमित्त के बिना अवधिज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशाम से जो उत्पन्न हो उसे गुणप्रत्यय अवधि ज्ञान कहते हैं।

भवप्रत्यय—जो भव के (देव गति और नरक गति के) कारण उत्पन्न हो उसे भवप्रत्यय अवधि ज्ञान कहते हैं।

सूत्र—ऋजुविपुलमती मनःपर्ययौ ॥१३॥

अर्थ—मनःपर्यय ज्ञान २ प्रकार का है–
१ ऋजुमती और २ विपुलमती ।

ऋजुमती—मन वचन काय की सरलता रूप पर के मन में तिष्ठते हुए पदार्थ को स्पष्ट जाने उसे ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान कहते हैं ।

विपुलमति—जो सरल तथा वक्ररूप परके मन में तिष्ठे हुये पदार्थ को जाने उसे विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान कहते हैं ।

सूत्र—अङ्गप्रविष्टबाह्ये श्रुते ॥१४॥

अर्थ—श्रुत ज्ञान २ प्रकार का है–
१ अङ्ग प्रविष्ट २ अङ्ग बाह्य ।

अङ्ग प्रविष्ट—१२ अङ्गों के अन्तर्गत द्रव्य श्रुत को अंग प्रविष्ट श्रुत कहते हैं ।

अंग बाह्य—१२ अंग से बाह्य श्रुत को अंग बाह्य श्रुत कहते हैं ।

सूत्र—सम्यग्विपर्ययौ मतिज्ञाने ॥१५॥

अर्थ—मति ज्ञान २ प्रकार का है–
१ सम्यक् (सुमति) २ विपर्यय (कुमति) ।

सुमति—संम्यग्दर्शन के साथ होने वाले मति ज्ञान को सुमति कहते हैं ।

कुमति—सम्यग्दर्शन के अभाव में होने वाले मति ज्ञान

को कुमति कहते हैं।

सूत्र—श्रुते च ॥१६॥

अर्थ—श्रुत ज्ञान भी २ प्रकार का है--

१ सुश्रुत २ कुश्रुत।

सुश्रुत— सम्यग्दर्शन के सद्भाव में होने वाले श्रुत ज्ञान को सुश्रुत ज्ञान कहते हैं।

कुश्रुत—सम्यग्दर्शन के अभाव में होने वाले श्रुत ज्ञान को कुश्रुत ज्ञान कहते हैं।

सूत्र—अवधी ॥१७॥

अर्थ—अवधिज्ञान २ प्रकार का है-

१ सुअवधि २ कुअवधि।

सुअवधि—सम्यग्दर्शन के सद्भाव में होने वाले अवधि-ज्ञान को सुअवधि ज्ञान कहते हैं।

कुअवधि—सम्यग्दर्शन के अभाव में होने वाले अवधि-ज्ञान को कुअवधि ज्ञान कहते हैं।

सूत्र—दर्शने ॥१८॥

अर्थ—दर्शन २ प्रकार का है-

१ सम्यग्दर्शन २ मिथ्यादर्शन।

सम्यग्दर्शन—वस्तु के स्वरूप सहित पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

मिथ्यादर्शन—विपरीत अभिप्राय सहित पदार्थों का श्रद्धान

करना मिथ्यादर्शन कहते हैं।

सूत्र—ज्ञाने ॥१६॥

अर्थ—ज्ञान २ प्रकार है—

१ सम्यग्ज्ञान २ मिथ्याज्ञान।

सम्यग्ज्ञान—संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित जीवादि पदार्थों के जानने को सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

मिथ्याज्ञान—वस्तु स्वरूप से विपरीत ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहते हैं।

सूत्र—चारित्रे ॥२०॥

अर्थ—चारित्र २ प्रकार का है—

१ सम्यक् चारित्र २ मिथ्याचारित्र।

सम्यक् चारित्र—मिथ्यात्व कषायादिक संसार की कारण रूप क्रियाओं से विरक्त होने को सम्यक् चारित्र कहते हैं।

मिथ्या चारित्र—मिथ्यात्व कषायादिक संसार की कारण रूप क्रियाओं में अनुरक्त होने को मिथ्या चारित्र कहते हैं।

सूत्र—गृहीतागृहीते मिथ्यादर्शने ॥२१॥

अर्थ—मिथ्यादर्शन २ प्रकार का है।

१ गृहीत और २ अगृहीत।

गृहीत मिथ्यादर्शन—खोटे देव, शास्त्र गुरू में हितरूप

श्रद्धान करना गृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं।

अगृहीत मिथ्यादर्शन—पुत्र, मित्र, धन, मकान, शरीर, कषायादि को अपना मानना अगृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं।

सूत्र—मिथ्याज्ञाने ॥२२॥

अर्थ—मिथ्या ज्ञान २ प्रकार का है—

१ गृहीत मिथ्या ज्ञान २ अगृहीत।

गृहीत मिथ्याज्ञान—उसे कहते हैं जो रागद्वेष पोषक के शास्त्रों के पढ़ने से मिथ्या ज्ञान हो।

अगृहीत मिथ्याज्ञान—आत्मा और पर पदार्थ को एक समझना अगृहीत मिथ्या ज्ञान है।

सूत्र—मिथ्याचरित्रे च ॥२३॥

अर्थ—मिथ्या चारित्र भी २ प्रकार का है—

१ गृहीत और २ अगृहीत।

गृहीत मिथ्या चारित्र—ज्ञान बिना देह को नाश करने वाले हिंसामयी तप करना से गृहीत मिथ्या चारित्र है।

सूत्र—सकलनिकलौ परमात्मानौ ॥२४॥

अर्थ—परमात्मा २ प्रकार के हैं—

१ सकल परमात्मा २ निकल परमात्मा।

सकल परमात्मा—जो रागद्वेषादिक दोष रहित व सर्वज्ञ है किन्तु शरीर सहित हैं वे सकल परमात्मा हैं।

निकल परमात्मा—जो आठों कर्मों से व रागद्वेषादि दोषों से एवं शरीर से रहित है वे निकल परमात्मा हैं।

सूत्र - तीर्थंकृत्सामान्यौकेवलिनौ ॥२५॥

अर्थ—केवली २ प्रकार के होते हैं—

१ तीर्थंकृतकेवली २ सामान्यकेवली ।

तीर्थंकृतकेवली—जो अर्हन्त तीर्थंकर हैं उन्हें तीर्थंकृत्‌केवली कहते हैं।

सामान्यकेवली—उन्हें कहते हैं जो तीर्थंकर नहीं हैं किन्तु अर्हन्त हैं।

सूत्र—द्रव्यभावयोःश्रुतकेवलिनौ ॥२६॥

अर्थ—श्रुतकेवली २ प्रकार के हैं—

१ द्रव्यश्रुतकेवली २ भावश्रुतकेवली ।

द्रव्यश्रुतकेवली—समस्तश्रुत को जानने वाले साधु को द्रव्यश्रुतकेवली कहते हैं।

भावश्रुतकेवली—समस्त श्रुत के द्वारा आत्मा तत्व को जानने वाले साधु भावश्रुतकेवली कहलाते हैं।

सूत्र—निश्चयव्यवहारौ नयौ ॥२७॥

अर्थ—नय दो प्रकार का है—

१ निश्चन नय और २ व्यवहार नय ।

निश्चयनय—वस्तु के यथार्थ स्वभाव का वर्णन करना निश्चयनय है।

व्यवहारनय—परके सम्बन्ध से होने वाले भावों का व पर्यायों का वर्णन करना व्यवहारनय है।

सूत्र—द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकौ च ॥२८॥

अर्थ—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक के भेद से भी नय दो प्रकार का होता है।

द्रव्यार्थिक—जो द्रव्य को मुख्यतया विषय करे उसे द्रव्यार्थिकनय कहते हैं।

पर्यायार्थिकनय—जो पर्याय को मुख्यतया जाने उसे पर्यायार्थिकनय कहते हैं।

सूत्र—आत्मभूतानात्मभूते लक्षणे ॥२९॥

अर्थ—लक्षण २ प्रकार का है-

१ आत्मभूत २ अनात्मभूत।

आत्मभूत—जो लक्षण लक्ष्य (जिसका लक्षण किया हो) में मिला हुआ हो उसे आत्मभूत लक्षण कहते हैं।

अनात्मभूत—जो लक्षण लक्ष्य से जुदा हो उसे अनात्मभूत कहते हैं।

सूत्र—अनुजीविप्रतिजीविनौ गुणौ ॥३०॥

अर्थ—गुण के २ भेद हैं-

१ अनुजीवि और २ प्रतिजीवि।

अनुजीवि—वस्तु में रहने वाले सद्भावात्मक गुणों को अनुजीवि गुण कहते हैं।

प्रतिजीवि—वस्तु में रहने वाले आपेक्षिक या अभावात्मक धर्म को प्रतिजीवि गुण कहते हैं ।

सूत्र—स्वभावविभावौ पर्यायौ ॥२१॥

अर्थ—पर्याय २ प्रकार की हैं ।

१ स्वभाव और २ विभाव ।

स्वभाव—उपाधि के अभाव में होने वाली वस्तु की सहज दशा को स्वभाव पर्याय कहते हैं ।

विभाव—उपाधि के कारण होने वाली वस्तु की विकृत अवस्था को विभाव पर्याय कहते हैं ।

सूत्र—लोकालोकयोराकशौ ॥२२॥

अर्थ—आकाश के दो भेद हैं—

१ लोकाकाश और २ अलोकाकाश ।

लोकाकाश—उसे कहते हैं जिसमें जीव पुद्गलादि ६ द्रव्यें पाई जावें ।

अलोकाकाश—उसे कहते हैं जिसमें सिर्फ आकाश ही आकाश हो, अन्य कोई द्रव्य न हो ।

सूत्र—अणुस्कंधौ पुद्गलौ ॥२३॥

अर्थ—पुद्गल दो प्रकार का है—

१ अणु और २ स्कंध ।

अणु—पुद्गल के सबसे छोटे टुकड़े को अणु कहते हैं ।

स्कंध—दो या दो से ज्यादा मिले हुये पुद्गल परमाणुओं

को स्कंध कहते हैं ।

सूत्र—भोगकर्मणी भूमि ॥४३॥

अर्थ—भूमि दो प्रकार की है—

१ भोग भूमि और २ कर्म भूमि ।

भोगभूमि—जहाँ के मनुष्य तिर्यंचो को कल्पवृक्षादि के निमित्त से मनचाही भोगोपभोग सामग्री प्राप्त हो उसे भोग भूमि कहते हैं ।

कर्मभूमि—जहां असि, मषि, कृषि, वाणिज्य आदि षट् कर्मों की प्रवृति हो उसे कर्मभूमि कहते हैं ।

सूत्र—यतिश्रावकीयौ व्यवहारधर्मौ ॥३५॥

अर्थ—व्यवहार धर्म दो प्रकार का है—

१ यति (मुनि) २ श्रावक धर्म ।

मुनिधर्म—महाव्रत, गुप्ति, समिति आदि मुनियों के आचारण को मुनिधर्म कहते हैं ।

श्रावक धर्म—अणुव्रतादि रूप श्रावकों के आचरण को श्रावक धर्म कहते हैं ।

सूत्र—क्षुल्लकैलकावुद्दिष्टत्यागिश्रावकौ ॥३६॥

अर्थ—उद्दिष्टत्यागी श्रावक दो प्रकार के होते हैं—

१ क्षुल्लक और २ ऐलक ।

क्षुल्लक—जो चादर और लंगोटी धारण करते हैं तथा भिक्षाचर्या से भोजन करते हैं उन्हें क्षुल्लक कहते हैं ।

ऐलक—जो केवल लंगोटी धारण करते हैं, तथा भिक्षाचर्या से कर पात्र में आहार लेते हैं एवं केशलोंच आदि मुनियों की तरह करते हैं उन्हें ऐलक कहते हैं।

सूत्र—अनुमत्युद्दिष्टत्यागिनावुत्कृष्टश्रावकौ ॥३७॥

अर्थ—उत्कृष्टश्रावक दो प्रकार के हैं—

१ अनुमतित्यागी और २ उद्दिष्ट त्यागी।

अनुमतित्यागी—गृहकार्य, आरम्भ, भोजनादि की अनुमति का भी जिनके त्याग हो उन्हें अनुमति त्यागी श्रावक कहते है।

उद्दिष्टत्यागी—निमित्त से बने हुये भोजन का जिनके त्याग है उन्हें उद्दिष्ट त्यागी श्रावक कहते हैं।

सूत्र—अनेकैक भिक्षानियमौक्षुल्लकौ ॥३८॥

अर्थ—क्षुल्लक २ प्रकार के होते हैं-

१ अनेकभिक्षा दियम क्षुल्लक और २ एक भिक्षा नियम क्षुल्लक।

अनेक भिक्षा नियम क्षुल्लक—उन्हें कहते हैं, जिनके १-२ आदि ५ घरों से भिक्षा लेने का नियम हो।

एक भिक्षा नियम क्षुल्लक—उन्हें कहते हैं, जिनके एक ही घर से भिक्षा लेने का नियम हो।

सूत्र—निश्चयव्यवहारौ कालौ ॥३९॥

अर्थ—काल के २ भेद होते हैं—

१ निश्चय और २ व्यवहार ।

निश्चयकाल—लोकाकाश के एक एक प्रदेश पर स्थित कालाणु को निश्चयकाल कहते हैं ।

व्यवहारकाल—काल द्रव्य की घड़ी दिन मास आदि पर्यायों को व्यवहारकाल कहते हैं ।

सूत्र—मोक्षमार्गौ ॥४०॥

अर्थ—मोक्षमार्ग दो प्रकार का है—

१ निश्चय और २ व्यवहार ।

निश्चयमोक्षमार्ग—निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं ।

व्यवहार लोक्षमार्ग—व्यवहारसम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र को व्यवहारमोक्षमार्ग कहते हैं ।

सूत्र—सम्यग्दर्शने ॥४१॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है ।

१ निश्चय और २ व्यवहार ।

निश्चय—शुद्ध आत्मा की प्रतीति को निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं ।

व्यवहारसम्यग्दर्शन—सात तत्वों के श्रद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं ।

सूत्र—सम्यग्ज्ञाने ॥४२॥

अर्थ—सम्यग्ज्ञान २ प्रकार का है—

१ निश्चय और २ व्यवहार।

निश्चयसम्यग्ज्ञान—शुद्धात्मा तत्त्व के ज्ञान को निश्चय सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

व्यवहारसम्यग्ज्ञान—सात तत्त्व आदि की कथनी के ज्ञान को व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

सूत्र—सम्यक्चारित्रे ॥४३॥

अर्थ—सम्क्चारित्र दो प्रकार का है—

१ निश्चय २ व्यवहार।

निश्चयसम्यक्चारित्र—आत्मस्वरूप में स्थिर होने को निश्चय सम्यक् चारित्र कहते हैं।

व्यवहार सम्यक्चारित्र—५ महाव्रत ५ समिति ३ गुप्ति आदि मुनिधर्म के पालन करने को व्यवहार सम्यक् चारित्र कहते हैं।

सूत्र—भावद्रव्यौ संवरौ ॥४४॥

अर्थ—संवर दो प्रकार का है—

१ भावसंवर और २ द्रव्य संवर।

भावसंवर—आत्मा के जिन भावों से कर्मों का आना रुकता है उन्हें भावसंवर कहते हैं।

द्रव्यसंवर—कर्मों का आना रुक जाना सो द्रव्यसंवर है।

सूत्र—आश्रवौ ॥४५॥

अर्थ—आश्रव के दो भेद हैं—

१ द्रव्याश्रव और २ भावाश्रव।

द्रव्याश्रव—कर्मों के आने को द्रव्याश्रव कहते हैं।

भावाश्रव—आत्मा के जिन भावों से शुभाशुभ कर्म आते हैं उन्हें भावाश्रव कहते हैं।

सूत्र—पापे ॥४६॥

अर्थ—पापके दो भेद हैं—

१ द्रव्यपाप और २ भावपाप।

द्रव्यपाप—अशुभ कर्मों को द्रव्यपाप कहते हैं।

भावपाप—अशुभ भावों को भाव पाप कहते हैं।

सूत्र—पुण्ये ॥४७॥

अर्थ—पुण्य दो प्रकार का होता है—

१ द्रव्यपुण्य और २ भावपुण्य।

द्रव्यपुण्य—शुभ कर्मों को द्रव्य पुण्य कहते हैं।

भावपुण्य—शुभ भावों को भाव पुण्य कहते हैं।

सूत्र—बंधौ ॥४८॥

अर्थ—बंध दो प्रकार का है—

१ द्रव्यबंध और २ भावबंध।

द्रव्यबंध—कर्म वर्गणाओं के बंध को द्रव्यबंध कहते हैं।

भावबंध—आत्मा के जिन भावों से कर्म बंधते हैं उन्हें भावबंध कहते हैं। अथवा आत्मा में विभावके सम्बन्ध को भावबंध कहते हैं।

सूत्र—कर्मणी ॥४६॥

अर्थ—कर्म दो प्रकार का है—

१ द्रव्यकर्म २ भावकर्म।

द्रव्यकर्म—ज्ञानावरणादि कर्मों को द्रव्यकर्म कहते हैं।

भाव—रागद्वेषादि भावों को भाव कर्म कहते हैं।

सूत्र—निर्जरे ॥५०॥

अर्थ—निर्जरा दो प्रकार की है—

१ द्रव्यनिर्जरा २ भाव निर्जरा।

द्रव्यनिर्जरा—आत्मा से कर्मपरमाणुओं के झड़ने को द्रव्यनिर्जरा कहते हैं।

भावनिर्जरा—आत्मा के जिन भावों से कर्म झड़ते हैं उसे भावनिर्जरा कहते हैं।

सूत्र—मोक्षौ च ॥५१॥

अर्थ—मोक्ष दो प्रकार का है—

१ द्रव्यमोक्ष और २ भाव मोक्ष।

द्रव्यमोक्ष—ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों के सर्वथा दूर होने को द्रव्यमोक्ष कहते हैं।

भावमोक्ष—रागद्वेषादि समस्त विभावों के सर्वथा दूर होने को भावमोक्ष कहते हैं।

सूत्र—सामायिकौ ॥५२॥

अर्थ—सामायिक दो प्रकार की होती है—

१ द्रव्यसामायिक और २ भावसामायिक ।

द्रव्यसामायिक—विधिपूर्वक सामायिक करने को द्रव्यसामायिक कहते हैं ।

भावसामायिक—समता पूर्वक स्थित रहने को भावसामायिक कहते हैं ।

सूत्र—नमस्कारौ ॥५३॥

अर्थ—नमस्कार दो प्रकार का है-

१ द्रव्यनमस्कार २ भावनमस्कार ।

द्रव्यनमस्कार—मन, वचन, काय की चेष्टा से पूज्य पुरुषों के नमस्कार करने को द्रव्यनमस्कार कहते हैं ।

भावनमस्कार—नमस्कार करने योग्य और नमस्कार करने वाला दोनों भेदों का अभाव होकर जिस भाव में एक पना हो जाता है उसे भावनमस्कार कहते हैं ।

सूत्र—प्रत्याख्याने ॥५४॥

अर्थ—प्रत्याख्यान दो प्रकार का है-

१ द्रव्यप्रत्याख्यान और २ भावप्रत्याख्यान ।

द्रव्यप्रत्याख्यान—पर वस्तु के त्याग करने को द्रव्यप्रत्याख्यान कहते हैं ।

भावप्रत्याख्यान—त्याग स्वभाव मय ज्ञानमात्र रहने को भावप्रत्याख्यान कहते हैं ।

सूत्र—वेदौ ॥५५॥

अर्थ—वेद दो प्रकार का है- १ द्रव्यवेद २ भाववेद ।

द्रव्यवेद—काम भाव के कारणभूत वेद नामक द्रव्यकर्म को अथवा शरीर के चिन्ह विशेष को द्रव्यवेद कहते हैं ।

भाववेद—मैथुन विषयक परिणाम को भाववेद कहते हैं ।

सूत्र—मनसी ॥५६॥

अर्थ—मन दो प्रकार का है-१ द्रव्यमन २ भावमन ।

द्रव्यमन—आठ पांखुरी के कमल के आकार हृदय स्थान को द्रव्यमन कहते हैं ।

भावमन—द्रव्यमन के निमित्त से होने वाले विचार को भावमन कहते हैं ।

सूत्र—वचसी च ॥५७॥

अर्थ—वचन भी दो प्रकार का होता है-
१ द्रव्यवचन और २ भाववचन ।

द्रव्यवचन—अकारादि रूप अक्षरों के उच्चारण को द्रव्यवचन कहते हैं ।

भाववचन—उच्चारण किये बिना अन्तर्जल्प को भाव-वचन कहते हैं ।

सूत्र—प्राणौ ॥५८॥

अर्थ—प्राण दो प्रकार के होते हैं-
१ द्रव्यप्राण २ भावप्राण ।

द्रव्यप्राण—५ इन्द्रिय ३ बल १ आयु १ श्वासोछ्वास को द्रव्यप्राण कहते हैं।

भावप्राण—ज्ञान, दर्शन रूप चेतना को भावप्राण कहते है।

सूत्र—अहिंसे ॥५६॥

अर्थ—अहिंसा दो प्रकार की है—

१ द्रव्यअहिंसा २ भावअहिंसा।

द्रव्यअहिंसा—किसी के प्राण घात न करने व दिल न दुखाने को द्रव्यअहिंसा कहते हैं।

भावअहिंसा—रागद्वेषादि न करने को भावअहिंसा कहते हैं।

सूत्र—हिंसे च ॥६०॥

अर्थ—हिंसा भी दो प्रकार की है—

१ द्रव्यहिंसा २ भावहिंसा।

द्रव्यहिंसा—किसी के प्राण घात करने व दिल दुखाने को द्रव्यहिंसा कहते हैं।

भावहिंसा—रागद्वेषादि भावों को भावहिंसा कहते हैं।

सूत्र—सशल्यमरणे ॥६१॥

अर्थ—सशल्यमरण दो प्रकार का है—

१ द्रव्यसशल्यमरण और २ भावसशल्यमरण।

द्रव्यसशल्यमरण—किसी बाह्य पदार्थों की राग विरोधा

दिशल्य को रखकर मरण करने को द्रव्यसशल्यमरण कहते हैं।

भावसशल्यमरण—आकुलता सहित मरण करने को भाव सशल्यमरण कहते हैं।

सूत्र—योगौ ।६२॥

अर्थ—योग दो प्रकार का है—

१ द्रव्ययोग और २ भावयोग ।

द्रव्ययोग—आत्म प्रदेशों के हलन चलन को द्रव्योग कहते हैं।

भागयोग—आत्म प्रदेशों के परिस्पन्द की शक्ति को भावयोग कहते हैं।

सूत्र—इन्द्रियौच ॥६३॥

अर्थ—इन्द्रिय भी दो प्रकार की हैं—

१ द्रव्यइन्द्रिय, २ भाव इन्द्रिय ।

द्रव्यइन्द्रिय—पौद्गलिक इन्द्रियों की रचना को द्रव्य-इन्द्रिय कहते हैं।

भावइन्द्रिय—इन्द्रियज ज्ञानावरण के क्षयोपशमन उपयोग को भावइन्द्रिय कहते हैं।

सूत्र—उपादान निमित्ते कारणे ॥६४॥

अर्थ—कारण दो प्रकार का है—

१ उपादान कारण २ निमित्त कारण ।

उपादान कारण—जिस द्रव्य में कार्य हो पूर्व अवस्था सहित उस द्रव्य को उपादान कारण कहते हैं।

निमित्त कारण—विभिन्न कारणों को निमित्त कारण कहते हैं।

सूत्र—द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकौ निश्चयनयौ ॥६५॥

अर्थ—निश्चयनय दो प्रकार का है—

१ द्रव्यार्थिक २ पर्यायार्थिक।

द्रव्यार्थिक—नैगम, संग्रह, व्यवहार ये तीनों नय द्रव्यार्थिक कहलाते हैं।

पर्यायार्थिक नय—ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, एवंभूत ये ४ नय पर्यायार्थिक कहलाते हैं।

सूत्र—शुद्धाशुद्धौ निश्चयनयौ ॥६६॥

अर्थ—शुद्ध अशुद्ध के भेद से भी निश्चयनय दो प्रकार का है।

शुद्ध निश्चयनय—शुद्धतत्व के विषय करने वाले नय को शुद्ध निश्चयनय कहते हैं।

अशुद्ध निश्चयनय—वस्तु में होने वाले अशुद्धतत्व के विषय करने वाले नय को अशुद्ध निश्चयनय कहते हैं।

सूत्र— द्रव्यार्थिक नयौ ॥६७॥

अर्थ—द्रव्यार्थिक नय २ प्रकार का है—

१ शुद्ध द्रव्यार्थिकनय और २ अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय।

शुद्धद्रव्यार्थिकनय–शुद्धद्रव्य के विषय करने वाले नय को शुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहते हैं।

अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय–अशुद्धद्रव्य के विषय करने वाले नय को अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

सूत्र—पर्यायार्थिकौनयौ ॥६८॥

अर्थ—पर्यायार्थिकनय दो प्रकार का है—

१ शुद्धपर्यायार्थिकनय २ अशुद्ध पर्यायार्थिकनय।

शुद्धपर्यायार्थिकनय– शुद्ध पर्याय के वर्णन करने वाले नय को शुद्ध पर्यायार्थिकनय कहते हैं।

अशुद्ध पर्यायार्थिकनय—अशुद्ध पर्याय के वर्णन करने वाले नय को अशुद्ध पर्यायार्थिकनय कहते हैं।

सूत्र—जीवपरणती च ॥६९॥

अर्थ—जीव की परणती भी दो प्रकार की होती है–

१ शुद्ध परणति और २ अशुद्ध परणति।

शुद्ध परणति—रागद्वेषादि विभाव रहित परणति को जीव की शुद्धपरणति कहते हैं।

अशुद्ध परणति—रागद्वेषादि विभाव सहित परणति को जीव की अशुद्ध परणति कहते हैं।

सूत्र—प्रत्येकसाधारणौ वनस्पती ॥७०॥

अर्थ—वनस्पति दो प्रकार की हैं—

१ प्रत्येक और २ साधारण।

प्रत्येक वनस्पति—एक शरीर का एक ही स्वामी हो उसे प्रत्येक वनस्पति कहते हैं।

साधारण वनस्पति--एक शरीर के अनेक स्वामी हों उसे साधारण वनस्पति कहते हैं।

सूत्र—सप्रतिष्ठाप्रतिष्ठतौ प्रत्येकवनस्पती ॥७१॥

अर्थ—प्रत्येक वनस्पति दो प्रकार की है।

१ सप्रतिष्ठित और २ अप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति।

सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति—जिन हरित वनस्पतियों में अनन्त साधारण (निगोद) रहते हैं उसे सप्रतिष्ठित वनस्पति कहते हैं।

अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति—जिन हरित वनस्पतियों में साधारण (निगोद) नहीं रहते उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं।

सूत्र—नित्येतरौ निगोदौ ॥७२॥

अर्थ निगोद के दो भेद हैं—

१ नित्य निगोद २ इतर निगोद।

नित्यनिगोद—जो अनादिकाल से निगोद में ही रह रहे हैं उन्हें नित्य निगोद कहते हैं।

इतर निगोद—जो निगोद से निकल कर अन्य भावों को धारण कर चुके हैं और पुनः निगोद पर्याय में आगये हैं उन्हें इतर निगोद कहते हैं।

सूत्र—अनाद्यनंतादि सांतौं नित्यनिगौदौ ॥७३॥

अर्थ—नित्यनिगोद दो प्रकार की है—

१ अनादि अनंत और २ अनादि सान्त ।

अनादि अनन्त नित्यनिगोद—जो अनादि काल से निगोद में हैं और अनन्तकाल तक रहेंगे उन्हें अनादि अनन्त नित्य निगोद कहते हैं ।

अनादि सान्त नित्य निगोद—जो अनादिकाल से निगोद में रहते हैं परन्तु निगोद पर्याय को छोड़कर अन्यपर्याय को पावेंगे उन्हें अनादि सान्त नित्यनिगोद कहते हैं ।

सूत्र—बादरसूक्ष्मौ च ॥७४॥

अर्थ—निगोद के दो भेद हैं—

१ बादर २ सूक्ष्म ।

बादर निगोद—जिन निगोदिया जीवों के बादर नाम कर्म का उदय है उन्हें बादर निगोद कहते हैं ।

सूक्ष्म निगोद—जिन निगोदिया जीवों के सूक्ष्म नाम कर्म का उदय है उन्हें सूक्ष्म निगोद कहते हैं ।

सूत्र—ऊचैर्नीचै गोत्रे ॥७५॥

अर्थ—गोत्र दो प्रकार का है—

१ उच्चगोत्र और २ नीच गोत्र ।

उच्चगोत्र—जिसके उदय से लोकमान्य उच्चकुल में जन्म ले उसे उच्चगोत्र कहते हैं ।

नीचगोत्र—जिसके उदय से लोक निन्द्य चाँडालादि के कुल में जन्म हो उसे नीचगोत्र कहते हैं।

सूत्र—सातासाते वेदनीये ॥७६॥

अर्थ—वेदनीय दो प्रकार का है—

१ सातावेदनीय २ असातावेदनीय।

सातावेदनीय—जिसके उदय से अनेक प्रकार की सुखरूप सामग्री प्राप्त हो उसे सातावेदनीय कहते हैं।

असातावेदनीय—जिसके उदय से दुःखदायक सामग्री प्राप्त हो उसे असातावेदनीय कहते हैं।

सूत्र—दर्शनचारित्रमोहे मोहनीये ॥७७॥

अर्थ—मोहनीयकर्म दो प्रकार का है—

१ दर्शनमोहनीय २ चारित्रमोहनीय।

दर्शनमोहनीय—जो आत्मा के सम्यग्दर्शन गुण को विकृत करे उसे दर्शनमोहनीय कहते हैं।

चारित्र मोहनीय—जो आत्मा के चारित्र गुण को विकृत करे उसे चारित्र मोहनीय कहते हैं।

सूत्र—कल्पोपन्नकल्पातीतौ वैमानिकौ ॥७८॥

अर्थ—वैमानिक देव दो प्रकार के होते हैं—

१ कल्पोपन्न २ कल्पातीत।

कल्पोपन्न—सोलह स्वर्गों में उत्पन्न होने वाले देवों को कल्पोपन्न कहते हैं। इन स्वर्गों में इन्द्र आदि १०

भेदों की कल्पना होती है।

कल्पातीत—सोलह कर्मों से ऊपर अर्थात् नव ग्रैवेयक नव अनुदश, पांच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले देव कल्पातीत कहलाते हैं। ये देव अहमिन्द्र कहलाते हैं। इनमें इन्द्र आदिक भेदों की कल्पना नहीं है।

सूत्र—अनादिसादी मिथ्यादृष्टी ॥७९॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टि दो प्रकार के होते हैं–

१ अनादि २ सादि।

अनादि मिथ्यादृष्टि—जो जीव अनादि काल से मिथ्यात्व कर सहित हैं अर्थात् जिन्हें अब तक कभी भी सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ वे अनादि मिथ्यादृष्टि हैं।

सादि मिथ्यादृष्टि—जिन्हें सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया था परन्तु सम्यग्दर्शन छूट कर अब मिथ्यात्व कर सहित हैं वे सादि मिथ्यादृष्टि हैं।

सूत्र—अनन्तानुवंधिरहितसहितौ च ॥८०॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टि दो प्रकार के है–

१ अनन्तानुवधि रहित और २ अनन्तानुवंधि सहित।

अनन्तानुवंधि रहित मिथ्यादृष्टि—जिन जीवों ने अनन्तानुवधि की विसंयोजना करके सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था वे यदि सम्यग्दर्शन से च्युत होकर मिथ्यात्व में पहुंच जाते हैं और जब तक उनके अनन्तानुवंधि उदय नहीं

होता तब तक वे अनन्तानुवंधि रहित मिथ्यादृष्टि हैं।

अनन्तानुवंधी सहित मिथ्यादृष्टि—अनन्तानुवंधी और मिथ्यात्व के उदय वाले जीवों को अनन्तानुवंधी सहित मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

सूत्र—स्वस्थानसातिशयाव प्रमत्तौ ॥८१॥

अर्थ—अप्रमत्त गुण स्थान दो प्रकार का है—

१ स्वस्थान और २ सातिशय।

स्वस्थान—जो ६वें से ७वां तथा ७वें ६वें रहा करे ऐसे सातवें गुण स्थान को स्वस्थान अप्रमत्त कहते हैं।

सातिशय—जो ७वें में आकर अधःकरण करके आठवें में चढ़ेगा उस सातवें गुणस्थान को सातिशय अप्रमत्त गुणस्थान कहते हैं।

सूत्र—उपशमसम्यकत्वे प्रथमद्वितीयोपशमे ॥८२॥

अर्थ—उपशम सम्यक्त्व २ प्रकार का है—

१ प्रथमोपशम सम्यक्त्व और २ द्वितीयोपशमे सम्यक्त्व।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व—मिथ्यात्व के बाद जो उपशम सम्यक्त्व होता है उसे प्रथमोयशम सम्यक्त्व कहते हैं।

द्वितीयोयशम सम्यक्त्व—क्षयोयशम सम्यक्त्व के बाद जो उपशम सम्यक्त्व होता है उसे द्वितीयोयशम सम्यक्त्व कहते हैं।

सूत्र—उपशमक्षायकौ श्रेणी ॥८३॥

अर्थ—श्रेणि २ प्रकार की होती है—

१ उपशमश्रेणि २ क्षपक श्रेणि :

उपशमश्रेणि—चारित्र मोहनीय के उपशम से जो ८-९-१०-११वें गुणस्थान के भाव होते हैं उसे उपशम श्रेणी कहते हैं।

क्षपकश्रेणि—चारित्र मोहनीय के क्षय से जो ८-९-१०-१२वें गुणस्थान के भाव होते हैं उसे क्षयकश्रेणी कहते हैं। क्षपक श्रेणी वाला नीचे गुणस्थानों में नहीं गिरता।

सूत्र—उपशमश्रेणियोगिनौ दर्शनमोहक्षपकोपशमकौ ॥८४॥

अर्थ—उहशमश्रेणि के योगि दो तरह के हैं—

१ दर्शनमोहक्षपक २ दर्शनमोहोपशपक।

दर्शनमोहक्षपक—जो दर्शन मोहनीय का क्षय कर देते हैं और उपशमश्रेणि में स्थित हैं वे दर्शन मोह क्षपक उपशमश्रेणि योगि कहलाते हैं।

दर्शनमोहोपशमक—द्वितीयोयशम सम्यग्दृष्टि जीव जब उपशमश्रेणि में स्थित होते हैं तब वे दर्शनमोहोपशमक उपशमश्रेणीयोगी कहलाते हैं।

सूत्र—अपूर्वकरणौ चारित्रमोहक्षपकोपशमकौ ॥८५॥

अर्थ—अपूर्वकरण गुणस्थान दो प्रकार का है—

१ चारित्र मोहोपशमक और २ चारित्रमोहक्षयक।

चारित्र मोह क्षपक—जो चारित्र मोहनीय का क्षय करके अपूर्वकरण गुणस्थान में पहुंचे हैं उन्हें चारित्रमोह क्षपक अपूर्वकरण गुणस्थान कहते हैं।

चारित्रमोहोपशमक—चारित्रमोह का उपशम करके जो अपूर्वकरण गुणस्थानमें स्थित हैं वे चारित्रमोहोपशमक अपूर्वकरण गुणस्थान कहलाते हैं।

सूत्र—अनिवृत्तिकरणौ ॥८६॥

अर्थ—अनिवृत्तिकरण गुणस्थान दो प्रकार का है—

१ चारित्रमोह क्षपक और २ चारित्रमोहोपशमक।

चारित्रमोह क्षपक—जो चारित्र मोहनीय का क्षय करके अनिवृति करण गुणस्थानमें पहुंचे हैं उन्हें चारित्र मोहक्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थान कहते हैं।

चारित्रमोहोपशमक—चारित्रमोह का उपशम करके जो अनिवृतिकरण गुणस्थान में स्थित हैं ये चारित्र मोहोपशमक अनिवृतिकरण गुणस्थान वर्ती जीव हैं।

सूत्र—सूक्ष्मसाम्परायौ च ॥८७॥

अर्थ—सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान दो प्रकार का है—

१ चारित्रमोहक्षपक और २ चारित्रमोहोपशमक।

चारित्र मोहक्षपक—चो चारित्र मोहनीय का क्षय करके सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में पहुंचे हैं उन्हें चारित्र मोह-क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्तीजीव कहते हैं।

चारित्रमोहोपशमक—चारित्रमोह का उपशम करके जो सूक्ष्मसाम्यराय गुणस्थान में स्थित हैं वे चारित्र मोहोपशमक सूक्ष्मसाम्यराय गुणस्थानवर्ती जीव कहलाते हैं।

सूत्र—निसर्गाधिगमजे सम्यग्दर्शने ॥८८॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है—
१ निसर्गज २ अधिगमज।

निसर्गज—जो सम्यग्दर्शन परके उपदेश बिना अपने आप ही उत्पन्न हो उसे निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

अधिगमज—जो अन्य के उपदेश से उत्पन्न हो उसे अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

सूत्र—सरागवीतरागयोश्च ॥८९॥

अर्थ—सराग सम्यग्दर्शन और वीतराग सम्यग्दर्शन के भेद से भी सम्यग्दर्शन दो प्रकार है।

सराग सम्यग्दर्शन—सराग आत्माओं के सम्यग्दर्शन को सराग सम्यग्दर्शन कहते हैं।

वीतराग सम्यग्दर्शन—वीतराग आत्माओं के सम्यग्दर्शन को वीतराग सम्यग्दर्शन कहते हैं।

सूत्र—कर्मनोकर्मणोर्द्रव्यपरिवर्तने ॥९०॥

अर्थ—द्रव्यपरिवर्तन २ प्रकार का है—
१ कर्म और २ नो कर्म।

कर्म द्रव्यपरिवर्तन—किसी एक समय से जीव ने अष्ट

प्रकार के कर्मभाव से जो पुद्गल ग्रहण किये फिर जघन्य अन्तर्मुहूर्त आदि के पश्चात् सिर गये पश्चात् अनन्तवाकर अगृहीत गृहीत निश्रय कर्मपुद्गल ग्रहण करता है फिर कभी जब विवक्षित पहले समय में जिस प्रकार से जिस भाव से बांधे थे उसी भाव से बंधने में आवे उतने समय व्यतीत होने को कर्मद्रव्य परिवर्तन कहते हैं।

नो कर्मद्रव्य परिवर्तन—किसी एक समय में एक जीव ने जिस प्रकार और भाव से आहार वर्गणायें व पर्याप्ति के योग्यवर्गणायें ग्रहण की पश्चात् निर्जीर्ण हुई तथा और और अनन्तवार अगृहीत, गृहीत मिश्रवर्गणायों ग्रहण करना रहा निर्जीर्ण करना रहा, फिर कभी विवक्षित पहिले समय में जिस प्रकार व जिस भाव से वर्गणायें ग्रहण की थी उसी प्रकार वैसे भाव से वे ही वर्गणायें ग्रहण में आवे उतने समय के व्यतीत होने को नोकर्म द्रव्यपरिवर्तन करते हैं।

सूत्र—स्वपरक्षेत्रसम्बन्धनी क्षेत्रपरिर्तने ॥६१॥

अर्थ—क्षेत्र परिवर्तन दो प्रकार का है—

१ स्वक्षेत्र परिवर्तन और २ परक्षेत्र परिवर्तन।

स्वक्षेत्र परिवर्तन—कोई जीव सूक्ष्म शरीर की अवगाहना में उत्पन्न हुआ, उस अवगाहना ने जितने आकाश प्रदेशों को रोका उतनी बार उसी अवगाहना से उत्पन्न

होवे फिर एक २ प्रदेश की अधिक अवगाहना ले लेकर भवों को धारण करें इस प्रकार क्रम २ से एक एक प्रदेश के अवगाहना बढ़ाता हुआ १००० योजन की अवगाहना वाले शरीर को धारण करे उतने परिवर्तनों को एक स्वक्षेत्र परिवर्तन कहते हैं।

पर क्षेत्रपरिवर्तन—कोई जीव सूक्ष्म शरीर की अवगाहना में रह कर आत्मा के मध्य के ८ प्रदेशों को मेरुपर्वत के मूल में मध्य के ८ प्रदेशों में व्याप्तकर उत्पन्न हुआ, उस अवगाहन ने जितने आकाश प्रदेशों को रोका उतनी बार उसी अवगाहना से उसी स्थान पर उत्पन्न होवे फिर आगे क्रम से एक एक प्रदेश बढ़ कर जन्म धारण करे जब लोक के सर्वप्रदेशों में इस तरह जन्म धारण कर चुके उतने परिवर्तनों को एक पर क्षेत्र परिवर्तन कहते हैं।

सूत्र—मूलोत्तरगुणीये निर्वर्तने ॥६२॥

अर्थ—निर्वर्तना दो प्रकार की है—

मूलगुण निर्वर्तना और २ उत्तरगुण निर्वर्तना।

मूलगुण निर्वर्तना—शरीर, मन, वचन और श्वासोच्छ्वासों का उत्पन्न करना मूलगुण निर्वर्तना है।

उत्तरगुण निर्वर्तना—काष्ठपुस्त अर्थात् मिट्टी पाषाणादि से मूर्ति आदि की रचना करना व चित्र पटादि बनाना

उसे उत्तरगुण निर्वर्तना कहते हैं।

सूत्र—भक्तपानोपकरणयोः संयोगौ ॥६३॥

अर्थ—संयोग २ प्रकार का है—

१ भक्तपान संयोग २ उपकरण संयोग।

भक्तपान संयोग—पान भोजन को अन्य पान भोजन में मिलाना व परस्पर मिलाना भक्तपान संयोग कहते हैं।

उपकरण संयोग—शीत स्पर्शरूप पुस्तक कमंडलु शरीरादिक को धूप से तपी हुई पीछे से पोंछना शोधना सो उपकरण संयोग है।

सूत्र—औपशमिकौ सम्यक्त्वचारित्रे ॥६४॥

अर्थ—औपशमिक भाव २ प्रकार का है—

१ औपशमिक सम्क्त्व और २ औपशमिक चारित्र।

औपशमिक सम्यक्त्व—जो मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यङ मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात प्रकृतियों के उपशम से होता है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं।

औपशमिक चारित्र—जो चारित्र मोहनीय के उपशम से होता है उसे औपशमिक चारित्र कहते हैं।

सूत्र—देशसर्वतोव्रते ॥६५॥

अर्थ—व्रत दो प्रकार का है—

१ एकदेश और २ सर्वदेश व्रत।

एकदेशव्रत–पांचों पापों का एक देश त्याग करना एकदेशव्रत है।

सर्वदेश—पाँचों पापों का सर्व देशत्याग करना सर्वदेश व्रत है।

सूत्र—आर्यम्लेच्छौ कर्मभूमिजनरौ ॥९६॥

अर्थ—कर्मभूमिज मनुष्य दो प्रकार के हैं।

१ आर्य और २ म्लेच्छ।

आर्य—जो असि (शस्त्र धारण) मसि (लिखने का काम) कृषि (खेती) शिल्प, वाणिज्य और विद्या (नाचना, गाना सेवा आदि) इन छट कर्मों से आजीविका करते हैं उन्हें आर्य कर्मभूमिज मनुष्य कहते हैं।

म्लेच्छ—जो त्रस जीवों को मार कर अपना उदर निर्वाह करते हैं उन्हें म्लेच्छ कर्मभूमिज मनुष्य कहते हैं।

सूत्र—आहारकाहारकोपाङ्गावाहारकद्विकम् ॥९७॥

अर्थ—आहारकद्विक से दो प्रकृति समझना चाहिये–

१ आहारकशरीर २ आहारक आङ्गोपाङ्ग।

आहारकशरीर नामकर्म—उसे कहते हैं जिनके उदय से आहारक शरीर की रचना हो।

आहारक आङ्गोपाङ्ग नाम कर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से आहारक शरीर के अङ्ग और उपाङ्ग बनें।

सूत्र—औदारिकौदारिकाङ्गापाङ्गावौदारिकद्विकम् ॥९८॥

अर्थ—औदारिकद्विक से दो प्रकृति समझना चाहिये—
१ औदारिक शरीर और २ औदारिक आङ्गोयाङ्ग।
औदारिकशरीर नामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से औदारिक शरीर की रचना हो।
औदारिक आङ्गोपाङ्ग नामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से औदारिकशरीर के अंग और उपाङ्ग बनें।
सूत्र—वैक्रियकवैक्रियकङ्गोपाङ्गौ वैक्रियकद्विकम् ॥९९॥
अर्थ—वैक्रियकद्विक से २प्रकृति समझना चाहिये—
१ वैक्रियक शरीर और २ वैक्रियक आङ्गोपाङ्ग।
वैक्रियकशरीर नामकर्म—जिसके उदय से वैक्रियक शरीर की रचना हो उसे वैक्रियक नामकर्म कहते हैं।
वैक्रियक ओङ्गोपाङ्ग नामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से वैक्रियक शरीर के अंग और उपाङ्ग बनें।
सूत्र—तैजसकार्मिणे तैजसद्विकम् ॥१००॥
अर्थ—तैजसदिक से २ शरीर समझना चाहिये—
१ तैजस २ कार्माण।
तैजस नामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से तैजस शरीर की रचना हो।
कार्माणनामकर्म—उसे कहते हैं जिनके उदय से कार्माण शरीर की रचना हो।
सूत्र—लब्धिप्रत्ययतैजसशरीरे शुभाशुभे ॥१०१॥

अर्थ—लब्धि प्रत्यय तैजस शरीर दो प्रकार का है–
१ शुभ और २ अशुभ ।

शुभ तैजसशरीर—उसे कहते हैं जिसके प्रयोग से १२ योजन तक सुभिक्ष आदि सुख हो ।

अशुभ तैजसशरीर—उसे कहते हैं जिसके प्रयोग से १२ योजन तक अग्निदाह आदि से नाश हो ।

सूत्र—योगौ ॥१०२॥

अर्थ—योग दो प्रकार का है– १ शुभ और २ अशुभ ।

शुभयोग—शुभ परिणामों से पैदा हुआ योग शुभ योग है ।

अशुभयोग—अशुभ परिणामों से पैदा हुआ योग अशुभ योग है ।

सूत्र—अशुद्धोपयोगौ च ॥१०३॥

अर्थ—अशुद्ध उपयोग भी दो प्रकार का है–
१ शुभ और २ अशुभ ।

शुभ—शुभरागसहित उपयोग को शुभअशुद्ध उपयोग कहते हैं ।

अशुभ—अशुभराग, द्वेष, मोह भाव सहित उपयोग को अशुभ अशुद्धोपयोग कहते हैं ।

सूत्र—सूक्ष्मस्थूले शरीरे ॥१०४॥

अर्थ—शरीर दो प्रकार का है–१ सूक्ष्म और २ स्थूल ।

सूक्ष्मशरीर—केवल तैजस और कार्माण के शरीर के समूह को सूक्ष्मशरीर कहते हैं।

स्थूलशरीर—औदारिक आदि शरीरों को स्थूल शरीर कहते हैं।

सूत्र—नरकगतिनरकगत्यानुपूर्विणौ नरकद्विकम् ॥१०५॥

अर्थ—नरकद्विक से दो प्रकृति समझना चाहिये—

१ नरकगति २ नरकगत्यानुपूर्व्य।

नरकगति—जिसके उदय से आत्मा नरक में जावे उसको नरकगति नामकर्म कहते हैं।

नरकगत्यानुपूर्व्य—जिस समय मनुष्य व तिर्पंच की आयु पूर्ण हो आत्मा शरीर से प्रथक् होकर नरक भव प्रति जाने को सन्मुख हो, उस समय मार्ग में जिसके उदय से आत्या के प्रदेश पहिले शरीर के आकार के रहते हैं उसको नरकगत्यानुपूर्व्य कहते हैं।

सूत्र—तिर्यग्गतितिर्यग्गत्यानुपूर्व्यणौ तिर्यग्द्विकम् ॥१०६॥

अर्थ—तिर्यग्द्विक से दो प्रकृति समझना चाहिये—

१ तिर्पंचगति और २ तिर्पंचगत्यानुपूर्व्य।

तिर्यंचगति—जिसके उदय से आत्मा तिर्पंचयोनि में उत्पन्न हो उसे तिर्पंचगति नामकर्म कहते हैं।

तिर्पंचगत्यानुपूर्व्य—जिस समय नरक व मनुष्य की आयु पूर्ण हो औरआत्मा शरीर से प्रथक् होकर तिर्यंच

भव प्रति जाने को सन्मुख हो, उस समय मार्ग में जिसके उदय से आत्मा के प्रदेश पहिले शरीर के आकार के रहते हैं उसको तिर्यंचगत्यानुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं ।

सूत्र—मनुष्यगतिमनुष्यगत्यानुपूर्विणौमनुष्यद्विकम् ॥१०७॥

अर्थ—मनुष्यद्विक से दो प्रकृति समझना चाहिये—

१ मनुष्यगति और २ मनुष्यगत्यानुपूर्व्य ।

मनुष्यगति—जिसके उदय से आत्मा मनुष्य जन्म धारण करे उसे मनुष्यगति नामकर्म कहते हैं ।

मनुष्यगत्यानुपूर्व्य—जिस समय देव व तिर्यंच की आयु पूर्ण हो और आत्मा शरीर से प्रथक् होकर मनुष्य भव प्रति जाने को सन्मुख हो उस समय मार्ग में जिसके उदय से आत्मा के प्रदेश पहिले शरीर के आकार के रहते हैं उसको मनुष्य गत्यानुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं ।

सूत्र—देवगतिदेवगत्यानुपूर्विणौ देवद्विकम् ॥१०८॥

अर्थ—देवद्विक से २ प्रकृति समझना चाहिये—

१ देवगति और २ देवगत्यानुपूर्व्य ।

देवगतिनाम कर्म—जिसके उदय से आत्मा देव पर्याय को धारण करे उसे देवगतिनाम कर्म कहते हैं ।

देवत्यानुपूर्व्य—जिस समय मनुष्य व तिर्यंच की आयु पूर्ण हो और आत्मा शरीर से प्रथक् होकर देव भव

प्रति जाने को सन्मुख हो, उस समय मार्ग में जिसके उदय से आत्मा के प्रदेश पहले शरीर के आकार के रहते हैं उसको देवगत्यानुपूर्व्यनामकर्म कहते हैं।

सूत्र—आयुषीभुज्यमानवध्यमाने ॥१०६॥

अर्थ—आयु दो प्रकार की होती हैं–

१ भुज्यमान आयु २ वध्यमान आयु।

भुज्यमान आयु—जो आयु भोगने में आरही है उसे भुज्यमान आयु कहते हैं।

वध्यमान आयु—जिस आयु का वंध हुआ है परन्तु भोगने में नहीं आरही, मरण के बाद भोगने में आवेगी उसे वध्यमान आयु कहते हैं।

सूत्र—कायेन्द्रियहोरविरती ॥११०॥

अर्थ—अविरति २ प्रकार के हैं–

१ कायअविरति और २ इन्द्रिय अविरति।

काय अविरति—छैः काय के जीवों की हिंसा से विरक्त नहीं होना कायअविरति है।

इन्द्रिय अविरति—पाँच इन्द्रिय और मन के विषयों से विरक्त नहीं होना सो इन्द्रिय अविरति है।

सूत्र—व्यञ्जनार्थयोरवग्रहौ ॥१११॥

अर्थ—अवग्रह दो प्रकार का है–

१ व्यञ्जनावग्रह २ अर्थावग्रह।

व्यञ्जनावग्रह—अव्यक्त (अप्रकट) पदार्थ के अवग्रह को व्यञ्जनावग्रह कहते हैं ।

अर्थावग्रह—व्यक्त (प्रकट) पदार्थ के अवग्रह को अर्थावग्रह कहते हैं ।

सूत्र—अन्वयव्यतिरेकौ दृष्टान्तौ ॥११२॥

अर्थ—दृष्टान्त दो प्रकार का है—

१ अन्वय और २ व्यतिरेक ।

अन्वयदृष्ष्टान्त—जहां साधन की मौजूदगी में साध्य की मौजूदगी दिखाई जाय उसे अन्वय दृष्टान्त कहते हैं ।

व्यतिरेकदृष्टान्त—जहां साध्य की गैर मौजूदगी में साधन की गैर मौजूदगी दिखाई जाय उसे व्यतिरेक दृष्टान्त कहते हैं ।

सूत्र—व्याप्ती च ॥११३॥

अर्थ—व्याप्ति भी दो प्रकार की है—

१ अन्वय व्याप्ति और २ व्यतिरेक व्याप्ति ।

अन्वयव्याप्ति—साधन सद्भाव में साध्य का सद्भाव होना अन्वय व्याप्ति है ।

व्यतिरेकव्याप्ति—साध्य के अभाव में साधन का अभाव होना व्यतिरेक व्ताप्ति है ।

सूत्र—स्वपरर्थाभ्यामनुमाने ॥११४॥

अर्थ—अनुमान दो प्रकार का है—

१ स्वार्थानुमान २ परमार्थानुमान ।

स्वार्थानुमान—साधन से साध्य का ज्ञान होना स्वार्थानुमान है ।

परमार्थानुमान—अनुमान के कहने वाले वचन को परार्थानुमान कहते हैं ।

सूत्र—सिद्धसाधनवाधितविषयाविकिञ्चित्करहेत्वाभासो॥११५॥

अर्थ अकिञ्चित्करहेत्वाभास दो प्रकार कार का है—

१ सिद्धिसाधन और २ वाधितविषय ।

सिद्धसाधन—जिस हेतु का साध्य सिद्ध हो उसे सिद्धसाधन अकिञ्चत्कर हेत्वाभास कहते हैं ।

वाधितविषय—जिस हेतु के साध्य में दूसरे प्रमाण से वाधा आवे उसे वाधितविषय अकिञ्चित्कर हेत्वाभास कहते हैं ।

सूत्र—अन्तर्वाह्यौपरिग्रहौ ॥११६॥

अर्थ—परिग्रह दो प्रकार का है—

१ अन्तरङ्ग और २ वाह्यपरिग्रह ।

अन्तरंगपरिग्रह—रागद्वेषादि परिणामों में जो उपार्जन संस्कारादि रूप ममत्वभाव होता है उसे अन्तरंग परिग्रह कहते हैं ।

वाह्यपरिग्रह—स्त्री, पुत्र, दासी, हाथी, घोड़ा, धन, धान्य, गृह आभरणादिकों में जो ममत्वभाव का होना उसे

बाह्यपरिग्रह कहते हैं।

सूत्र—अघातिघातिनीकर्मणी ॥११७॥

अर्थ—कर्म दो प्रकार के होते हैं-

१ अघातिया २ घातियाकर्म।

अघातियाकर्म—जो आत्मा के गुणों को तो न घाते, परन्तु घातने के सहायक शरीर आदि की रचना करावें वे वे अघातिया कर्म कहलाते हैं।

घातियाकर्म—जो आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सुख, शक्ति गुण को घाते उन्हें घातिया कर्म कहते हैं।

सूत्र—पुण्यपापरूपे वा ॥११८॥

अर्थ—पुण्य और पापके भेद से भी कर्म दो प्रकार के हैं।

पुण्यकर्म—जो जीव की इष्ट वस्तु को प्राप्त करावे उसे पुण्यकर्म कहते हैं।

पापकर्म—जो जीव को अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति करावे उसे पापकर्म कहते हैं।

सूत्र—देशसर्वतो घातिकर्मणी ॥११९॥

अर्थ—घातिया कर्म दो प्रकार के हैं-

१ देशघाती और २ सर्वघाती।

देशघाती कर्म—उन्हें कहते हैं जो आत्मा के गुणों का एकदेश घात करें।

सर्वघातीकर्म—उन्हें कहते हैं जो आत्मा के गुणों का सर्वदेश घात करें।

सूत्र—पुण्यपापेऽघातिकर्मणी ॥१२०॥

अर्थ—अघातिया कर्म दो प्रकार के हैं–

१ पुण्यकर्म, २ पापकर्म अघातिया।

सूत्र—पुण्यपापानुबंधिनी पुण्ये ॥१२१॥

अर्थ—पुण्यकर्म दो प्रकार का है–

१ पुण्यानुबंधीपुण्य, २ पापानुबंधी पुण्य।

पुण्यानुबंधीपुण्य—उसे कहते हैं जिसके उदयकाल में पुण्य भाव बने रहे और भविष्य में पुण्य का सम्बन्ध रहे।

पापानुबंधीपुण्य—उसे कहते हैं जिसके उदयकाल में पापमय भाव हो जाय और भविष्य में पापकर्म का बंध करा दे।

सूत्र—प्रशस्ताप्रशस्ते निदाने ॥१२२॥

अर्थ—निदान दो तरह का है–

१ प्रशस्तनिदान और २ अप्रशस्त निदान।

प्रशस्तनिदान—मुक्ति के बहिरंग निमित्त भूत वज्रर्षभनाराच संहनन उत्तमकुल, विशुद्ध भाव आदि की चाह को प्रशस्त निदान कहते हैं।

अप्रशस्तनिदान—विषयों की साधना के निमित्त भूत

इन्द्र राजा धनी परिवारयुक्त आदि होने की चाह करना अप्रशस्त निदान है।

सूत्र—विहायोगती च ॥१२३॥

अर्थ—विहायोगतिनामकर्म दो प्रकार का है—

१ प्रशस्त, २ अप्रशस्त।

प्रशस्तविहोयगति नामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से शुभगमन हो।

अप्रशस्तविहायोगति नामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से ऊंट गधा आदि के गमन की तरह अशुभ गमन हो।

सूत्र—स्थानप्रमाणयोर्निर्माणे ॥१२४॥

अर्थ—निर्माण नामकर्म दो तरह का है—

१ स्थान निर्माण, २ प्रमाण निर्माण।

स्थाननिर्माण नामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से अंग उपांगों की रचना ठीक ठीक स्थान पर हो।

प्रमाणनिर्माण नामकर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से अंग उपांगों की रचना ठीक ठीक प्रमाण से हो।

सूत्र—सुरभिदुरभी गन्धे ॥१२५॥

अर्थ—गन्ध दो प्रकार का है—

१ सुरभि (सुगन्ध) और २ दुरभि (दुर्गंध)।

सूत्र—मनोज्ञामनोज्ञेऽत्तविषयौ ॥१२६॥

अर्थ—इन्द्रियों के विषय दो तरह के हैं—

१ मनोज्ञ, २ अमनोज्ञ ।

मनोज्ञविषय—उसे कहते हैं जो इन्द्रियों के द्वारा सेवन से इष्ट लगें ।

अमनोज्ञविषय—उसे कहते हैं जो अनिष्ट लगें ।

सूत्र—तदतदाकारयोः स्थापने १२७॥

अर्थ—स्थापना २ प्रकार की है—

१ तदाकार स्थापना, २ अतदाकार स्थापना ।

तदाकार स्थापना—जिसकी स्थापना की जा रही हो उसके आकार रूप वस्तु में उसकी स्थापना करना तदाकार स्थापना है ।

अतदाकार स्थापना—बिना उस आकार के वस्तु में किसी की स्थापना करना अतदाकार स्थापना है ।

सूत्र—ज्ञानाज्ञानयोश्चेतने ॥१२८॥

अर्थ—चेतना दो प्रकार की है—

१ ज्ञानचेतना और २ अज्ञानचेतना ।

ज्ञानचेतना—ज्ञान रूप आत्मा का संचेतन करना ज्ञान चेतना है ।

अज्ञानचेतना—ज्ञान के सिवाय अन्य पदार्थ में कर्ता व भोक्तापन की बुद्धि करना अज्ञान चेतना है ।

सूत्र—कर्मकर्मफलयोरज्ञानचेतने ॥१२९॥

अर्थ—अज्ञानचेतना दो प्रकार की है—

१ कर्मचेतना और २ कर्मफलचेतना।

कर्मचेतना—ज्ञान से वाह्य पर पदार्थों में इसे मैं करता हूं ऐसा अनुभव करना कर्मचेतना है।

कर्मफलचेतना—ज्ञान से वाह्य पर पदार्थ में इसे मैं भोगता हूँ ऐसा अनुभव करना कर्मफलचेतना है।

सूत्र—सम्यग्मिथ्यैकान्तौ ॥१३०॥

अर्थ—एकान्त दो प्रकार का है—

सम्यक्एकान्त—वस्तु में रहने वाले अन्य धर्मों का विरोध न करके किसी विवक्षित धर्म की सिद्धि करना सम्यक् एकान्त है।

मिथ्यैकान्त—वस्तु में केवल किसी एक धर्म को ही मानना शेष का निषेध होना मिथ्यैकान्त है।

सूत्र—महावान्तरसत्ते सत्ते ॥१३१॥

अर्थ—सत्ता के दो भेद हैं—

१ महासत्ता २ आवान्तरसत्ता।

महासत्ता—सर्व पदार्थों में रहने वाले सामान्तया सत्त्व को महासत्ता कहते हैं।

आवान्तरसत्ता—भिन्न २ पदार्थों में रहने वाले प्रतिनियत अस्तित्व को आवान्तरसत्ता कहते हैं।

सूत्र—स्थलनभश्चरौ भोगभूमिजतिर्यञ्चौ ॥१३२॥

अर्थ—भोगभूमिज तिर्यञ्च २ प्रकार के हैं-

१ स्थलचर २ नभश्चर । जलचरतिर्यञ्च भोगभूमि में नहीं होते ।

स्थलचर—जो पृथ्वी पर चलें उड़ न सकें ।

नभश्चर—जो आकाश में उड़े ।

सूत्र—सुभोगकुभोगभूमी भोगभूमी ॥१३३॥

अर्थ—भोगभूमि २ प्रकार की हैं ।

१ सुभोगभूमि और २ कुभोगभूमि ।

सुभोगभूमि—जहां के मनुष्यतिर्यञ्च सुन्दर आकार के हों तथा उत्तम भोगोपभोग सामग्री बिना प्रयास के प्राप्त करें ।

कुभोगभूमि—जहां के मनुष्य तिर्यञ्च कुछ विरूपाकार हों तथा मिट्टी आदि आहार, व अन्य उपभोग सामग्री विना प्रयास के प्राप्त करें ।

सूत्र—अर्हत्सिद्धौदेवौ ॥१३४॥

अर्थ—देव दो प्रकार के हैं-

१ अरहंतदेव २ सिद्धदेव ।

अरहंत—जिन्होंने चार घातिया कर्मों का क्षय कर दिया है वीतराग सर्वज्ञ हैं किन्तु शरीर सहित हैं तथा शेष के चार अघातिया कर्मों का क्षय करके सिद्ध होवेंगे वे अरहंत हैं ।

सिद्ध—जिन्होंने आठों कर्मों का क्षय कर दिया है, शरीर से भी रहित होकर लोक के ऊपर विराजमान हैं सदा अनन्तकाल तक अपने अनन्तज्ञान दर्शन सुख शक्ति स्वरूप में विराजमान रहेंगे उन्हें सिद्ध कहते हैं।

सूत्र—द्रव्यभावलिंगिनौ मुनी ॥१३५॥

अर्थ—मुनि दो प्रकार के हैं—

१ द्रव्यलिंगिमुनि २ भावलिंगिमुनि।

द्रव्यलिंगिमुनि—जिनका लिंग (भेष) तो मुनि का हो परन्तु गुण स्थान एक से लेकर ५ तक में कोई सा होवे द्रव्यलिंगमुनि कहलाते हैं।

भावलिंगीमुनि—जिनका लिंग (भेष) भी मुनि का हो तथा गुण स्थान ६वां व इससे ऊपर १२वें तक का कोई हो वे भावलिंगी मुनि कहलाते हैं।

सूत्र—उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ काल्पांशौ ॥१३६॥

अर्थ—कल्पकाल २ अंश (भाग) हैं—

१ उत्सर्पिणी और २ अवसर्पिणी।

उत्सर्पिणी—जिसकाल में मनुष्यों के शरीर सुख आयु आदि बढ़ते जाते हैं उसे उत्सर्पिणीकाल कहते हैं।

अवसर्पिणी - जिस काल में मनुष्यों के शरीर सुख आयु आदि घटते जाते हैं उस काल को अवसर्पिणी काल कहते हैं।

सूत्र—अंतर्बाह्योपधित्यागौ व्युत्सर्गौ ॥१३७॥

अर्थ—व्युत्सर्ग के दो भेद हैं—

१ अंतरुपधित्याग २ बाह्योपधित्याग ।

अंतरुपधित्याग—रागादिक विभावों में आत्मीयता की कल्पना का त्याग करना अंतरुपधित्याग है ।

बाह्योपधित्याग, मकान धन शरीरादि से ममत्व का त्याग करना बाह्योपधित्याग है ।

सूत्र—अंतर्बाह्ये तपसी ॥१३८॥

अर्थ—तप दो प्रकार का है—

१ अंतरंग तप, २ बाह्यताप ।

अन्तरंग तप—अन्तरंग में भावों की निर्मलता को अन्तरंगतप कहते हैं ।

बहिरंगतप—उपवास कायक्लेश आदि तपों को बहिरंग तप कहते हैं ।

सूत्र—कायकषाययोः सल्लेखने ॥१३९॥

अर्थ—सल्लेखना दो प्रकार की है—

१ कायसल्लेखना, २ कषायसल्लेखना ।

कायसल्लेखना—खाद्य स्वाद्य लेह्य पेय आहार आदि के त्याग से काय का कृश करना कायसल्लेखना है ।

कषायसल्लेखना—कषाय भावों को कृश कर देना कषायसल्लेखना है ।

सूत्र—ऋद्धयनृद्धिप्राप्तावार्यौ ॥१४०॥

अर्थ—आर्य मनुष्य दो प्रकार के हैं-

१ ऋद्धिप्राप्तार्य, २ अनृद्धिप्राप्तार्य ।

ऋद्धिप्राप्तार्य—जिन साधुओं के ऋद्धि प्राप्त हो गई वे ऋद्धिप्राप्तार्य हैं ।

अनृद्धिप्राप्तार्य—जिन पुरुषों ने उत्तम क्षेत्रकुल आदि प्राप्त किया है परन्तु ऋद्धि कोई नहीं है वे अनृद्धिप्राप्तार्य हैं ।

सूत्र—यमनियमौ त्यागौ ॥१४१॥

अर्थ—अथ त्याग दो प्रकार का है-

१ यमरूप, २ निममरूप ।

यम—यावज्जीव (मरणपर्यन्त) त्याग करने को यम कहते हैं ।

नियम—कुछ काल की मर्यादा लेकर त्याग करने को नियम कहते है ।

सूत्र—ज्ञानदर्शनोपयोगौ भावप्राणौ ॥१४२॥

अर्थ—भावप्राण के दो भेद हैं-

ज्ञानोपयोग, २ दर्शनोपयोग ।

ज्ञानोपयोग—आत्मा के ज्ञान की अवस्था गुण को कहते हैं ।

दर्शनोपयोग—आत्मा के दर्शन गुण की अवस्था को

कहते हैं।

सूत्र—स्वपरयोर्दये ॥१४३॥

अर्थ—दया दो प्रकार की है– १ स्वदया, २ परदया।

स्वदया—मोह राग द्वेष आदि विकारों के क्लेश से दूर रह कर आत्मा की रक्षा करना स्वदया है।

परदया—दूसरे आत्भावों की पीड़ा दूर करने का उपाय करना परदया है।

सूत्र—वादरसूक्ष्मौ पृथ्वीकायिकौ ॥१४४॥

अर्थ—पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं–

१ वादर और २ सूक्ष्म।

वादर पृथ्वीकायिक—पृथ्वी ही जिनका शरीर है वे पृथ्वीकायिक जीव हैं और जिन पृथ्वीकायिक जीवों का वादर शरीर (जो दूसरे को रोक सके व दूसरों से रुक सकें घाते जा सकें) हो वे वादर पृथ्वीकायिक जीव हैं।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक—जिन पृथ्वीकायिक जीवों का सूक्ष्म (जो दूसरों को न रोक सकें न व दूसरों से रुक सकें, न घाते जा सकें) शरीर हो वे सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव कहलाते हैं।

(इसी प्रकार आगे के सूत्रों में अर्थ लगाना चाहिये)

सूत्र—जलकायिकौ ॥१४५॥

अर्थ—जलकायिक जीव भी दो प्रकार के हैं—
१ बादर, २ सूक्ष्म।
सूत्र—अग्निकायिकौ ॥१४६॥
अर्थ—अग्निकायिक जीव भी दो प्रकार के हैं—
१ बादर, २ सूक्ष्म।
सूत्र—वायुकायिकौ ॥१४७॥
अर्थ—वायुकायिक जीव भी दो प्रकार के हैं—
१ बादर, २ सूक्ष्म।
सूत्र—निगोदौ च ॥१४८॥
अर्थ—और निगोद जीव भी दो प्रकार के हैं—
१ बादर, २ सूक्ष्म।
सूत्र—तैजसकार्मणेऽप्रतीघातशरीरे ॥१४९॥
अर्थ—प्रतीघात रहित शरीर दो हैं—
१ तैजस, १ कार्माणि।
तैजसशरीर—उसे कहते हैं जो शरीर में तेज (कांति) दे।
कार्माणिशरीर—अष्टम्कर्मों के समूह को कहते हैं।
सूत्र—अनादिसम्बद्धे च ॥१५०॥
अर्थ—अनादिकाल से सम्बन्ध रखने वाले भी शरीर ये ही २ हैं- १ तैजस, २ कार्माणि।
सूत्र—आहारकमार्गणायामाहारकानाहारकौ ॥१५१॥
अर्थ—आहारकमार्गणा में दो प्रकार के जीव खोजे

जाते हैं— १ आहारक, २ अनाहारक।

आहारक—शरीरवर्गणा को ग्रहण करने वाला जीव आहारक कहलाता है।

अनाहारक—शरीरवर्गणा को ग्रहण न कर सकने वाला जीव अनाहारक कहलाता है।

सूत्र—द्वीन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तौ द्वीन्द्रियजीवसमासौ ॥१५२॥

अर्थ—द्वीन्द्रिय के जीव समस्त २ हैं—

१ द्वीन्द्रियपर्याप्तक, २ दीन्द्रिय अपर्याप्त।

दीन्द्रिय पर्याप्त—जिन दीन्द्रिय जीवों के पर्याप्ति पूर्ण हो गई है वे दीन्द्रिय पर्याप्त कहलाते हैं।

दीन्द्रिय अपर्याप्त—जिन दीन्द्रिय जीवों के पर्याप्ति पूर्ण नहीं हुई (निर्वृत्त्यपर्याप्त) या पूर्ण न हो सकेगी (लब्ध्यपर्याप्त) वे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त हैं। (पर्याप्त अपर्याप्त का यह लक्षण इस प्रकरण में आगे भी लगाना सिर्फ नारक और देव, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये लब्ध्यपर्याप्त नहीं होते।

सूत्र—त्रीन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तौ त्रीन्द्रियजीवसमासौ ॥१५३॥

अर्थ—त्रीन्द्रियसम्बन्धी जीवसमास दो हैं—

१ त्रीन्द्रिय पर्याप्त, २ त्रीन्द्रिय अपर्याप्त।

सूत्र—चतुरिन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तौ चतुरिन्द्रियजीव-समासौ ॥१५४॥

अर्थ—चतुरिन्द्रिय सम्बन्धी जीवसमास दो हैं-

१ चतुरिन्द्रियपर्याप्त, २ चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त ।

सूत्र—वादरैकेन्द्रियपर्याप्तौ वादरैकेन्द्रियजीवसमासौ॥१५५॥

अर्थ—वादरएकेन्द्रिय सम्बन्धी जीवसमास दो हैं-

१ वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, और २ वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त ।

सूत्र—सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तौ सूक्ष्मैकेन्द्रिय जीव समासौ ॥१५६॥

अर्थ—सूक्ष्म एकेन्द्रिय सम्बन्धी जीवसमास दो हैं-

१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और २ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त ।

सूत्र—असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तवसंज्ञिपंचेन्द्रियजीव-समासौ ॥१५७॥

अर्थ—असंज्ञीपंचेन्द्रिय सम्बन्धी जीवसमास दो हैं-

१ असंज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त २ असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त। ।

सूत्र—संज्ञीपंचेन्द्रियपर्याप्तौ संज्ञिपंचेन्द्रियजीव-समासौ॥ १५८॥

अर्थ—संज्ञीपंचेन्द्रिय सम्बन्धी जीवसमास दो हैं-

१ संज्ञीपंचेन्द्रिय पर्याप्त, २ संज्ञीपंचेन्द्रिय अपर्याप्त ।

सूत्र—पर्याप्तपर्यप्तौ देवौ देवजीवसमासौ ॥१५९॥

अर्थ—देव सम्बन्धी जीवसमास दो हैं-

१ पर्याप्तदेव, अपर्याप्तदेव ।

सूत्र—तौ नारकौ नारक जीवसमासौ ॥१६०॥

अर्थ—नारक सम्बन्धी जीवसमास भी दो हैं-

१ पर्याप्तनारक, २ अपर्याप्तनारक ।

सूत्र—पृथ्वीकायिकौ पर्याप्तपर्याप्तौ ॥१६१॥

अर्थ—पृथ्वीकायिकजीव दो प्रकार के हैं-

१ पर्याप्त, २ अपर्याप्त ।

सूत्र—जलकायिकौ ॥१६२॥

अर्थ—जलकायिक जीव दो प्रकार के हैं-

१ पर्याप्त २ अपर्याप्त ।

सूत्र—अग्निकायिकौ ॥१६३॥

अर्थ—अग्निकायिकजीव दो प्रकार के हैं-

१ पर्याप्त, २ अपर्याप्त ।

सूत्र—वायुकायिकौ ॥१६४॥

अर्थ—वायुकायिकजीव दो प्रकार के हैं-

१ पर्याप्त, २ अपर्याप्त ।

सूत्र—निगोदौ च ॥१६५॥

अर्थ—और निगोदजीव भी दो प्रकार के हैं-

सूत्र—पुरुषस्त्रीवेदौ देवगतिकवेदौ ॥१६६॥

अर्थ—देवगति के जीवों के वेद दो ही हैं—

१ पुरुषवेद, २ स्त्रीवेद ।

सूत्र—भोगभूमिजवेदौ च ॥१६७॥

अर्थ—भोगभूमिया मनुष्य तिर्यंचों के भी दो भेद हैं—

१ पुरुषवेद, २ स्त्रीवेद ।

सूत्र—समुद्घातगतसयोगिप्राणौ कायबलायुषी ॥१३८॥

अर्थ—समुद्घात अवस्था को प्राप्त सयोगी जिनके दो प्राण होते हैं—१ कायबल, २ आयु ।

सूत्र—जीवाजीवावाश्रवाधिकरणौ ॥१६९॥

अर्थ—आश्रव के अधिकरण दो हैं—

१ जीव, २ अजीव ।

जीवाधिकरण—जीव के योग और कषाय भाव से होने वाला आश्रव जीवाधिकरण आश्रव है ।

अजीवाधिकरण—जिस आश्रव में बाह्य पदार्थों का निमित्त व आश्रय विशेष होता है वह अजीवाधिकरण आश्रय है ।

सूत्र—पृथक्त्वापृथक्त्वीये विक्रिये ॥१७०॥

अर्थ—विक्रिया दो प्रकार की होती हैं—

१ पृथक्त्वविक्रिया, अपृथक्त्वविक्रिया ।

पृथक्त्वविक्रिया—मूल शरीर से जुदे अन्य शरीर आदि आकार ग्रहण करना पृथक्त्वविक्रिया है ।

अपृथक्त्वविक्रिया—मूल शरीर को ही नाना प्रकार

परिणामाना अपृथक्त्वविक्रिया है ।

सूत्र—करौ द्वयङ्गनमस्काराङ्गौ ॥१७१॥

अर्थ—द्वयङ्गनमस्कार के अङ्ग दो हैं—

१ दक्षिण हाथ, २ वाम हाथ ।

सूत्र—मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वे दर्शनमोहसर्वघातिनी॥१७२॥

अर्थ—दर्शनमोहनीय की सर्वघाती प्रकृति दो हैं--

१ मिथ्यात्व, २ सम्यङ्‌मिथ्यात्व ।

मिथ्यात्वप्रकृति—उसे कहते हैं जिसके उदय से सम्यक्त्व रूप आत्म का परिणाम न हो ।

सम्यङ्‌मिथ्यात्व—उसे कहते हैं जिसके उदय से आत्माओं के सम्यक्त्व और मिथ्यात्व अर्थात् मिश्र परिणाम हो जिसे न केवल सम्यक्त्व कह सकते और न मिथ्यात्व ।

सूत्र—प्रतिज्ञाहेतू अनुमानाङ्गौ ॥१७३॥

अर्थ—अनुमान के मुख्य अङ्ग दो हैं—

१ प्रतिज्ञा, २ हेतु ।

प्रतिज्ञा—पक्ष (जिसमें साध्य सिद्ध करना है) और साध्य (जो सिद्ध किया जाना है) के कहने को प्रतिज्ञा कहते हैं ।

हेतु—साधन (जिस युक्ति के द्वारा साध्य किया जावे) को कहते हैं ।

सूत्र—स्वपरगणयोरनुपस्थाने ॥१७४॥

अर्थ—अनुपस्थापन प्रायश्चित के दो भेद हैं-

१ निजगणानुपस्थापन २ परगणानुपस्थापन।

निजगणानुपस्थापन—उत्तम ३ संहनन के धारी और ९ या १० पूर्व के ज्ञाता मुनियों से प्रमाद से कोई महान विरुद्ध कार्य हो जावे तो उनको यह दण्ड निश्चित समय तक दिया जाता है इस दण्ड में वे मुनियों के आश्रम में ३२ हाथ के अन्तर से बैठते हैं, सब मुनियों को नमन करते हैं, (बदले में अन्यमुनि नमन नहीं करते) मौन से रहते, पीछी को उल्टी रखते हैं यथा शक्ति उपवास करते हैं, यह निजगणानु-पस्थापन प्रायश्चित्त है।

परगणानुपस्थापन—जो मुनि अभिमान से महान विरुद्ध कार्य करे उन्हें यह दण्ड दिया जाता है इस दण्ड में अपराधी मुनि अपने संघ से क्रम २ से सात संघों के आचार्यों के पास जाकर अपना दोष कहता है फिर सातवें संघ वाले पहिले संघ वाले के पास भेज देते हैं तब पहिले संघ वाले ही आचार्य निजगणानुपस्थापन में लिखा हुआ ही दण्ड देते हैं। यह परगणानु-पस्थापन है।

सूत्र—मंत्रामृतेऽनुस्नाने ॥१७५॥

अर्थ—अनुस्नान दो प्रकार का है—

१ मन्त्रस्नान, २ अमृतस्नान ।

मन्त्रस्नान—झं वं इन दो अक्षरों को जल मण्डल में लिखकर जल में उसे रक्खे फिर तर्जनी अंगुली से जल लेकर अपने ऊपर डाले यह मन्त्रस्नान है।

अमृतस्नान—झं वं ह्वः पोहः इन अमृत अक्षरों से अपने को सींचा हुआ समझकर ध्यान करे यह अमृत स्नान है।

सूत्र—भोगमानार्थिकेऽप्रशस्त निदाने ॥१७६॥

अर्थ—अप्रशस्त निदान दो प्रकार का है—

१ भोगार्थ निदान और २ मानार्थ निदान ।

भोगार्थ निदान—भोगों के लिये इच्छा करना भोगार्थ निदान है।

मानार्थनिदान—मान बढ़ाई पाने के लिये इच्छा करना मानार्थ निदान है।

सूत्र—भाषात्मकाभाषात्मकौ शब्दौ ॥१७७॥

अर्थ—शब्द दो प्रकार के हैं—

१ भाषात्मक २ अभाषात्मक ।

भाषात्मक—उच्चारणों से होने वाली भाषा रूप शब्द को भाषात्मक शब्द कहते हैं।

अभाषात्मक—उच्चारण से न होने वाली भाषा को अभाषात्मक शब्द कहते हैं।

सूत्र—अक्षरात्मकानक्षरात्मकौ भाषात्मकौ शब्दौ १७८॥

अर्थ—भाषात्मक शब्द दो प्रकार के हैं—

१ अक्षरात्मक, २ अनक्षरात्मक ।

अक्षरात्मक—मनुष्यों के व्यवहार के हेतुभूत, शास्त्रों के निर्माण करने वाले, अकारादि अक्षर रूप शब्दों को अक्षरात्मक भाषाशब्द कहते हैं ।

अनक्षरात्मक—वर्ण सहित, द्वीन्द्रियादि जीवों के शब्द अनक्षरात्मक भाषा शब्द कहलाते हैं ।

सूत्र—प्रायोगिकवैस्रसिककावभाषात्मकशब्दौ ॥१७९॥

अर्थ—अभाषात्मक शब्द के दो भेद हैं—

१ प्रायोगिक, २ वैस्रसिक ।

प्रायोगिक—बाजे बजाने आदि के शब्द प्रायोगिक शब्द हैं ।

वैस्रसिक—जो बिना प्रयोग से हों वे वैस्रसिक शब्द हैं । जैसे—मेघ का शब्द दिव्यध्वनि आदि ।

सूत्र—आदिमत्परिणामौ ॥१८०॥

अर्थ—आदिमान् परिणमन भी दो प्रकार का है—

१ प्रायोगिक, २ वैस्रसिक ।

सूत्र—क्रिये च ॥१८१॥

अर्थ—और क्रिया भी दो प्रकार की है—

१ प्रायोगिक, २ वैस्रसिक ।

सूत्र—सामर्थ्ये च ॥१८२॥

अर्थ—सामर्थ्य भी दो प्रकार के हैं—

१ प्रायोगिक, २ वैस्रसिक।

सूत्र—वंधौ च ॥१८३॥

अर्थ—और बंध भी दो तरह का है—

१ प्रायोगिक, २ वैस्रसिक।

सूत्र—एकसर्वदेशतोऽभिघटदोषौ ॥१८४॥

अर्थ—अभिघट दोष दो प्रकार का है—

१ एकदेशाभिघट, २ सर्वदेशाभिघट।

एकदेशाभिघट—एक ही मुहल्ले में पंक्तिबद्ध गृहों के बिना अनेक गृह का आहार प्राप्त करने में एकदेशभिघट दोष होता है।

सर्वदेशाभिघट—दूसरे मुहल्ले ग्राम देश का आया हुआ प्राप्त करने में सर्वदेशाभिघट दोष है।

सूत्र—आदृतानादृतावेकदेशाभिघटौ ॥१८५॥

अर्थ—एकदेशाभिघट दोष दो प्रकार का है—

१ आदृत, २ अनादृत।

सूत्र—स्वभावविभावौ गुणपर्यायौ ॥१८६॥

अर्थ—गुण की पर्यायें (अवस्थायें) दो प्रकार की हैं।

१ स्वभावगुण पर्याय, और २ विभावगुणपर्याय।

स्वभावगुणपर्याय—जिस गुण का जो स्वभाव है उस हालत

में रहना स्वभावगुणपर्याय है। जैसे केवल ज्ञान आदि।
विभावगुणपर्याय– उपाधि के निमित्त से स्वभाव के विरुद्ध पर्याय होने को विभावगुणपर्याय कहते हैं। जैसे रागद्वेष आदि।
सूत्र—व्यञ्जनपर्यायौ च ॥१८७॥
अर्थ—और व्यञ्जन पर्याय भी दो तरह के हैं।
१ स्वभाव व्यञ्जनपर्याय और २ विभावव्यञ्जनपर्याय।
स्वभाव व्यञ्जनपर्याय–जो बिना दूसरों के स्वभाव सदृश पर्याय हो उसे स्वभावव्यञ्जन पर्याय कहते हैं। जैसे जीव की सिद्ध पर्याय व पुद्गल की परमाणुपर्याय।
विभावव्यञ्जनपर्याय–उसे कहते हैं जो दूसरों के निमित्त से प्रदेशवत्वगुण का परिणमन हो। जैसे–जीव की नर नारक आदि पर्याय व पुद्गल की स्कन्ध पर्याय।
सूत्र—लौकिकालौकिकेऽशुचित्वे ॥१८८॥
अर्थ—अशुचिता दो प्रकार की है।
१ लौकिक, २ अलौकिक।
लौकिक अशुचित्व–वह है जिससे लोकव्यवहार में अशुद्धता मानी जावे।
अलौकिक अशुचित्व– कर्मकलङ्क व रागभाव से आत्मा के मलीन होने को अलौकिक अशुचित्व कहते हैं।
सूत्र—उत्सर्गापवादौ चारित्रे ॥१८९॥

अर्थ--चारित्र के दो अङ्ग हैं।

१ उत्सर्गरूप २ अपवादरूप।

उत्सर्ग- प्रवृत्तिरहित निवृत्तिरूप चारित्र को उत्सर्गरूप चारित्र कहते हैं।

अपवाद व्रतों में भङ्ग न करते हुए प्रवृत्ति करने को अपवादरूप चारित्र कहते हैं।

सूत्र—पर्यायपर्यायसमासावनक्षरात्मकश्रुतज्ञाने ॥१६०॥

अर्थ—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के दो भेद हैं।

१ पर्यायज्ञान और २ पर्यायसमास ज्ञान।

पर्यायश्रुतज्ञान-तीन मोड़े लेकर उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म-निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के पहिले मोड़े के समय में पर्यायश्रुतज्ञान होता है यह सबसे जघन्य श्रुत-ज्ञान है इस पर कोई आवरण नहीं होता।

पर्यायसमासश्रुतज्ञान—पर्यायज्ञान से अधिक व अक्षरज्ञान से कम श्रुतज्ञान को पर्यायसमास श्रुतज्ञान कहते हैं।

सूत्र—अक्षीणमहानसालयावक्षीणर्द्धी ॥१६१॥

अर्थ—अक्षीणर्द्धि दो प्रकार की है—

१ अक्षीणमहानस, २ अक्षीणालय।

अक्षीणमहानस—जिस ऋद्धि के निमित्त से ऋद्धिधारी मुनि का जहाँ आहार हो जाय उस रसोईघर से चक्री का समस्त सैन्य भी भोजन करे तब भी कमी न पड़े उसे

अक्षीणमहानस ऋद्धि कहते हैं।

अक्षीणसंवास—जिस ऋद्धि के निमित्त से ऋद्धिधारी मुनि का जहाँ आवास हो वहां चक्री का कटक भी समस्त आजाय तब भी वे भी ठहर सकें उस ऋद्धि को अक्षीण-संपास (अक्षीणालय) ऋद्धि कहते हैं।

सूत्र—क्षेत्रर्द्धीवा ॥१९२॥

अर्थ—अथवा क्षेत्रऋद्धि के ये दो भेद हैं—

१ अक्षीणमहानस, २ अक्षीणसंवास।

सूत्र—स्थानप्रयत्नौ वचनसंस्कारहेतू ॥१९३॥

अर्थ—वचनसंस्कार के कारण दो हैं—

१ स्थान, २ प्रयत्न।

स्थान—तालु मूर्धादि स्थान हैं।

प्रयत्न—स्थानों के आधार में उद्यम होना प्रयत्न है।

सूत्र—शिष्टदुष्टौ वचनप्रयोगौ ॥१९४॥

अर्थ—वचनप्रयोग दो प्रकार के हैं—

१ शिष्टवचनप्रयोग और २ दुष्टवचनप्रयोग।

शिष्टवचन—उत्तम अभिप्राय से कहे गये हित और प्रिय वचन को शिष्टवचन कहते हैं।

दुष्टवचन—खोटे अभिप्राय से कहे गये, अहित अप्रिय वचन को दुष्टवचन कहते हैं।

सूत्र—हीनप्रयोगक्रमभंगप्रयोगौ बालप्रयोगभासौ ॥१९५॥

अर्थ—बालप्रयोगाभास दो प्रकार का है—
१ हीन प्रयोग और २ क्रमभंगप्रयोग।
हीनप्रयोग—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन इन अनुमान के पांच अवयवों में से ४-३ या २ अवयवों का प्रयोग करना हीनप्रयोग बालप्रयोगाभास है।
क्रमभंगप्रयोग—प्रतिज्ञा हेतु आदि का यथा तथा बिना क्रम के प्रयोग करना क्रमभंग बालप्रयोगाभास है।
सूत्र—अवतंसाकेतुमत्यौ वल्लभिकेकिंपुरुषेन्द्रस्य ॥१९६॥
अर्थ—किंपुरुष (व्यन्तरों में से एक भेद) इन्द्र की दो वल्लभिका हैं—
१ अवतंसा, २ केतुमती।
सूत्र—रतिसेना रतिप्रिये किंनरेन्द्रस्य ॥१९७॥
अर्थ—किंनर इन्द्र की रतिसेना और रतिप्रिया ये दो वल्लिभिका हैं।
सूत्र—रोहिणीनवम्यौ सत्पुरुषस्य ॥१९८॥
अर्थ—सत्पुरुषनामक व्यन्तरेन्द्र की रोहिणी और नवमी ये दो वल्लभिका हैं।
सूत्र—ह्रीपुष्पावत्यौ महापुरुषस्य ॥१९९॥
अर्थ—महापुरुषनामक व्यन्तरेन्द्र की ह्री और पुष्पावती ये दो वल्लभिका हैं।
सूत्र—भोगाभोगावत्यौ महाकायस्य ॥२००॥

अर्थ—महाकायनामक व्यन्तरेन्द्र की दो वल्लभिका हैं।
१ भोगा, २ भोगावती।

सूत्र—पुष्पगंध्यनिन्दितेऽतिकायस्य ॥२०१॥

अर्थ—अतिकायनामक व्यन्तरेन्द्र की पुष्पगंधी और अनिन्दिता ये दो वल्लभिका हैं।

सूत्र—सरस्वती स्वरसेने गीतरतेः ॥२०२॥

अर्थ—गीतरती नाम गन्धर्वजाति के व्यन्तरेन्द्र की सरस्वती और स्वरसेना नाम की २ वल्लभिका हैं।

सूत्र—नन्दिनीप्रियदर्शने गीतयशसः ॥२०३॥

अर्थ—गीतयशनामक, गन्धर्वजाति के व्यन्तरेन्द्र की दो वल्लभिका हैं जिनके नाम ये हैं –
१ नन्दिनी, २ प्रियदर्शना।

सूत्र—कुन्दाबहुपुत्रदेव्यौ मणिभद्रस्य ॥२०४॥

अर्थ—मणिभद्रनामक, यक्षजाति के व्यन्तरेन्द्र की दो वल्लभिका हैं।
१ कुन्दा, २ बहुपुत्रदेवी।

सूत्र—तारोत्तमे पूर्णभद्रस्य ॥२०५॥

अर्थ—पूर्णभद्रनामक यक्षेन्द्र की तारा और उत्तमा नाम की दो वल्लभिका हैं।

सूत्र—पद्मावसुमित्रे भीमस्य ॥२०६॥

अर्थ—भीमनामक राक्षसेन्द्र की पद्मा व वसुमित्रा ये दो

वल्लभिका हैं ।

सूत्र—रत्नाढ्यकनकप्रभे महाभीमस्य ॥२०७॥

अर्थ—महाभीम नामक राक्षसेन्द्र की रत्नाढ्य और कनक प्रभा नाम की दो वल्लभिका हैं ।

सूत्र—रूपवतीबहुरूपे सुरूपस्य ॥२०८॥

अर्थ—सुरूपनामक भूतेन्द्र की रूपवती और बहुरूपा ये दो वल्लभिका हैं ।

सूत्र—सुषीमासुमुखे प्रतिरूपस्य ॥२०९॥

अर्थ—प्रतिरूपनामक भूतेन्द्र की सुषीमा और सुमुखा ये दो वल्लभिका हैं ।

सूत्र—कमलाकमलप्रभे कालस्य ॥२१०॥

अर्थ—कालनामक पिशाचेन्द्र की कमला और कमलप्रभा ये दो वल्लभिका हैं ।

सूत्र—उत्पलासुदर्शनके महाकालस्य ॥२११॥

अर्थ—महाकालनामक पिशाचेन्द्र की उत्पला और सुदर्शन का नामकी दो वल्लभिका हैं ।

सूत्र—मधुरामधुरालापे गणिकामहत्तर्यौ किंपुरुष-स्येन्द्रस्य ॥२१२॥

अर्थ—किंपुरुषनामक किंनरेन्द्र की मधुरा व मधुरालापा नाम की दो गणिका महत्तरी हैं ।

सूत्र—सुस्वरामृदुभाषिण्यौ किंनरस्य ॥२१३॥

अर्थ—किंनर नामक किंनरेन्द्र की दो गणिका महत्तरी हैं
१ सुस्वरा, २ मृदुभाषिणी।

सूत्र—पुरुषप्रियापुंकांते सत्पुरुषस्य ॥२१४॥

अर्थ—सत्पुरुषनामक किंपुरुषजाति के व्यन्तरेन्द्र की गणिकामहत्तरी दो हैं।

१ पुरुषप्रिया, २ पुंकान्ता।

सूत्र—सौम्यापुंदर्शिन्यौ महापुरुषस्य ॥२१५॥

अर्थ—महापुरुष नामक किंपुरुषेन्द्र की सौम्या और पुंदर्शिनी ये दो गणिका महत्तरी हैं।

सूत्र—भोगाभोगवत्यौ महाकायस्य ॥२१६॥

अर्थ—महाकायनामक महोरगेन्द्र की भोगा और भोगवती ये दो गणिकामहत्तरी हैं।

सूत्र—भुजंगाभुजंगप्रियेऽतिकायस्य ॥२१७॥

अर्थ—भुजंगा और भुजंगप्रिया ये दो अतिकायनामक महोरगेन्द्र की गणिकामहत्तरी हैं।

सूत्र—सुघोषाविमले गीतरतेः ॥२१८॥

अर्थ—गीतरति नामक गन्धर्वेन्द्र की गणिकामहत्तरी दो हैं।

१ सुघोशा, २ विमला।

सूत्र—सुस्वरानिन्दिते गीतयशसः ॥२१९॥

अर्थ—गीतयश नामक गन्धर्वेन्द्र की दो गणिकामहत्तरी हैं

१ सुस्वरा, २ अनिन्दिता ।

सूत्र—भद्रासुभद्रे मणिभद्रस्य ॥२२०॥

अर्थ—मणिभद्र नामक यक्षेन्द्र की मणिकामहत्तरी दो हैं ।
१ भद्रा, २ सुभद्रा ।

सूत्र—मालिनिपद्ममालिन्यौ पूर्णभद्रस्य ॥२२१॥

अर्थ—पूर्णभद्र नामक यक्षेन्द्र की मालिनी और पद्म-मालिनी ये दो गणिकामहत्तरी हैं ।

सूत्र—शर्वरीसर्वसेने भीमस्य ॥२२२॥

अर्थ—भीमनामक राक्षसेन्द्र की शर्वरी व सर्वसेना ये दो गणिकामहत्तरी हैं ।

सूत्र—रुद्राप्रियदर्शने महाभीमस्य ॥२२३॥

अर्थ—महाभीम नामक राक्षसेन्द्र की रुद्रा व प्रियदर्शना ये दो गणिकामहत्तरी हैं ।

सूत्र—भूतकान्ताभूते सुरूपस्य ॥२२४॥

अर्थ—सुरूप नामक भूतेन्द्र की भूतकान्ता व भूता ये दो गणिकामहत्तरी हैं ।

सूत्र—भूतदत्तामहाभुजे प्रतिरूपस्य ॥२२५॥

अर्थ—प्रतिरूप नामक भूतेन्द्र की भूतदत्ता और महाभुजा नाम की दो गणिकामहत्तरी हैं ।

सूत्र—अम्बाकराले कालस्य ॥२२६॥

अर्थ—कालनामक पिशाचेन्द्र की अम्बा और कराला ये

दो गणिकामहत्तरी हैं।

सूत्र—सुरसासुदर्शन के महाकालस्य ॥२२७॥

अर्थ—सुरसा और सुदर्शनका ये दो महाकालनामक पिशाचेन्द्र की गणिकामहत्तरी हैं।

सूत्र—ब्रह्महृदयलांतवके लान्तवकापिष्ठेन्दर्कविमाने ॥२२८॥

अर्थ—लांतव कापिष्ठ नाम स्वर्गयुगल के इन्द्रकविमान दो हैं- १ ब्रह्महृदय, और २ लांतवक।

सूत्र—देवोत्तरकुरूत्तमभोगभूमी ॥२२९॥

अर्थ—उत्तमभोगभूमी दो है- १ देवकुरु, २ उत्तरकुरु।

सूत्र—हरिरम्यके मध्यमभोगभूमी ॥२३०॥

अर्थ—मध्यमभोगभूमि दो हैं-

१ हरिक्षेत्र, २ रम्यकक्षेत्र।

सूत्र—हैमवतहैरण्यवते जघन्यभोगभूमी ॥२३१॥

अर्थ—जघन्यभोगभूमि दो हैं-

१ हैमवतक्षेत्र, २ हैरण्यवतक्षेत्र।

सूत्र—चित्रविचित्रे सीतोदोभयतटस्थयमकगिरी ॥२३२॥

अर्थ—सीता नदी के दोनों तट पर यमकगिरि दो हैं-

१ चित्र, २ विचित्र।

सूत्र—यमकमेघौ सीतोदोभयतटस्थयमकगिरी ॥२३३॥

अर्थ—सीतोदा नदी के दोनों तट पर यमक और मेघ नामक दो यमकगिरी हैं।

सूत्र—कौस्तुभ कौस्तुभासौ वडवामुखपातालस्य पार्श्वस्थौ पर्वतौ ॥२३४॥

अर्थ—लवणसमुद्र में जम्बूद्वीप की वेदिका से ६५००० योजन परे चारों दिशावों में चार पाताल हैं उनमें से वडवामुख नामक पाताल के दोनों तरफ दो पर्वत हैं जिनके नाम ये हैं -

१ कौस्तुभ और २ कौस्तुभास।

सूत्र—तन्नामानौ तन्निवासिनौ देवौ ॥२३५॥

अर्थ—उन कौस्तुभ और कौस्तुभास नामक पर्वतों पर रहने वाले देव दो हैं।

१ कौस्तुभ, २ कौस्तुभास।

सूत्र—उदकोदकवासौ कदंबकपातालस्य ॥२३६॥

अर्थ—कदंबक (कलुंवक) पाताल के दोनों तरफ दो पर्वत हैं -

१ उदक, २ उदकवास।

सूत्र—शिवशिवदेवौ तन्निवासिनौ ॥२३७॥

अर्थ—कलुंवक पाताल के दोनों पर्वतों पर रहने वाले शिव और शिवदेव नाम के दो देव हैं।

सूत्र—शंखमहाशंखौ पातालपातालस्य ॥२३८॥

अर्थ—पातालनाम के पाताल के दोनों तरफ शंख और महाशंख ये दो पर्वत हैं।

सूत्र—उदकोदकवासौ तन्निवासिनौ ॥२३६॥

अर्थ—पाताल के दोनों पर्वतों पर रहने वाले उदक व उदकवास नाम के दो देव हैं।

सूत्र—दकदकवासौ यूपकेसरस्य ॥२४०॥

अर्थ—यूपकेसर नामके पाताल के दोनों ओर दक और दकवास नामके दो पर्वत हैं।

सूत्र—लोहितलोहिताभौ तद्वासिनौ देवौ ॥२४१॥

अर्थ—यूपकेसर पाताल के पर्वतों पर बसनेवाले लोहित व लोहिताभ ये दो देव हैं।

सूत्र—अनादरसुस्थितावाद्यद्वीपसमुद्रयोरधीशौ देवौ ॥२४२॥

अर्थ—जम्बूद्वीप व लवणसमुद्र के अधिपति देव दो हैं। १ अनादर २ सुस्थित।

सूत्र—प्रभासप्रियदर्शनौ धातकीखंडस्य ॥२४३॥

अर्थ—धातकीखड द्वीप के अधीश प्रभास और प्रियदर्शन नामके दो देव हैं।

सूत्र—कालमहाकालौ कालोदधेः ॥२४४॥

अर्थ—कालोदधि समुद्र के काल व महाकाल नामके दो देव अधिपति हैं।

सूत्र—पद्मपुण्डरीकौ पुष्करार्द्धमानुषोत्तरयोः ॥२४५॥

अर्थ—पुष्करवरद्वीप का पहिला आधा भाग व मानुषोत्तर पर्वत इनके अधिपति पद्म व पुण्डरीक नामके दो देव हैं।

सूत्र—चक्षुष्मसुचक्षुष्माणौ पुष्करोत्तरार्द्धस्य ॥२४६॥

अर्थ—पुष्करवरद्वीप के अगले आधे भाग के अधिपति चक्षुष्मा व सुचक्षुष्मा नाम के दो देव हैं।

सूत्र—वरुणवरुणप्रभौ वारुणीद्वीपस्य ॥२४७॥

अर्थ—वारुणीद्वीप के अधिपति वरुण व वरुणप्रभ ये दो देव हैं।

सूत्र—मध्यमध्यमदेवौ वारुणीसमुद्रस्य ॥२४८॥

अर्थ—वारुणीसमुद्र के अधीश मध्य और मध्यम नाम के दो देव हैं।

सूत्र—पाण्डुरपुष्पदन्तौ क्षीरद्वीपस्य ॥२४९॥

अर्थ—क्षीरवरद्वीप के अधिपति पाण्डुर व पुष्पदन्त ये दो देव हैं।

सूत्र—विमलविमलप्रभौ क्षीरसमुद्रस्य ॥२५०॥

अर्थ—क्षीरवरसमुद्र के अधिपति दो देव हैं।
१ विमल, २ विमलप्रभ।

सूत्र—सुप्रभमहाप्रभौ घृतवरद्वीपस्य ॥२५१॥

अर्थ—घृतवरद्वीप के अधिपति दो देव हैं।
१ सुप्रभ, २ महाप्रभ।

सूत्र—कनककनकप्रभौ घृतसमुद्रस्य ॥२५२॥

अर्थ—घृतवरसमुद्र के अधीश दो देव हैं।
१ कनक, २ कनकप्रभ।

सूत्र—पुण्यपुण्यप्रभौ चौद्रद्वीपस्य ॥२५३॥

अर्थ—चौद्रवरद्वीप के पुण्य व पुण्यप्रभ ये दो देव अधिपति हैं।

सूत्र—देवगन्धमहागन्धौ चौद्रसमुद्रस्य ॥२५४॥

अर्थ—चौद्रवरसमुद्र के अधिपति दो देव हैं।
१ देवगन्ध, २ महागन्ध।

सूत्र—नन्दिनन्दिप्रभौ नन्दीश्वरद्वीपस्य ॥२५५॥

अर्थ—नन्दीश्वरद्वीप के अधिपति नन्दी व नन्दिप्रभ नाम के दो देव हैं।

सूत्र—भद्रसुभद्रौ नन्दीश्वरसमुद्रस्य ॥२५६॥

अर्थ—नन्दीश्वर समुद्र के अधीश भद्र सुभद्र नाम के दो देव हैं।

सूत्र—अरुणारुणप्रभावरुणद्वीपस्य ॥२५७॥

अर्थ—अरुण व अरुणप्रभ ये दो देव अरुणद्वीप के अधिपति हैं।

सूत्र—ससुगन्धसर्वगन्धावरुणसमुद्रस्य नाथौ देवौ ॥२५८॥

अर्थ—अरुणसमुद्र के अधिपति ससुगन्ध व सर्वगन्ध नाम के दो देव हैं।

सूत्र—आगमनोआगमद्रव्यकर्मणी द्रव्यनिक्षेपरूपकर्मणी।२५६

अर्थ—द्रव्यनिक्षेप की अपेक्षा में कर्म दो प्रकार का है।
१ आगमद्रव्यकर्म और २ नोआगमद्रव्यकर्म।

आगमद्रव्यकर्म—जो जीव द्रव्यकर्म के शास्त्र का जानने वाला हो परन्तु उपयोग अन्यत्र हो उसे आगमद्रव्यकर्म निक्षेप कहते हैं।

नो आगमद्रव्यकर्म—कर्मशास्त्र के ज्ञाता के शरीर को जो कर्मशास्त्र के ज्ञान में उपयुक्त न हो नो आगमद्रव्यकर्म-निक्षेप कहते हैं।

सूत्र—कर्मनोकर्मणी तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्ये ॥२६०॥

अर्थ—तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्य दो प्रकार का है।
१ कर्म, २ नोकर्म।

सूत्र—आगमनोआगमभावरूपे भावनिक्षेपरूपकर्मणी ।२६१।

अर्थ—भावनिक्षेप की अपेक्षा में कर्म दो प्रकार का है।
१ आगमभाव निक्षेपकर्म, २ नोआगमभावनिक्षेपकर्म।

आगमभावनिक्षेपकर्म—जो जीव कर्मशास्त्र का जानने वाला हो और उस ही में उपयोग लगा रहा हो उसे आगम-भावनिक्षेपकर्म कहते हैं।

नोआगमभावनिक्षेपकर्म—कर्मशास्त्र के ज्ञान में वर्तमान उपयुक्त जीव की वर्तमान शरीररूपी पर्याय को नोआगम-भावनिक्षेपकर्म कहते हैं।

सूत्र—निद्राप्रचले चटमानापूर्वकरणप्रथमभागेबन्धेनव्युच्छिन्ने प्रकृती ॥२६२॥

अर्थ—चढ़ते हुए अपूर्वकरण गुणस्थान के पहिले भाग में

बन्ध से व्युच्छिन्न होने वाली प्रकृति दो हैं।

१ निद्रा, २ प्रचला।

सूत्र—वज्रनाराचनाराचसंहनने उपशान्तमोहे उदयेन ॥२६३

अर्थ—उपशान्तमोह गुणस्थान में उदयव्युच्छिन्न प्रकृति दो हैं

१ वज्रनाराच संहनन, २ नाराचसंहनन।

सूत्र—फालिकाण्डकीयौ संक्रमणप्रकारौ ॥२६४॥

अर्थ—संक्रमणके प्रकार दो हैं।

१ फालिसंक्रमण, २ काण्डक संक्रमण।

फालिसंक्रमण—कर्मनिषेकों के जुदे जुदे खण्ड को फालि कहते हैं और फाली फालि रूप से जब संक्रमण होता है वह फालिरूप से संक्रमण कहलाता है।

काण्डकसंक्रमण—बहुत समयों में काण्डक (कर्मनिषेकों के समूह) रूप से संक्रमण होना काण्डक संक्रमण है।

सूत्र—स्वपरमुखोदयौ उदयप्रकृती ॥२६५॥

अर्थ—उदयप्रकृति दो तरह की हैं।

१ स्वमुखोदयी और २ परमुखोदयी।

स्वमुखोदयी—जो कर्मप्रकृति अपने ही रूप उदय हो कर क्षय को प्राप्त हो पर प्रकृतिरूप पलटै नहीं उसे स्वमुखोदयी प्रकृति कहते हैं।

परमुखोदयी—जो कर्म प्रकृति अन्यरूप होकर नष्ट हो उसे

परमुखोदयी प्रकृति कहते हैं ।

सूत्र—पञ्चकचतुष्के दर्शनावरणोदयस्थाने ॥२६६॥

अर्थ—दर्शनावरणकर्म के उदय स्थान दो हैं।

१ पांचप्रकृतिके उदय रूप, २ चार प्रकृति के उदयरुप।

सूत्र—आहारककायाहारकमिश्रकाययोगौ प्रमत्तविरते व्युच्छिन्नावाश्रवौ ॥२६७॥

अर्थ—प्रमत्तविरतनामक छटे गुणस्थान में आहारक काययोग व आहारकमिश्रकाययोग ये दो आश्रव व्युच्छिन्न हो जाते हैं अर्थात् इससे ऊपर के गुणस्थानों में (७-८वें आदि) ये दो आश्रव नहीं होते ।

सूत्र—स्थानपदयोर्भङ्गो ॥२६८॥

अर्थ—भङ्ग दो प्रकार से होते हैं ।

१ स्थानभङ्ग, २ पदभङ्ग।

स्थानभङ्ग—विवक्षित आधारों में जितने जितने प्रकार के स्थान हो सकें उनका विवरण गणना द्वारा करना स्थानभङ्ग है ।

पदभङ्ग—एक संख्यक स्थान में जिनजिन पदों से—संज्ञकों से कई प्रकार हो सकें उनका विवरण गणना द्वारा करना पदभङ्ग है ।

सूत्र—जातिसर्वपदयोः पदभङ्गौ ॥२६९॥

अर्थ—पदभङ्ग दो प्रकार से होता है ।

१ जातिपदभङ्ग, २ सर्वपदभङ्ग।

जातिपदभङ्ग-एक जाति के पदों के भंग को जातिपदभंग कहते हैं

सर्वपदभंग-सभी प्रकार के पदों के भंग को सर्व-पद्भंग कहते हैं।

सूत्र—पिण्डप्रत्येकपदौ सर्वपदौ ॥२७०॥

अर्थ—सर्वपद दो प्रकार का है।

१ पिण्डपद, २ प्रत्येकपद।

पिण्डपद-कितने ही उपभेदों सहित पिण्ड को एक में कहना पिण्डपद है।

प्रत्येकपद-एक एक नाम को एक एक करके कहना प्रत्येकपद है।

सूत्र—त्रसस्थावरौ जीवसमासौ ॥२७१॥

अर्थ—जीव समास के दो भेद हैं १ त्रस और २ स्थावर।

सूत्र—पर्याप्तापर्याप्तौ च ॥२७२॥

अर्थ—पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से भी जीव समास दो प्रकार का है।

पर्याप्त—जिन जीवों की शरीर पर्याप्त आदि पूर्ण हो गई है वे पर्याप्त हैं।

अपर्याप्त—जिन जीवों की पर्याप्ति पूर्ण नहीं हुई वे अपर्याप्त हैं।

सूत्र—संज्वलनक्रोधमाने मोहनीयद्विकबन्धस्थानप्रकृती।२७३
अर्थ—मोहनीयकर्म की जब केवल दो प्रकृति का ही बंध होता है उस बंध स्थान की प्रकृतियां ये दो हैं–
१ संज्वलनक्रोध, २ संज्वलनमान ।
सूत्र—संज्वलनक्रोधमानमायालोभेष्वेको वेदेष्वेकेन सह।निवृत्तिकरणे मोहनीयद्विकोदयस्थान प्रकृतयः ॥२७४॥
अर्थ—अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में मोहनीयकर्म की दो प्रकृति वाले उदय स्थान की प्रकृत्तियां ये दो हैं–
१ संज्वलक्रोधमानमायालोभ इन चार में से एक, और
२ पुरुष स्त्री नपुंसक इन तीन वेदों में से एक ।
सूत्र—पुंस्त्रीवेदयोरेकेन सह च ॥२७५॥
अर्थ—अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में मोहनीयकर्म की दो प्रकृतिवाले उदयस्थान की प्रकृतियां इस प्रकार से भी दो हैं—
१–संज्वलनक्रोधमान माया लोभ में से एक और २–पुरुष स्त्री इन दो वेदों में से एक ।
सूत्र—पुंवेदेन सह च ॥२७६॥
अर्थ—संज्वलनक्रोधमान माया लोभ में एक तथा पुरुष वेद इस प्रकार भी अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में मोहनीय की द्विकोदयस्थान की प्रकृतियां हैं ।
सूत्र—संज्वलनक्रोधमाने मोहनीयद्विप्रकृतिकसत्त्वस्थान-

प्रकृती ॥२७७॥

अर्थ—मोहनीय की दो प्रकृति के सत्त्वस्थान की प्रकृतियां ये २ हैं—

१ संज्वलनक्रोध, २ संज्वलनमान ।

सूत्र—उपचरितानुपचरितावसद्भूतव्यवहारौ ॥२७७॥

अर्थ—असद्भूतव्यवहार के दो भेद हैं—

१ उपचरितासद्भूतव्यवहारनय, और २ अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनय ।

अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनय—संयोगसंबंधवाले असद्भूत पदार्थ का व्यवहार अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनय है जैसे—मेरा शरीर ।

उपचरितासद्भूतव्यवहारनय—अत्यन्त भिन्न पदार्थों में व्यवहार करता उपचरितासद्भूतव्यवहारनय है—जैसे—मेरा मकान नगर आदि ।

सूत्र—सद्भूतव्यवहारौ च ॥२७८॥

अर्थ सद्भूतव्यवहारनय भी दो प्रकार का है ।

१ उपचरित सद्भूतव्यवहार और २ अनुपचरितसद्भूतव्यवहार ।

उपचरितसद्भूतव्यवहार- नैमित्तिक किन्तु उस काल में अभिन्न भावों में भेद कल्पना करना उपचरित सद्भूतव्यवहारनय है । जैसे जीव के मतिज्ञान या जीव के

रागादिक भाव ।

अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय अभिन्न और सहजभाव में भेद कल्पना करना अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय है । जैसे जीव का ज्ञान या केवलज्ञान ।

सूत्र—शुद्धाशुद्धौ वा ॥२८०॥

अर्थ—अथवा शुद्धसद्भूतव्यवहार व अशुद्धसद्भूतव्यवहार के नाम से भी सद्भूतव्यवहारनय दो तरह का है । इनके लक्षण २७९ वें सूत्र में कहे गये हैं ।

सूत्र—ज्ञान्यज्ञानिजनाश्रितेऽप्रतिक्रमणे ॥२८१॥

अर्थ—अप्रतिक्रमण दो प्रकार का है—

१ ज्ञानिजनाश्रित अप्रतिक्रमण,

२ अज्ञानिजनाश्रित अप्रतिक्रमण ।

ज्ञानिजनाश्रित अप्रतिक्रमण—प्रतिक्रमण और अप्रतिक्रमण के विकल्प से रहित शुद्ध तृतीय अवस्था को प्राप्तभाव ज्ञानिजनाश्रित अप्रितक्रमण है ।

अज्ञानिजनाश्रित अप्रतिक्रमण—अज्ञानि मिथ्यादृष्टि के विषयकषाय के परिणामों में पश्चाताप के अभाव को अज्ञानिजनाश्रित अप्रतिक्रमण कहते हैं ।

सूत्र—अप्रत्याख्याने च ॥२८२॥

अर्थ—अप्रत्याख्यान दो प्रकार का है—

१ ज्ञानिजनाश्रित अप्रत्याख्यान और २ अज्ञानिजना

श्रितअप्रत्याख्यान ।

ज्ञानिजनाश्रित अप्रत्याख्यान –प्रत्याख्यान और अप्रत्याख्यान के विकल्पों से रहित शुद्ध तृतीय अवस्था को प्राप्त भाव ज्ञानिजनाश्रित अप्रत्याख्यान है।

अज्ञानिजनाश्रित अप्रत्याख्यान – अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवों के विषयकषाय के परिणामों के त्याग के अभाव को या रुचि होने को अज्ञानिजनाश्रित अप्रत्याख्यान कहते हैं।

सूत्र—संसारशरीरविषयकेऽध्यवसाने ॥२८३॥

अर्थ—अध्यवसान दो प्रकार का है एक संसारविषयक दूसरा शरीरविषयक बन्ध के निमित्तभूत राग द्वेष मोह आदिक भाव संसारविषयक अध्यवसान हैं।

शरीरविषयक अध्यवसान - उपभोग के निमित्तभूत सुख दुःखादिक भाव शरीर विषयक अध्यवसान हैं।

सूत्र—बन्धनोपभोगनिमित्ते च ॥२८४॥

बन्धननिमित्तक तथा उपभोगनिमित्तक के भेद से भी अध्यवसान दो प्रकार का है।

बन्धननिमित्तक अध्यवसान–रागद्वेष आदिक भाव बन्धन निमित्तक अध्यवसान हैं।

उपभोगनिमित्तक अध्यवसान- सुख दुःख आदिक भाव उपभोगनिमित्तक अध्यवसान हैं।

सूत्र—ज्ञानवैराग्यशक्ती सम्यग्यदृष्टिमुख्यशक्ती ॥२८५॥

सम्यग्यदृष्टि की मुख्य शक्ति दो प्रकार की है एक ज्ञानशक्ति दूसरी वैराग्यशक्ति ।

ज्ञानशक्ति—सम्यग्यदृष्टि की यह वह मुख्य शक्ति है जिसके द्वारा यह परपदार्थों से सर्वथा भिन्न अपने शुद्ध बुद्ध चैतन्य स्वरूप को जानता है ।

वैराग्यशक्ति—सम्यग्यदृष्टि की यह भी एक ऐसी विलक्षण शक्ति है जिसके व्यक्त होने से यह रागद्वेषादि पर भावों का परित्याग कर निज भावों में ही मग्न हो जाता है ।

सूत्र—सामान्यविशेषसंग्रहौ संग्रहनयौ ॥२८६॥

संग्रहनय के दो भेद हैं । एक सामान्य संग्रहनय दूसरा विशेष संग्रहनय ।

सामान्यसंग्रहनय—सत्तामात्र को विषय करने वाला नय सामान्यसंग्रहनय है ।

विशेषसंग्रहनय—किसी जाति विशेष को विषय करनेवाला नय विशेषसंग्रहनय है ।

सूत्र—तद्भेदकौ व्यवहारनयौ ॥२८७॥

अर्थ—उक्त दोनों प्रकार के संग्रहनयों का भेद करनेवाले-नय व्यवहारनय हैं अर्थात् सामान्यग्रहभेदक व्यवहारनय तथा विशेषसंग्रहभेदक व्यवहारनय ।

सूत्र—सद्भूतासद्भूतौ च ॥२८८॥

अर्थ—व्यवहारनय सद्भूत व्यवहारनय तथा असद्भूत-व्यवहारनय के भेद से भी दो प्रकार का है।

सद्भूतव्यवहारनय—वस्तु के स्वभाव भाव को प्रतिपादन करने वाला नय सद्भूतव्यवहारनय है।

असद्भूतव्यवहारनय—वस्तु के विभावभाव को विषय करनेवाला नय असद्भूतव्यवहारनय है।

सूत्र—सूक्ष्मस्थूलर्जु सूत्रावृजुसूत्रौ ॥२८६॥

अर्थ—ऋजुसूत्रनय दो प्रकार का है एक सूक्ष्मऋजुसूत्र-नय दूसरा स्थूल ऋजुसूत्रनय।

सूक्ष्मऋजुसूत्रनय—वर्तमान एक समयमात्र पर्याय को जाननेवाला नय सूक्ष्म ऋजु सूत्रनय है।

स्थूलऋजु सूत्रनय— स्थूलरूप से वर्तमान पर्याय को विषय करनेवाला नय स्थूलऋजुसूत्रनय है।

सूत्र—कर्मजस्वाभाविकावुपचरितस्वभावौ ॥२६०॥

अर्थ—उपचरित स्वभाव दो प्रकार का है एक कर्मज उपचरित स्वभाव दूसरा स्वाभाविक उपचरित स्वभाव।

कर्मजउपचरित स्वभाव—कर्मोदय के निमित्त से उत्पन्न हुए जीव में रागद्वेषादिभाव जीव के सूचनार्थ कर्मज उपचरित स्वभाव हैं।

स्वभाविकउपचरित स्वभाव—जीव के स्वभावरूप ज्ञाना-दिकभाव जीव के सूचनार्थ स्वाभाविक उपचरित

स्वभाव हैं।

सूत्र—सविकल्पनिर्विकल्पे प्रमाणे ॥२६१॥

अर्थ—सविकल्प तथा निर्विकल्प के भेद से प्रमाण दो प्रकार का है।

सविकल्प प्रमाण—श्रुतज्ञान को सविकल्पप्रमाण कहते हैं।

निर्विकल्प प्रमाण—मति, अवधि, मनःपर्यय और केवल ज्ञान ये चारों ज्ञान निर्विकल्प प्रमाण हैं।

सूत्र—सविचाराविचारे समाधिमरणे ॥२६२॥

अर्थ—समाधिमरण दो प्रकार का है।

१ एक सविचारसमाधिमरण २ दूसरा अविचारसमाधिमरण।

सविचार समाधिमरण—विचार पूर्वक किये गये समाधि मरण को सविचार समाधि मरण कहते हैं।

अविचार समाधिमरण—किसी आकस्मिक घटना विशेष के कारण उपस्थितमरण के अवसर पर समाधिभाव रखना अविचार समाधिमरण है।

सूत्र—अभिगतानभिगतचारित्रौ चारित्रार्यौ ॥२६३॥

अर्थ—चारित्रार्य दो प्रकार के होते हैं।

१ एक अभिगतचारित्रार्य २ दूसरे अनभिगत चारित्रार्य

अभिगत चारित्रार्य—सम्यक् प्रकार से चारित्र के स्वरूप को अवगतकर जो चारित्र धारण करते हैं उन्हें अभि-

गत चारित्रार्य कहते हैं।

अनभिगत चारित्रार्य—चारित्र के अन्तः स्वरूप को बिना जाने समझे ही जो चारित्र को पालन करते हैं उन्हें अनभिगत चारित्रार्य कहते हैं।

सूत्र—चारणत्वाकाशगामित्वेक्रियर्द्धी ॥२६४॥

अर्थ—क्रियाऋद्धि के दो भेद हैं।

१ ली चारिणत्वक्रिया ऋद्धि २ दूसरी आकाशगामित्वक्रियादृद्धि।

चारणत्वक्रियाऋद्धि—स्थलपर चरणों से चलने के समान ही आकाश में भी चरणों से चलने में कारण भूतऋद्धि को चारणत्वक्रियाऋद्धि कहते हैं।

आकाशगामित्व क्रियाऋद्धि—जिसके प्रभाव से आकाश निर्बाधरूप से नाना प्रकार से गमन किया जासके उसे आकाशगामित्व क्रियाऋद्धि कहते हैं।

सूत्र—अनुकम्पाशुभोपयोगौ पुण्याश्रवस्य द्वारम् ॥२२५॥

अर्थ—अनुकम्पा और शुभोपयोग पुण्यास्रव के द्वार हैं।

अनुकम्पा—दयारूप परिणाम का नाम अनुकम्पा है।

शुभोपयोग—पञ्चपरमेष्ठी के गुणों में अनुराग सहित उपयोग को शुभोपयोग कहते हैं।

सूत्र—निर्दयताऽशुभोपयोगौ पापास्रवस्य द्वारम् ॥२६६॥

अर्थ—निर्दयता और अशुभोपयोग पापास्रव के द्वार हैं।

निर्दयता—क्रूरता रूप परिणाम को निर्दयता कहते हैं
अशुभोपयोग—इन्द्रिविषयों में प्रवृत्ति रूप परिणाम तथा क्रोधादिकषाय रूप परिणति को अशुभोपयोग कहते हैं

सूत्र—ईर्ष्याऽपध्याने अशुभमनोयोगजाती ॥२९७॥

अर्थ—अशुभमनोयोगजाति दो प्रकार की है—

१ पहली ईर्ष्याअशुभमनोयोगजाति दूसरी अपध्यान अशुभमनोयोगजाति।

ईर्ष्याअशुभमनोयोगजाति—दूसरे की वृद्धि आदि के नहीं सहन करने रूप बुरे भावों का मन में उत्पन्न होना अशुभमनोयोगजाति है।

अपध्यान अशुभमनोयोगजाति—दूसरे की सम्पत्ति आदि की वृद्धि को देख कर उसके विनाशक भावों का मन में निरन्तर उद्भूत होते रहना।

सूत्र—प्रकाशाप्रकाशेऽविचारभक्तप्रत्याख्याने ॥२९८॥

अर्थ—अविचार भक्त प्रत्याख्यान दो प्रकार का है—

१ पहला प्रकाश अविचारभक्त प्रत्याख्यान २ दूसरा अप्रकाश अविचारभक्त प्रत्याख्यान।

प्रकाश अविचारभक्त प्रत्याख्यान—अविचार समाधिमरण के अवसर पर प्रकाश रूप से भक्तपान के त्याग को प्रकाश अविचारभक्तप्रत्याख्यान कहते हैं।

अप्रकाश अविचार भक्त प्रत्याख्यान—अविचार समाधि

मरण के अवसर पर अप्रकटरूप से भक्तपान के त्याग को अप्रकाश अविचार भक्त प्रत्याख्यान कहते हैं ।

सूत्र— इच्छानिच्छा प्रवृत्तदर्शनवालमरणे ॥२६६॥

अर्थ—दर्शनवालमरण दो प्रकार का है –

१ पहला इच्छाप्रवृत्तदर्शनवाल मरण २ दूसरा अनिच्छा प्रवृत्त दर्शनवालमरण ।

इच्छा प्रवृत्तदर्शनवालमरण— इच्छा पूर्वक होने वाले मिथ्या दृष्टि के मरण को इच्छाप्रवृत्तदर्शनवालमरण कहते हैं ।

अनिच्छाप्रवृत्तदर्शनवालमरण—मरने की इच्छा के विना ही होने वाले मिथ्यादृष्टि के मरण को अनिच्छा-प्रवृत्तदर्शनवालमरण कहते हैं ।

सूत्र—दुःखसातवशार्तमरणे वेदनावशार्तमरणे ॥३००॥

वेदनवशार्तमरण दो प्रकार का है ।

१ दुःखवशार्तमरण । २ सातवशार्तमरण ।

दुःखवशार्तमरण—दुःख के आधीन होकर आर्तध्यान से मरण करना दुःखवशार्त मरण है ।

सातवशार्तमरण—सुखाभास के आधीन होकर आर्तध्यान से मरण करना सातवशार्तमरण है ।

सूत्र—मुख्यामुख्येमङ्गले ॥३०१॥

अर्थ—मगल से प्रकार का होता है ।

१ ला मुख्यमंगल २ दूसरा अमुख्यमंगल ।

मुख्यमंगल—प्रधान मंगल को मुख्यमंगल कहते हैं।

अमुख्यमंगल—गौण मंगल को अमुख्यमंगल कहते हैं।

सूत्र—निबद्धानिबद्धे च ॥३०२॥

अर्थ—निबद्ध और अनिबद्ध के भेद से भी मङ्गल दो प्रकार के होते हैं।

निबद्धमङ्गल—किसी प्रणेता के द्वारा प्रणीतमङ्गल को निबद्धमङ्गल कहते हैं।

अनिबद्धमङ्गल—परम्परागत अथवा मनसात्मक एवं कायात्मकमङ्गल को अनिबद्धमङ्गल कहते हैं।

सूत्र—प्रत्यक्षपरोक्षे फले ॥३०३॥

अर्थ—फल दो प्रकार का होता है।

१ प्रत्यक्षफल २ परोक्षफल।

प्रत्यक्षफल—प्रगटरूपफल को प्रत्यक्षफल कहते हैं।

परोक्षफल—अप्रगटरूप अथवा भविष्यमें होने वाले फल को परोक्षफल।

सूत्र—साक्षात्पारम्पर्ये च ॥३०४॥

अर्थ—साक्षात् तथा पारम्पर्य के भेद से भी फल के दो भेद होते हैं।

साक्षात्फल—किसी निमित्त या क्रिया के अनन्तर होने वाले फल को साक्षात्फल कहते हैं।

पारम्पर्यफल—निमित्तों और क्रियाओं की परम्परा से होने वाले फल को पारम्पर्यफल कहते हैं ।

सूत्र—अभ्युदयनिःश्रेयसफले परोक्षफले ॥२०५॥

अर्थ—परोक्षफल के दो भेद हैं ।

१ अभ्युदयफल २ निःश्रेयसफल ।

अभ्युदयफल—स्वर्गादिक के सुखों की प्राप्ति को अभ्युदयफल कहते हैं ।

निःश्रेयसफल—मोक्षसुख की प्राप्ति को निःश्रेयसफल कहते हैं ।

सूत्र—ग्रन्थार्थपरिमाणे परिमाणे ॥२०६॥

अर्थ—परिमाण दो प्रकार का है ।

ग्रन्थपरिमाण तथा अर्थ परिमाण ।

ग्रन्थपरिमाण—ग्रन्थ का श्लोक आदिरूप से परिमाण करना ग्रन्थ परिमाण है ।

अर्थपरिमाण—ग्रन्थविषयक अर्थ के परिमाण को अर्थपरिमाण कहते हैं ।

सूत्र—स्वसमयपरसमयौ समयौ ॥२०७॥

अर्थ—समय दो प्रकार का स्वसमय और परसमय ।

स्वसमय—अन्तर्ज्ञानी को स्वमय कहते हैं ।

परसमय—पर पदार्थों में रत आत्मा को परसमय कहते हैं

सूत्र—लब्धिभावनारूपे श्रुतज्ञाने ॥२०८॥

अर्थ—श्रुतज्ञान दो प्रकार का है।

१ लब्धिरूपश्रुतज्ञान २ भावनारूपश्रुतज्ञान।

लब्धिरूपश्रुतज्ञान— श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम विशेष को लब्धिरूपश्रुतज्ञान कहते हैं।

भावनारूपश्रुतज्ञान—उपयोगरूपश्रुतज्ञान को भावनारूपश्रुत-ज्ञान कहते हैं।

सूत्र—प्रमाणनयविकल्परूपे ॥३०६॥

अर्थ—प्रमाणरूपश्रुतज्ञान तथा नयरूपश्रुतज्ञान के भेद से भी श्रुतज्ञान दो भेदवान हैं।

प्रमाणरूपश्रुतज्ञान—समस्तवस्तु को विषय करने वाले ज्ञान को प्रमाणरूपश्रुतज्ञान कहते हैं।

नयरूपश्रुतज्ञान–वस्तु के किन्हीं अंशो को जानने वाले ज्ञान को नयरूपश्रुतज्ञान कहते हैं।

सूत्र—भिन्नाभिन्ने कारके ॥३१०॥

अर्थ—कारक दो प्रकार के हैं।

१ भिन्नकारक, २ अभिन्नकारक।

भिन्नकारक–पृथक द्रव्यों के सम्बन्ध को भिन्नकारक कहते हैं।

अभिन्नकारक–एक ही द्रव्य में सम्बन्ध बताने को अभिन्न कारक कहते हैं।

सूत्र—संस्थाने ॥३११॥

अर्थ—संस्थान भी भिन्नसंस्थान व अभिन्नसंस्थान के भेद से दो प्रकार का है।

भिन्नसंस्थान–अनेक द्रव्यों के सम्बन्ध से होने वाले संस्थान को भिन्नसंस्थान कहते हैं।

अभिन्नसंस्थान–एक द्रव्य के सहज संस्थान को अभिन्न-संस्थान कहते हैं।

सूत्र—संख्ये ॥३१२॥

अर्थ—संख्या भी दो प्रकार की है।

१ भिन्नसंख्या २ अभिन्नसंख्या।

भिन्नसंख्या–भिन्न पदार्थों की संख्या को भिन्नसंख्या कहते हैं।

अभिन्नसंख्या–एक ही द्रव्य में गुण धर्मों की संख्या को अभिन्नसंख्या कहते हैं।

सूत्र—विषयौ ॥३१३॥

अर्थ—विषय भी दो प्रकार का है।

१ भिन्नविषय, २ अभिन्नविषय।

भिन्नविषय–ज्ञाता से भिन्न पदार्थरूप विषय को भिन्न-विषय कहते हैं।

अभिन्नविषय—वही ज्ञाता और वही ज्ञेय इस प्रकार अभिन्न ही विषय को अभिन्नविषय कहते हैं।

सूत्र—प्रारब्धनिष्पन्नयोगिनौ ध्यातारौ ॥३१४॥

अर्थ—ध्याता दो प्रकार के हैं।

१ प्रारब्धयोगी, २ निष्पन्नयोगी।

प्रारब्धयोगी–जिन अन्तर्ज्ञानियों ने समाधियोग प्रारम्भ किया है वे प्रारब्धयोगी कहलाते हैं।

निष्पन्नयोगी–जिन अन्तर्ज्ञानियों ने समाधियोग को निष्पन्न कर लिया है अर्थात् योग के पूर्ण अभ्यस्त हैं वे निष्पन्नयोगी कहलाते हैं।

सूत्र—अन्तर्द्वीपकर्मभूमिजौ म्लेच्छौ ॥२१५॥

अर्थ—म्लेच्छ दो प्रकार के हैं।

१ अन्तर्द्वीपज, २ कर्मभूमिज।

अन्तर्द्वीपम्लेच्छ–लवणसमुद्र कालोदसमुद्र में होनेवाले अन्तर्द्वीपों में रहनेवाले म्लेच्छ मनुष्यों को अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ कहते हैं।

कर्मभूमिजम्लेच्छ–पांच भरत पांच ऐरावत पांच महाविदेहों की कर्मभूमि में होने वाले म्लेच्छ मनुष्यों को कर्मभूमिज म्लेच्छ कहते हैं।

सूत्र—श्रुतत्यर्थगम्यावर्थौ ॥२१६॥

अर्थ—अर्थ दो प्रकार का है।

१ श्रुतिगम्य, २ अर्थगम्य।

श्रुतिगम्य अर्थ–शब्दों के वाच्यरूप अर्थ को श्रुतिगम्य अर्थ कहते हैं।

अर्थगम्य अर्थ–श्रुतिगम्य अर्थ से जाने हुए अर्थ को अर्थगम्य अर्थ कहते हैं।

सूत्र—आदिमदनादिमद्बंधौ वैस्रसिकबंधौ ॥३१७॥

अर्थ—वैस्रसिकबंध दो प्रकार का है।

१ आदिमानबंध, २ अनादिमानबंध।

आदिमान्बंध– बिजली इन्द्रधनुष आदि की तरह जो स्कन्धों का बंध हो जाता है उसे आदिमानबन्ध कहते हैं। अनादिमानबन्ध—द्रव्यों में प्रदेश आदि की तरह अनादि संबन्ध को अनादिमान् बन्ध कहते हैं। जीवों में कर्म आदि प्रवाह का व महास्कन्ध का भी बन्ध सामान्यपेक्षया अनादि माना गया है।

सूत्र—अजीवजीवाजीवविषयौ प्रायोगिकबन्धौ ॥३१८॥

अर्थ—प्रायोगिकबन्ध दो तरह का है।

१ अजीवविषयक, २ जीवाजीवविषयक।

अजीवविषयक प्रायोगिकबन्ध—किसी के प्रयोग से जो पुद्गलस्कन्धों में सम्बन्ध होता है वह अजीवविषयक प्रायोगिकबन्ध है।

जीवाजीवविषयक प्रायोगिकबन्ध— आत्मा के योगोपयोगरूप प्रयत्न के प्रयोग से जो जीव के साथ कर्म आदि का सम्बन्ध होता है वह जीवाजीवविषयक प्रायोगिक बन्ध है।

सूत्र—कर्मनोकर्मबन्धौ जीवाजीवबन्धौ ॥३१९॥
अर्थ—जीवाजीवविषयक बन्ध दो प्रकार का है।
१ कर्मबन्ध, २ नोकर्मबन्ध।
कर्मबन्ध—जीव के प्रदेशों में कर्मवर्गणावों के सम्बन्ध को कर्मबन्ध कहते हैं।
नोकर्मबन्ध—जीव के प्रदेशों का और शरीरवर्गणावों का सम्बन्ध हो जाने को जीवाजीवविषयक नोकर्मबन्ध है।
सूत्र—इत्थंलक्षणानित्थंलक्षणे संस्थाने ॥३२०॥
अर्थ—संस्थान दो प्रकार का है।
१ इत्थंलक्षणरूप, २ अनित्थंलक्षणरूप।
इत्थंलक्षणसंस्थान—जिस आकार को तिकौन चौकोर लम्बा चौड़ा आदि रूप से बताया जा सके वह इत्थंभूतलक्षण संस्थान है।
अनित्थंलक्षणसंस्थान—जिस आकार का वर्णन ही न हो सके कि यह इस आकार का है वह अनित्थंलक्षणसंस्थान है जैसे मेघ आदि।
सूत्र—तद्वर्णादिपरिणतप्रतिबिम्बमात्रे छाये ॥३२१॥
अर्थ—छाया दो प्रकार की है।
१ तद्वर्णादिपरिणत, २ प्रतिबिम्बमात्र।
तद्वर्णादिपरिणतछाया—दर्पणआदि में हरा पीला आदि जैसा पदार्थ का रूप हो उस रूप सहित छाया होने को

तद्वर्णादिपरिणत छाया कहते हैं ।

प्रतिविम्बमात्रछाया—धूप प्रकाशादि में होनेवाली पदार्थ-कार छाया को प्रतिविम्बमात्रछाया कहते हैं ।

सूत्र—वाह्याभ्यन्तरेहेतू ॥३२२॥

अर्थ—हेतु के दो भेद हैं ।

वाह्यहेतु और आभ्यन्तरहेतु ।

वाह्यहेतु—कार्योत्पत्ति में निमित्तभूत हेतु को वाह्यहेतु कहते हैं ।

आभ्यन्तरहेतु—स्वयंकार्यरूप परिणमन करने वाले हेतु को आभ्यन्तरहेतु कहते हैं ।

सूत्र—आत्मभूतानात्मभूतावाभ्यन्तरहेतु ॥३२३॥

अर्थ—आभ्यन्तरहेतु आत्मभूत तथा अनात्मभूत के भेद से दो प्रकार का है ।

आत्मभूतआभ्यन्तरहेतु—पदार्थ के स्वभावरूपभाव अपने कार्य के प्रति आभ्यन्तरआत्मभूतहेतु हैं ।

अनात्मभूतआभ्यन्तरहेतु—पदार्थ के विभाव आदि विशेषभाव अपने कार्य के प्रति अनात्मभूत आभ्यन्तर हेतु हैं ।

सूत्र—वाह्यहेतु च ॥३२४॥

अर्थ—वाह्यहेतु भी आत्मभूत तथा अनात्मभूत के भेद से दो प्रकार है ।

आत्मभूतबाह्यहेतु—पदार्थगतपूर्वपर्याय उत्तरपर्याय के प्रति आत्मभूतबाह्यहेतु हैं ।

अनात्मभूतबाह्यहेतु—कार्योत्पत्ति में निमित्तभूत भिन्नपदार्थ अनात्मभूतबाह्यहेतु हैं ।

सूत्र—संख्योपमे प्रमाणे ॥३२५॥

अर्थ—संख्याप्रमाण तथा उपमाप्रमाण के भेद से प्रमाण दो प्रकार का है ।

संख्याप्रमाण—एक दो आदि संख्याओं से वस्तु का परिमाण करना संख्याप्रमाण है ।

उपमाप्रमाण—किसी वस्तु की सदृशता से पदार्थ परिमाण बताना उपमा प्रमाण है ।

सूत्र—अवगाहक्षेत्रविभागनिष्पन्नक्षेत्रे क्षेत्रप्रमाणे ॥३२६॥

अर्थ—क्षेत्र प्रमाण दो प्रकार का है-

अवगाहक्षेत्रप्रमाण तथा विभागनिष्पन्नक्षेत्रप्रमाण ।

अवगाहक्षेत्रप्रमाण—पदार्थ के द्वारा अवगाहे गये आकाश के प्रमाण को अवगाहक्षेत्रप्रमाण कहते हैं ।

विभागनिष्पन्नक्षेत्रप्रमाण—विभाग से उत्पन्न हुये क्षेत्र के परिमाण को विभागक्षेत्रप्रमाण कहते हैं ।

सूत्र—आदिमदनादिमन्तौ परिमाणौ ॥३२७॥

अर्थ—परिणाम दो प्रकार का है-

आदिमान् तथा अनादिमान् ।

आदिमान्परिणाम—किसी निश्चित समय से होने वाले परिणमन को आदिमान्परिणाम कहते हैं।

अनादिमानपरिणाम—अनादिकाल से होते परिणमन को अनादिमान्परिणाम कहते हैं।

सूत्र—परिस्यन्दापरिस्यन्दात्मकौ भावौ ॥३२८॥

अर्थ—भाव दो प्रकार का है-

परिस्पन्दात्मक तथा अपरिस्पन्दात्मक।

परिस्पन्दात्मक—क्रियात्मकभाव को परिस्पन्दात्मकभाव कहते हैं।

अपरिस्पन्दात्मक—अक्रियात्मक (स्थानान्तरगति रहित) भाव को अपरिस्पन्दात्मक भाव कहते हैं।

सूत्र—भेदाभेदात्मकेरत्नत्रये ॥३२६॥

अर्थ—रत्नत्रय दो प्रकार का है भेदात्मक रत्नत्रय तथा अभेदात्मकरत्नत्रय।

भेदात्मकरत्नत्रय—अखण्ड आत्मा के गुणों का भेद करते हुए सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का कथन करना भेदात्मक रत्नत्रय है।

अभेदात्मक रत्नत्रय—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र का एकत्व रूप से अनुभव करना अभेदात्मकरत्नत्रय है।

सूत्र—स्पर्शनरसनविषयौ कामौ ॥३३०॥

अर्थ—काम दो प्रकार का है स्पर्शन विषयक काम तथा

रसनविषयकाम ।

स्पर्शनविषयककाम—स्पर्शन इन्द्रिय के द्वारा विषयानुभव करने को स्पर्शनविषयक काम कहते हैं ।

रसनविषयककाम—रसना इन्द्रिय द्वारा विषयानुभव करने को रसनविषयककाम कहते हैं ।

सूत्र—भूतार्थाभूतार्थौ व्यवहारौ ॥३३१॥

अर्थ—व्यवहार दो प्रकार का है भूतार्थ व्यवहार तथा अभूतार्थ व्यवहार ।

भूतार्थव्यवहार—पर द्रव्य के निमित्त से होने वाले परिणमन के व्यवहार को भूतार्थव्यवहार कहते हैं ।

अभूतार्थव्यवहार—पर द्रव्य में पर द्रव्य के उपचार से किये जाने वाले व्यवहार को अभूतार्थ व्यवहार कहते हैं ।

सूत्र—आधिव्याधी दुःखे ॥३३२॥

अर्थ—दुःख दो प्रकार का है—आधि दुःख तथा व्याधि दुःख ।

आधि दुःख—मानसिक दुःख को आधि कहते हैं ।

व्याधि—शारीरिक दुःख को व्याधि कहते हैं ।

सूत्र— परमात्मोपासनात्मोपासतेपरमात्मभवनादर्थोपासते ॥३३३॥

अर्थ—परमात्मभवनार्थोपासना दो प्रकार की है । परमात्मो-

पासना तथा आत्मोपासना ।

परमात्मोपासना—वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा की उपासना को परमात्मोपासना कहते हैं ।

आत्मोपासना—राग द्वेष रहित ज्ञाता दृष्टा के रूप में निजात्मा की उपासना को आत्मोपासना कहते हैं ।

सूत्र—अविद्याज्ञानसंस्कारौ संस्कारौ ॥ ३३४ ॥

अर्थ—संस्कार दो प्रकार का है अविद्यासंस्कार तथा ज्ञानसंस्कार ।

अविद्यासंस्कार—मिथ्याबुद्धिमय संस्कार को अविद्या संस्कार कहते हैं ।

ज्ञान संस्कार—सम्यग्ज्ञान सहित संस्कार को ज्ञान संस्कार कहते हैं ।

सूत्र—स्निग्धरूक्षत्वे परमाणुबन्धहेतू ॥ ३३५ ॥

अर्थ—परमाणुओं के बन्ध के कारण दो प्रकार के हैं स्निग्ध तथा रूक्ष ।

स्निग्ध—परमाणुगत चिक्कणता को स्निग्धत्व कहते हैं ।

रूक्षत्व—परमाणुगत रूखेपन को रूक्षत्व कहते हैं ।

सूत्र—संघातभेदसंघातौ चाक्षुष स्कन्ध हेतू ॥ ३३६ ॥

अर्थ—संघात और भेद संघात ये दो चाक्षुष स्कन्ध के हेतू हैं ।

सङ्घात—अनेक पुद्गल परमाणुओं के सम्बद्ध होने को

सङ्घात कहते हैं ।

भेदसङ्घात—स्कन्ध में से कुछ वर्गणाओं के पृथक् होने एवं कुछ वर्गणाओं के सम्बन्ध होने को भेद सङ्घात कहते हैं ।

सूत्र—विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यामृजुविपुलमतिविशेषकौ ॥ २३७ ॥

अर्थ—ऋजुमति और विपुलमति में भेद बताने वाले विशुद्धि और अप्रतिपात हैं ।

विशुद्धि—परिणामों की निर्मलता को कहते हैं ।

अप्रतिपात—केवल ज्ञान होने से पहले न छूटने को अप्रतिपात कहते हैं ।

सूत्र—देशपरिक्षेपिसर्वपरिक्षेपिणौ नैगमनयौ ॥२३८॥

अर्थ—नैगमनय दो प्रकार का है देशपरिक्षेपी तथा सर्व-परिक्षेपी ।

देशपरिक्षेपी—

सर्वपरिक्षेपी—

सूत्र—दक्षिणोत्तरायणे अयने ॥२३९॥

अर्थ—अयन दो प्रकार का है दक्षिणायन तथा उत्तरायण

दक्षिणायन—मेरू के समीपवर्ती मार्ग से बाह्य मार्ग पर जब सूर्य गमन करे तब उसे दक्षिणायन कहते हैं ।

उत्तरायण—मेरु से बाह्य मार्ग से समीपवर्ती मार्ग पर जब सूर्य गमन करे तब उसे उत्तरायण कहते हैं ।

सूत्र—सूर्यचन्द्रस्वरौ स्वरौ ॥३४०॥

अर्थ—स्वर दो प्रकार के हैं सूर्यस्वर एवं चन्द्रस्वर ।

सूर्य—नासिका के दक्षिण छिद्र से श्वासोच्छ्वास की गति को सूर्यस्वर कहते हैं ।

चन्द्रस्वर—नासिका के वामछिद्र से होने वाली श्वासोच्छ्वास की गति को चन्द्रस्वर कहते हैं ।

सूत्र—सहभावक्रमभावनियमावविनाभावौ ॥३४१॥

अर्थ—अविनाभाव दो प्रकार का है—

सहभावनियम तथा क्रमभावनियम ।

सहभावनियम—साथ २ होने वाले साध्य साधन के नियम बताने को सहभाव नियम नामक अविभाव कहते हैं ।

क्रमभावनियम—क्रम से नियमपूर्वक होने वाले साध्य साधन के नियम बताने को क्रमभाव नियम नामक अविनाभाव कहते हैं ।

सूत्र—सहचारिणोर्व्याप्यव्यापकयोःसहभावः ॥३४२॥

अर्थ—सहभावनियम दो प्रकार का है—

१ सहचारी का सहभाव २ व्याप्यव्यापक का सहभाव ।

सहचारी सहभाव—रूप रस आदि की तरह एक साथ रहने वाले भावों के साथ को सहचारी सहभाव कहते हैं ।

व्याप्यव्यापकसहभाव—आम्रवृक्ष की तरह व्याप्यव्यापक अर्थों के साथ होने को व्याप्यव्यापक सहभाव कहते हैं ।

सूत्र—सामान्यविशेषौ सापेक्षौ प्रमाणविषयौ ॥॥३४३॥

अर्थ—सापेक्ष सामान्य एवं विशेष प्रमाण के विषय है।

सापेक्ष सामान्य प्रमाण विषय—(विशेष की अपेक्षा रखता हुआ सामान्य)

सापेक्ष विशेष प्रमाणविषय—(सामान्य की अपेक्षा रखता हुआ विशेष)

सूत्र—तिर्यगूर्ध्वतासामान्यौ सामान्यौ ॥३४४॥

अर्थ—सामान्य २ प्रकार का है १–तिर्यक्सामान्य, २–ऊर्ध्वतासामान्य।

तिर्यक्सामान्य—वर्तमान काल में सदृश अनेक पदार्थों को एक जाति से ग्रहण करना तिर्यक्सामान्य है।

ऊर्ध्वतासामान्य—एक पदार्थ की त्रिकालवर्ती पर्यायों के एक पदार्थ से ग्रहण करना ऊर्ध्वतासामान्य है।

सूत्र—विशेषौ च ॥३४५॥

अर्थ—विशेष भी २ प्रकार का है–१–तिर्यग्विशेष, २–ऊर्ध्वताविशेष।

तिर्यग्विशेष—वर्तमान काल में एक जाति के पदार्थों को व्यक्तिगत भेद रूप से ग्रहण करना तिर्यग्विशेष है।

ऊर्ध्वताविशेष—एक पदार्थ की अनेक पर्यायों को भिन्न भिन्न रूप से ग्रहण करना ऊर्ध्वताविशेष है।

सूत्र—अघातियातिनी कर्मणी ॥३४६॥

अर्थ—कर्म दो प्रकार के हैं १– अघातीकर्म, २–घाती-कर्म।

अघातीकर्म—जो आत्मा के प्रतिजीवीगुणों को घाते उसे अघातीकर्म कहते हैं।

घातीकर्म—जो आत्मा के अनुजीवीगुणों को घाते उसे घातीकर्म कहते हैं।

सूत्र - पुण्यपापरूपे च ॥३४७॥

अर्थ--वे कर्म भी पुण्य रूप और पापरूप होने से दो प्रकार के होते हैं।

पुण्यकर्म—जो आत्मा को सुख दे उसे पुण्य कहते हैं।

पापकर्म—जो आत्मा को दुःख दे उसे पाप कर्म कहते हैं।

सूत्र—हास्यरतीहास्यद्विकम् ॥३४८॥

अर्थ–हास्य और रति ये दो हास्यद्विकम् ग्रहण किये जाते हैं।

हास्य–जिसके उदय से हंसी आवे उसे हास्यकर्म कहते हैं।

रतिकर्म–जिसके उदय से राग रूप परिणाम हो उसे रतिकर्म कहते हैं।

सूत्र—शोकारत्यरतिद्विकम् ॥३४७॥

अर्थ–शोक और अरति ये दो अरतिद्विकसे ग्रहण किये

जाते हैं ।

शोक–इष्ट-प्रिय पदार्थ के वियोग से दुःखरूपपरिणामों का होना ।

अरतिकर्म—जिसके उदय से द्वेष रूप परिणाम हों । उसे अरतिकर्म कहते हैं ।

सूत्र– भयजुगुप्से भयद्विकम्॥२५०॥

अर्थ—भय और जुगुप्सा ये दो भयद्विक से ग्रहण किये जाते हैं ।

भय—जिसके उदय से भय (डर) लगे उसे भय कहते हैं ।

जुगुप्सा—जिसके उदय से ग्लानि (घृणा) लगे उसे जुगुप्सा कहते हैं ।

सूत्र—उपलब्ध्यनुपलब्धी हेतू ॥२५१॥

अर्थ—उपलब्धि और अनुपलब्धि के भेद से हेतू दो प्रकार का है ।

उपलब्धि—विधिरूप हेतु को उपलब्धि कहते हैं ।

अनुपलब्धि—निषेधरूप हेतु को अनुपलब्धि कहते हैं ।

सूत्र—विरुद्धाविरुद्धानुपलब्ध्यनुपलब्धी हेतू ॥२५२॥

अर्थ—अनुपलब्धि हेतु दो प्रकार का है–१–विरुद्धानुपलब्धि २—अविरुद्धानुपलब्धि ।

विरुद्धानुपलब्धि—साध्य से विरुद्ध कार्यादिकी अनुपलब्धि

रूप हेतू को विरुद्धानुपलब्धि कहते हैं।

अविरुद्धानुपलब्धि – प्रतिषेध्य साध्य से अविरुद्ध की अनुपलब्धि रूप हेतू को अविरूद्धानुपलब्धि कपते हैं।

सूत्र—विरुद्धाविरुद्धोपलब्ध्युपलब्धी हेतू ॥३५३॥

अर्थ—उपलब्धिहेतु दो प्रकार का है। १—विरुद्धोपलब्धि २—अविरुद्धोपलब्धि।

विरुद्धोपलब्धि—प्रतिषेध्य से विरुद्ध के सम्बन्धिओं की उपलब्धि रूप हेतु को विरुद्धोपलब्धि कहते हैं।

अविरुद्धोपलब्धि—साध्य से अविरुद्ध की उपलब्धि को अविरुद्धोपलब्धि कहते हैं।

सूत्र—प्रशस्ताप्रशस्तावुपशमौ ॥३५४॥

अर्थ—उपशम दो प्रकार का है। १—प्रशस्तउपशम २—अप्रशस्त उपशम।

प्रशस्तउपशम—विसंयोजन सहित उपशम को प्रशस्त उपशम कहते हैं।

अप्रशस्तउपशम—विसंयोजन रहित उपशम को अप्रशस्त उपशम कहते हैं।

सूत्र—अर्हं इतिद्वक्षरमंत्रः ॥३५५॥

अर्थ—अर्हं यह दो अक्षर वाला मंत्र है।

सूत्र—सिद्ध ॥३५६॥

अर्थ—सिद्ध यह भी दो अक्षर का मंत्र है।

सूत्र—साधु ॥२५७॥

अर्थ—साधु यह भी दो अक्षर का मंत्र है।

सूत्र ॐ ह्रीं ॥२५८॥

अर्थ—ॐ ह्रीं यह भी दो अक्षर का मन्त्र है।

सूत्र—रूप्यरूपिण्यजीवद्रव्ये ॥२५९॥

अर्थ—अजीव द्रव्य दो प्रकार के हैं। १ रूपी अजीवद्रव्य २ अरूपी अजीव द्रव्य।

रूपी अजीव द्रव्य—रूपी अजीव द्रव्य जिसमें स्पर्श रस गन्ध और वर्णपाये जायें उसे रूपी अजीवद्रव्य कहते हैं।

अरूपी अजीवद्रव्य—चैतन्य गुण से शून्य तथा स्पर्शादि पौद्गलिक गुण रहित द्रव्य को अरूपी अजीवद्रव्य कहते हैं।

सूत्र—ओघादेशाभ्यां निर्देशौ ॥२६०॥

अर्थ—ओघ और आदेश से निर्देश दो प्रकार का है।

ओघ निर्देश—सामान्य या गुण स्थान के निर्देश को ओघ निर्देश कहते हैं।

आदेश निर्देश—पर्याय या मार्गणा के निर्देश को आदेश निर्देश कहते हैं।

सूत्र—ओजयुग्मराशि राशि ॥२६१॥

अर्थ—राशि दो प्रकार की है १-ओज राशि २-युग्मराशि

ओजराशि—जिसमें चार का भाग देने पर ऊने शेष रहे

वह ओजराशि है ।

युग्मराशि—जिसमें चार का भाग देने पर पूरे शेष रहें वह युग्मराशि है ।

सूत्र—कृतयुग्मवादरयुग्मराशी युग्मराशी ॥३६२॥

अर्थ—युग्मराशि दो प्रकार की है

१-कृतयुग्मराशि २-वादरयुग्मराशि ।

कृतयुग्मराशि—जिस राशि को चार से भाजित करने पर चार शेष रहते हैं अर्थात् जिसमें चार का पूरा भाग जाता है उसे कृतयुग्मराशि कहते हैं ।

वादरयुग्मराशि—चार से भाजित करने पर जिस राशि में शेष दो निकलें उसे वादर युग्मराशि कहते हैं ।

सूत्र—तेजोजकलि ओजराश्योजराशी ॥३६३॥

अर्थ—ओजराशि दो प्रकार की हैं-

१ तेजोजराशि २ कलिओजराशि ।

तेजोजराशि—जिस राशि को चार से भाजित करने पर तीन शेष रहते हैं उसे तेजोजराशि कहते हैं ।

कलिओजराशि—जिस राशि को चार से भाजित करने पर एक शेष रहता है उसे कलिओजराशि कहते हैं ।

सूत्र—आहारकमारणान्तिकसमुद्घातावेक

दिक्समुद्घातौ ॥३६४॥

अर्थ—एक दिशामें होने वाला समुद्घात दो प्रकार का हैं ।

१ आहारक समुद्घात २ मारणान्तिक समुद्घात ।

आहार समुद्धात—छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनियों के शंका निवारणार्थ उनके उत्तमांग से एक हाथ प्रमाण श्वेतवर्ण का जो एक पुतला निकलता है जो केवली या श्रुतकेवली के दर्शन कर वापस आता है उस आहारक शरीर के परिस्पन्द को आहारक समुद्घात कहते हैं ।

मारणान्तिक समुद्घात—मरण के समय में होने वाले समुद्घात को मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं ।

सूत्र – अधस्तनोपरिमौ विकल्पौ ॥३६५॥

अर्थ—विकल्प दो प्रकार का है ।

१ अधस्तन विकल्प २ उपरिम विकल्प ।

अधस्तन विकल्प—ऊंची गणना में किसी अपेक्षा के नीचे विकल्पों को अधस्तनविकल्प कहते हैं ।

उपरिम विकल्प—ऊंची गणना में किसी अपेक्षा के ऊपर के विकल्पों को उपरिम विकल्प कहते हैं ।

सूत्र—स्वस्थानपरस्थानीये संक्रमणे ॥३६६॥

अर्थ – संक्रमण दो प्रकार का होता है । १—स्वस्थान-संक्रमण—२—परस्थान संक्रमण ।

स्वस्थानसंक्रमण—सजातीय प्रकृतियों के एक दूसरे रूप हो जाने को स्वस्थानसक्रमण कहते हैं ।

परस्थानसंक्रमण—विजातीय प्रकृतियों के एक दूसरे रूप

हो जाने को परस्थानसंक्रमण कहते हैं।

सूत्र—सन्निकर्षयोग्यतायाः खण्ड्यविकल्पौ शक्तिः प्रतिपत्तृप्रतिबन्धापायो वा ॥३६७॥

अर्थ—इन्द्रियार्थ के सन्निकर्ष में प्रतिनियमव्यवस्था देने के लिये योग्यता मानने पर दो विकल्प उपस्थित होते हैं।

१ वह योग्यता क्या शक्तिरूप है, २ या ज्ञाता के प्रतिबंध के विनाशस्वरूप है।

१ पहिला पक्ष "वह अतीन्द्रिय है या सहकारी सान्निध्य रूप है" आदि निर्बल विकल्पोपविकल्प होने से खण्डित है।

२ द्वितीयपक्ष—ठीक है—और तब यही अर्थात् प्रतिबंध का अपाय (ज्ञानावरण का क्षयोपशम आदि) प्रमाण का कारण मानना चाहिये।

सूत्र—सन्निकर्षशक्तेरतीन्द्रिया सहकारिसान्निध्यलक्षणा वा ॥३६८॥

अर्थ—सन्निकर्ष की योग्यता को शक्तिरूप मानने दो खण्डन के योग्य विकल्प होते हैं—

१ वह शक्ति अतीन्द्रिय है २ या सहकारी कारणों की उपस्थितिमात्र है।

१ अतीन्द्रियशक्ति तो सन्निकर्षवादियों ने मानी नहीं है।

२ द्वितीयपक्ष अनेक विकल्पोपयिक कल्पों से खंडित है।

सूत्र—सन्निकर्षसहकारिद्रव्यस्य व्यप्यव्यापि वा ॥३६९॥

अर्थ—सन्निकर्ष की योग्यता सहकारिद्रव्य की सन्निधिरूप है इस पक्ष के मानने पर ये दो खण्ड्य विकल्प होते है–

१ वह द्रव्य व्यापी है, २ या अव्यापी है ?

१ व्यापी द्रव्य को सहकारी मानने पर व्यापी तो आकाशादिक भी हैं वे भी सन्निकर्ष के लिये अपेक्षित हो जावेंगे।

२ अव्यापी मानने पर वह क्या मन है, नेत्र है, आलोक है आदि निर्बल विकल्पोपविकल्प उपस्थित होने से वह खण्डित हो जाता है।

सूत्र—सन्निकर्षसहकारिकर्मणोऽर्थान्तरगतमिन्द्रियगतं वा ॥३७०॥

अर्थ—सन्निकर्ष की योग्यता सहकारी कर्म की सन्निधिरूप है इस पक्ष के मानने पर दो खण्ड्य विकल्प उपस्थित होते हैं–

१ क्या अर्थान्तर में पाया जाने वाला कर्म सन्निकर्ष का सहकारी है, २ या इन्द्रिय में पाया जाने वाला कर्म सन्निकर्ष का सहकारी है ?

१ अर्थान्तरगत कर्म सन्निकर्ष प्रभाव का सहकारी नहीं

हो सकता क्योंकि ज्ञान की उत्पत्ति में वह कारण नहीं हो सकता।

२ इन्द्रियगत कर्म (जैसे नेत्र का उन्मेष निमेष आदि) तो हो ही रहा है फिर सन्निकर्ष की ज्ञान के लिये प्रतिनियत व्यवस्था क्यों नही।

सूत्र—योगजधर्मानुग्रहस्य स्वविषयप्रवर्तमानातिशयाधानं सहकारित्वमात्रं वा ॥२७१॥

अर्थ—इस सूत्र में सन्निकर्ष को प्रमाण मानने वाले नैयायिकों के द्वारा रक्खी गई युक्ति को दो विकल्पों द्वारा खण्डित किया गया है। नैयायिकों ने इन्द्रियों का पदार्थों के साथ संबंध सिद्ध करने के लिये कहा कि योग से उत्पन्न होने वाला जो धर्म विशेष—अदृष्ट—उसके अनुग्रह से उसका (इन्द्रिय का) पदार्थों के साथ साक्षात सम्बन्ध होता है। इसके खण्डन के लिये दो विकल्प हैं—

१ यह योगजधर्मानुग्रह अपने विषय में प्रवर्तमान इन्द्रिय में अतिशय पैदा करता है या २ सहकारी (पना) मात्र है।

१ पहिला विकल्प ठीक नहीं है, कारण कि परमाणु आदिक सूक्ष्म विषयों में इन्द्रिय की प्रवृत्ति ही नही होती इन्द्रियों की, फिर अतिशयाधान कैसा? यदि

आप लोग (नैयायिक) कहें कि इन्द्रियों की प्रवृत्ति परमाणु आदिक में होती है तो अनुग्रह व्यर्थ हो जायगा, कारण इन्द्रिया हीं सब काम कर लेंगी ।

दूसरा पक्ष भी असम्भाव्य है। वह भी नहीं बन सकता योगजधर्म से सहकारित हुई भी इन्द्रियां अपने विषय का उल्लंघन कर प्रवृत्ति नहीं कर सकती हैं। यह नहीं हो सकता है कि सहकारी कारणों से युक्त होती हुई नेत्रेन्द्रिय रस का या शब्द का ज्ञान करने लग जाय। वह प्रवृत्ति करेगी तो रूप में ही अन्य विषय में नहीं।

यदि आप लोग कहें कि विषयान्तर में भी इन्द्रियां "सहकारित्व" रूप अनुग्रह के वश से प्रवृत्ति करती हैं तो एक ही इन्द्रिय से सब काम हो जायगा, अन्य इन्द्रियों की कल्पना करना व्यर्थ होगी। इस प्रकार प्रयोजन यह है कि सन्निकर्ष प्रमाण सोमपत्तिक नहीं है।

सूत्र—इन्द्रियवृत्तिरूपस्य प्रमाणत्वे इन्द्रिभ्योवृत्तिर्भिन्नाऽभिन्ना वा ॥३७२॥

अर्थ—जैसे नैयायिकों के द्वारा माना गया सन्निकर्ष प्रमाण युक्ति तुला पर ठीक नहीं उतरता और खण्डित हो जाता है उसी प्रकार इन्द्रिय वृत्ति रूपता में प्रमाणता

नहीं आती है। सांख्यों के द्वारा मान्य इन्द्रियवृत्ति को प्रमाणता मानने पर उसके विषय में दो खण्ड्य विकल्प हैं।

(१) प्रथम विकल्प—इन्द्रियों से वृत्ति भिन्न है या।

(२) द्वितीय विकल्प—इन्द्रियों से वृत्ति अभिन्न है।

प्रथम विकल्प का खंडन—यदि इन्द्रिय वृत्ति इन्द्रियों से भिन्न है तो वह उनका धर्म है अथवा अर्थान्तर है। यदि वृत्ति धर्म रूप है तो उसका श्रोत्रादिक इन्द्रियों से कौनसा सम्बन्ध है। वह सम्बन्ध या तो तादात्म्य होगा या समवाय रूप होगा। यदि तादात्म्य सम्बन्ध है तो दूसरे शब्दों में उसका अर्थ श्रोत्रादि इन्द्रिय ही हुआ और वैसी अवस्था में सन्निकर्ष में जो अनुपपत्तियां घटित होती हैं या विरोध आता है वह सब यहाँ आ उपस्थित होगा। यदि कहा जाय कि वृत्ति का इन्द्रियों के साथ समवाय सम्बन्ध है जो समवाय व्यापी होता है और श्रोत्रादि इन्द्रियाँ भी व्यापी हैं फिर जो यह कहा जाता है कि प्रति नियम देश में रहने वाली वृत्ति इन्द्रियों की व्यक्ति (अभिव्यक्ति) करती है" यह वचन खण्डित हो जायगा। इस प्रकार समवाय सम्बन्ध भी नहीं बन पाता है। यदि कहा जाय कि वृत्ति का इन्द्रियों के साथ न तादात्म्य सम्बन्ध है और न

समवाय ही। किन्तु संयोग सम्बन्ध है। ऐसा मानने पर तो वृत्ति एक पृथक द्रव्य रूप सिद्ध हो जायगी वह इन्द्रियों का धर्म नहीं सिद्ध हो सकेगी। इस प्रकार वृत्ति भिन्न होती हुई इन्द्रियों का धर्म तो नहीं बन पाती।

यदि आप (सांख्य) वृत्ति अर्थान्तर मानते हैं तो इन्द्रियों को वृत्ति है ऐसा नहीं हो सकता अर्थान्तर होने से, जैसे कि पदार्थान्तर इन्द्रियों के नहीं कहला सकते हैं। तात्पर्य यह है कि पहिला विकल्प जो आपके द्वारा कहा गया है वह युक्ति युक्त नहीं है।

(२) दूसरे विकल्प का खंडन—यदि आप लोग कहें कि वृत्ति इन्द्रियों से अभिन्न हैं तो वह कथन भी ठीक नहीं है। इन्द्रियों से वृति को अभिन्न मानने पर तो उसके द्वारा दूसरी तरह से श्रोत्रादिक का ही ग्रहण होगा। वे श्रोत्रादिक इन्द्रियां सुप्त मूर्च्छितादि अवस्था में भी बनी रहती है अतएव उस समय (सुप्त अवस्था में) भी अर्थ ज्ञान होते रहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि ऐसा मानने से सुप्त, प्रबुद्ध आदि व्यवहार ही नहीं बन पायेगा सांख्याभिमत यह विकल्प भी सोपपत्तिक नहीं है।

सूत्र—ज्ञातृ व्यापारस्य प्रमाणत्वे कारकैर्जन्योऽ-

जन्यो वा ॥३७३॥

अजन्येऽभावरूपो भावरूपो वा ॥३७४॥

भावरूपे नित्योऽनित्यो वा ॥३७५॥

कारकैर्जन्ये क्रियात्मकोऽक्रियात्मको वा ॥३७६॥

चार सूत्रों का अर्थ—ज्ञाता के व्यापार को यदि प्रमाण संज्ञा प्रदान की जाती है तो उस विषय में दो विकल्प है (१) वह ज्ञातृ व्यापार कारकों से अजन्य है अथवा (२) जन्य है।

(१) प्रथम विकल्प का खंडन—प्रभाकर नाम के भी एक दार्शनिक विद्वान हैं जो प्रमाण की परिभाषा लिखते हुए अपना अभिमत इस प्रकार कहते हैं कि ज्ञाता (जानने वाले) के व्यापार को प्रमाण कहते हैं। उसके खण्डन के लिये पहिला विकल्प इस प्रकार है कि ज्ञाता का व्यापार कारकों से अजन्य (नहीं पैदा होना) है क्या ? उपरिलिखित विकल्प यदि हां रूप है तो उसका खण्डन अगले सूत्र में (३७४ में) दो विकल्प उठा कर किया गया है। विकल्प इस प्रकार हैं (१) कारकों से अजन्य ज्ञातृव्यापार भाव रूप है अथवा (२) अभाव रूप है। यदि कहा जाय कि वह अभाव रूप है तो उससे अर्थ प्रकाशन रूप जो प्रमाण लक्षण फल है उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती कारण कि अभाव रूपता और फल

प्राप्ति का परस्पर विरोध है।

और भी, विरोध होने पर भी यदि फलार्थी को फल मिल जाय तो कारकों का अन्वेषण करना व्यर्थ होगा क्योंकि अभाव रूप व्यापार से ही अभिमत फल की प्राप्ति हो जायगी। सारांश यह है कि समूचा संसार दरिद्रता रहित होता हुआ सम्पन्न हो जायगा। इसलिये कारकों से अजन्य ज्ञातृव्यापार अभावरूप है यह आपका पक्ष अयुक्ति युक्त है।

यदि कारकों से अजन्य ज्ञातृव्यापार भावरूप है तो उसके खण्डन के लिये पुनः विकल्प मन मानस में उदित होते हैं कि यह कारक अजन्य ज्ञातृव्यापार (१) नित्य है अथवा अनित्य है। यह भावरूप ज्ञातृव्यापार (अजन्य) नित्य तो नहीं सकता कारण कि वैसा होने पर अन्धे आदिक को भी अर्थ दर्शन का प्रसंग हो जायगा, सुप्त जागृतादि व्यवहार को का लोप हो जायगा तथा सबके सब प्राणी सर्वज्ञ हो जायेंगे।

यदि कहा जाय कि ज्ञातृव्यापार अनित्य है तो ऐसा आप लोगों का अभिमत भी युक्ति तुला पर ठीक नहीं उतरता है कारण कि किसी भी वादी ने अजन्य स्वभाव वाले पदार्थ को अनित्य नहीं माना है यदि आग्रह विशेष से आपके पक्ष को मान भी लिया जाय

तो बतलाईये कि ऐसा पदार्थ कालान्तर स्थायी है अथवा क्षणिक है।

वह कालान्तर स्थायी तो हो नहीं सकता वैसा होने पर आप लोगों के सिद्धान्त में, जो यह कहा जाता है कि "क्षणिका हिंसा न कालान्तरभवतिष्ठते" ज्ञातृव्यापार रूप क्रिया क्षणिक होती है, वह कालान्तर तक नहीं ठहरती है, उसमें विरोध आजायगा।

यदि कालान्तर स्थायी न मानकर क्षणिक मानते हो तो विश्व निखिल (सम्पूर्ण) अर्थों के प्रतिभास से रहित हो जायगा, कारण कि दूसरे क्षण में असत्व होने से अर्थप्रति भासन ही नहीं हो सकेगा। इस प्रकार "कारकों से अजन्य ज्ञातृव्यापार प्रमाण है" इस पक्ष की सिद्धि नहीं हो सकी। अब दूसरे पक्ष पर विचार किया जाता है। इसके खण्डन के लिये भी सूत्र न० ३७५ में बतलाये गये विकल्पों का आलम्बन लिया जाता है। विकल्प इस प्रकार हैं—

कारकों से जन्य [पैदा होने वाला] ज्ञातृव्यापार [१] क्रियात्मक है अथवा [२] अक्रियात्मक है। यदि वह अक्रियात्मक है तो उसका खण्डन आगे के सूत्रों में लिखे जाने वाले विकल्पों से किया जाता है। सूत्र यों है—

सूत्र —अक्रियात्मक ज्ञातृव्यापारस्य [प्रमाणत्वे]
बोधरूपोऽप्रबोधरूपो वा ॥३७७॥

अर्थ—अक्रियात्मक ज्ञातृव्यापार को प्रमाण मानने पर, उसके विषय में दो विकल्प उठते हैं कि (१) वह बोध रूप है अथवा (२) अबोधरूप है।

(१) पहिले विकल्प का खण्डन—अक्रियात्मक ज्ञातृ-व्यापार को बोधरूप मानने पर प्रमाण की तरह वह प्रमाणान्तर द्वारा गम्य नहीं होगा।

(२) दूसरे विकल्प का खण्डन– यदि उसमें अबोधरूपता है या वह अबोधरूप है तो यह ज्ञातृव्यापार के लिमे अयुक्त या अयोग्य है कारण कि चैतन्य स्वरूप विशिष्ट ज्ञाता का अचिद रूप व्यापार हो नहीं सकता। 'जानाति' जानता है इस क्रिया को ही आप लोग ज्ञातृव्यापार मानते हैं, इसलिये वह बोधरूप ही होना चाहिये।

इस प्रकार दोनों प्रकार से अक्रियात्मक ज्ञातृव्यापार प्रमाण सिद्ध नहीं हो सका।

सूत्र–ज्ञातृव्यापारस्य धर्मिस्वभावो धर्मस्वभावो वा ॥३७८॥

अर्थ—ऊपर के सूत्र में जिस अक्रियात्यक ज्ञातृव्यापार की अनुपपत्ति वतलाई है उसी का इस सूत्र में उठाये गये विकल्पों द्वारा और भी खण्डन किया जाता है। (१) वह जो ज्ञातृव्यापार है वह धर्मिस्वभाव है अथवा (२) धर्म-

स्वभाव है । दोनों विकल्पों का खण्डन–

(१) प्रथम विकल्प का खण्डन—यदि ज्ञातृव्यापार धर्मिस्वभाव रूप है तो ज्ञाता की तरह उसमें प्रमाणान्तर गम्यता नहीं होगी, अभिन्न होने से ।

(२) द्वितीय विकल्प का खण्डन—यदि ज्ञातृव्यापार को कहा जाय कि वह धर्म रूप है तो आप लोग (प्रभाकर सिद्धान्त को मानने वाले) बतलाइये कि वह (धर्म) ज्ञाता रूप धर्मी से व्यतिरिक्त है, अव्यतिरिक्त है, उभय रूप है अथवा अनुभय रूप है । (चारों पक्षों में अनुपपत्ति दर्शाते हैं) ।

ज्ञाता से ज्ञातृव्यापार रूप धर्म भिन्न तो हो नहीं सकता है, वैसा होने पर सम्बन्धाभाव पाया जायगा और "वह ज्ञाता का है" ऐसा नहीं कहा जा सकेगा ।

उसे अभिन्न यदि कहा जायगा तो ज्ञाता ही वह कहलायगा । "ज्ञाता का यह धर्म है" ऐसा नहीं कहा जा सकेगा ।

(३) उसे उभय रूप (व्यतिरिक्ता व्यतिरिक्त) मानने पर विरोध उपस्थित हो जायगा ।

(४) उसे अनुभय रूप अर्थात् न वह व्यतिरिक्त और न अव्यतिरिक्त रूप हैं, मानने पर वह [पक्ष] युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता कारण कि एक दूसरे के व्यवच्छेद

रूप वस्तु धर्मों का एक साथ प्रतिषेध हो नहीं सकता है। यदि एक का निषेध किया जायगा तो उसका अर्थ होगा दूसरे का विधान।

सूत्र—विरोधौ सहानवस्थापरस्परपरिहारस्थितिलक्षणौ। ॥३७६॥

अर्थ—विरोध दो प्रकार का होता है या यों कहिये कि उसके दो भेद होते हैं—[१] सहानवस्थालक्षण विरोध [२] परस्परपरिहारस्थितिलक्षण विरोध।

[१] सहानवस्थालक्षण विरोधः— एक स्थान या आधार में धर्मी या धर्मों का न रहना सो सहानवस्थान नामक विरोध कहते हैं। जैसे जल में शीत और उष्ण दोनों धर्म एक साथ नहीं पाये जाते हैं कारण कि दोनों में विरोध है।

(१) परस्परपरिहारस्थितिलक्षणविरोध :— एक आधार में एक दूसरे का परित्याग करते हुए रहना परस्परपरिहारस्थितिलक्षणविरोध कहलाता है।

सूत्र—परिस्पन्दापरिस्पन्दात्मके क्रिये। ३८०।

अर्थ—बाह्य एवं अभ्यन्तर रूप दोनों कारणों के मिलने पर एक रूप से रूपान्तर होने रूप द्रव्य के परिणमन को क्रिया कहते हैं। यह दो तरह की होती है।

(१) परिस्पन्दात्मिका क्रिया (२) अपरिस्पन्दात्मिका

क्रिया ।

(१) परिस्पन्दात्मिका क्रियाः— बाह्य एवं अभ्यन्तर रूप दोनों कारणों के मिलने पर एक देश से दूसरे देश में पहुंचने के लिये कारणीभूत द्रव्य के परिणमन को परिस्पन्दात्मिका क्रिया कहते हैं। इसी को यूं भी कह सकते हैं कि द्रव्य में पाये जाने वाले प्रदेशवत्व गुण के परिणमन को परिस्पन्दात्मिका क्रिया कहते हैं।

(२) अपरिस्पन्दात्मिका क्रिया :— दोनों कारणों के मिलने पर एक अवस्था से अवस्थान्तर रूप परिणमन होने को अपरिस्पन्दात्मिक क्रिया कहते हैं अर्थात् द्रव्य में पाये जाने वाले, प्रदेशवत्व गुण के अतिरिक्त, अन्य गुणों का जो परिणमन होता है वह सब अपरिस्पन्दात्मिका क्रिया के अन्तर्गत आता है।

सूत्र—सविकल्पाविकल्पयोरेकत्वाध्यवसाये खण्डयन्विकल्पौ युगपद् वृत्तेर्लघुवृत्तेर्वैकत्वम् ॥३८१॥

अर्थ—सविकल्प और निर्विकल्प ज्ञानों में एकत्व का अध्यवसाय हो जाता है ऐसे बौद्धाभिमत पक्ष के खंडन करने के लिये दो विकल्प इस सूत्र में उठाये गये हैं कि [१] दोनों ज्ञानों के एक साथ उत्पन्न होने से एकत्व होता है या [२] एक के बाद जल्दी से दूसरे के हो जाने के कारण एकत्व होता है।

[१] "युगपद्वृत्तेः एकत्वं" रूप पक्ष का खंडन एक साथ उत्पन्न होने से एकत्वाध्ययवसाय मानने में लम्बी ककड़ी की फांक खाते समय रूपादिक पांच इन्द्रियों के विषयों के ज्ञानों की उत्पत्ति एक साथ होने से उन ज्ञानों में भी अभेद [एकत्व] अध्यवसाय क्यों नहीं हो जाता है। कदाचित् यह कहा जाय कि वे ज्ञान भिन्न २ पदार्थों को विषय करते हैं अतः उनमें एकत्वाध्यवसाय नहीं होता है तो इसी हेतु या युक्ति से प्रकृत [निर्विकल्प और सविकल्प] ज्ञानों में एकत्वाध्यवसाय नहीं होना चाहिये। कारण कि निर्विकल्प ज्ञान क्षण को और सविकल्प ज्ञान संतान को विषय करता है।

[२] "लघुवृत्तेः एकत्व" पक्ष का खडन—यदि कहा जाय कि क्रम रहते हुए भी जल्दी हो जाने के कारण एकत्वाध्यवसाय हो जाता है तो खर रटित [गधे की रेंकन] में भी अभेदाध्यवसाय हो जाना चाहिये।

सूत्र—सादृश्यादभिभवाद्वा ॥३८२॥

अर्थ—निर्विकल्प एवं सविकल्प ज्ञान में सदृशता पाई जाती है इसलिये पृथक्त्वाध्यवसाय नहीं होता है या अभिभव हो जाने से भेदोपलब्धि [पृथक्त्वाध्यवसाय] नहीं होती है।

[१] "सादृश्यात् अभेदोपलब्धिः" रूप पक्ष का खण्डन

इन दोनों (निर्विकल्प एवं सविकल्प) ज्ञानों में सदृशता रूपपक्ष के अङ्गीकार करने पर दो खण्डन विकल्प होते हैं जिनका कि विशदीकरण अगले सूत्र में किया गया है।

[२] "अभिभवात् अभेदोपलब्धिः" रूप पक्ष का खण्डन दो ज्ञानों में से कौन किसके द्वारा दबा दिया जाता है, सूर्य के द्वारा तारा समूह की तरह विकल्पज्ञान के द्वारा अविकल्पज्ञान का अभिभव हो जाता है तो प्रश्न यह है कि विकल्प ज्ञान का अविकल्पज्ञान द्वारा अभिभव क्यों नहीं हो जाता है। यदि कहा जाय कि बलवान होने से विकल्पज्ञान का अभिभव नहीं होता है तो इसमें बलवत्ता क्यों हैं? बहुत को विषय करने के कारण अथवा निश्चयात्मक होने के कारण। इन दोनों पक्षों का खण्डन अगले सूत्र नं० ३८४ में किया गया है।

सूत्र—सादृश्ये सतिविषयाभेदकृतं ज्ञानरूपताकृतम ॥३८३॥

अर्थ—दोनों ज्ञानों में सादृश्य होने से अभेदोपलब्धि होती है तो पूंछना यह है कि इन दोनों में सादृश्य किं कृत है?

[१] दोनों का विषय अभिन्न है इसलिये अथवा।

[२] दोनों ही ज्ञान रूप हैं इसलिये हैं।

[१] प्रथम पक्ष का खण्डन— यदि पहिला पक्ष अङ्गीकार किया जाय तो वह हो नहीं सकता कारण कि विकल्प-ज्ञान संतान को और निर्विकल्प ज्ञान क्षणों को विषय करता है। इस तरह दोनों के विषयों में अभेद नहीं होता।

[२] दूसरे पक्ष का खण्डन— ज्ञानरूपता की सहायता से अभेदाध्यवसाय माना जायगा तो नील ज्ञान पीत ज्ञान, आदि ज्ञानों की भी भेद रूप से उपलब्धि नहीं होनी चाहिये। लेकिन उन ज्ञानों की भिन्न रूप से प्रतीति होती है।

सूत्र—विकल्पेनाविकल्पस्याभिभवे बहुविषयत्वान्निश्चय-यात्मकत्वाद्वा ॥३८४॥

अर्थ—विकल्प ज्ञान के द्वारा अविकल्प ज्ञान का अभिभव हो जाता है ऐसा पक्ष अंगीकार करने पर, इसके लिये दो खंड्य विकल्प हैं (१) विकल्प ज्ञान में जो बलवानपना है और जिसके द्वारा अविकल्प ज्ञान दबा दिया जाता है वह बलवत्ता इसमें क्यों है? बहुत को विषय करने के कारण अथवा (२) निश्चया-त्मकता होने के कारण।

(१) पहिले पक्ष का खंडन—यदि बहुत को विषय करने के कारण विकल्प ज्ञान को बलवान माना जाता है

जिससे कि वह निर्विकल्प का अभिभव कर लेता है तो ऐसा मानना भीं योग्य एवं युक्ति संगत नहीं है कारण कि निर्विकल्प ज्ञान के विषय में ही उसकी प्रवृत्ति आप लोगों के द्वारा स्वीकार की गई है अगर ऐसा नहीं मानेंगे तो अगृहीत अर्थ को चूंकि विकल्प ज्ञान ग्रहण करेगा तो प्रमाणान्तरता का प्रसंग आ उपस्थित होगा। अतः ऐसा पक्ष अंगीकार करने से तो स्वसिद्धान्त के ही विरोध का अवसर आ खड़ा होता है।

(२) यदि निश्चयात्मक होने के कारण विकल्प ज्ञान को बलवान कहते हैं तो प्रश्न यह है! (१) स्वरूप में निश्चयात्मकता है अथवा (२) अर्थ के रूप में निश्चयात्मकता है, इन दो खण्ड विकल्पों द्वारा यह पक्ष भी खंडित हो जाता है, तात्पर्य यह है कि विकल्प ज्ञान निर्विकल्प ज्ञान से बलवान सिद्ध नहीं हो पाता जिससे कि आपका पक्ष सिद्ध होकर यह कहने में समर्थ होता कि अभिभव हो जाने से अभेदोपलब्धि या एकात्वाध्यवसाय दोनों ज्ञानों में हो जाता है।

सूत्र—निश्चयात्मकत्वे स्वरूपेऽर्थरूपेवा निश्चयात्मकत्वम्

॥३८५॥

अर्थ—जैसा कि पूर्व सूत्र में लिखा जा चुका है कि यदि

निश्चयात्मक होने से विकल्प ज्ञान को बलवान कहते हो तो वह भी ठीक नहीं। इसके खंडन के लिये दो खंड्य विकल्प हैं [१] स्वरूप में निश्चयात्मकता है अथवा [२] अर्थरूप में निश्चयात्मकता है।

[१] प्रथम पक्ष का खंडन—स्वरूप में निश्चयात्मकता तो हो नहीं सकती कारण कि ऐसा अङ्गीकार करने पर "सर्वचित्तचैत्तानामात्मसंवेदनं प्रत्यक्षम्" इस आपके सिद्धान्त ग्रंथ से विरोध आता है।

(अपूर्ण)

अथ तृतीयोऽध्यायः

सूत्र—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि रत्नत्रयम् ॥१॥

अर्थ—१–सम्यग्दर्शन, २–सम्यग्ज्ञान, ३–सम्यक्चारित्र ये तीन रत्नत्रय कहे जाते हैं।

सम्मग्यर्शन— तत्त्वों के यथार्थश्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। सम्यग्ज्ञान-तत्त्वों के यथार्थ ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

सम्यक्चारित्र–संसार की कारणभूत क्रियाओं के त्याग को सम्यक्चारित्र कहते हैं।

सूत्र—वहिरन्तः परमाआत्मानः ॥२॥

अर्थ—आत्मायें तीन प्रकार की हैं।

१–वहिरात्मा, २–अन्तरात्मा, ३–परमात्मा।

वहिरात्मा— जो शरीर और आत्मा को एक मानते हैं वे वहिरात्मा हैं।

अन्तरात्मा—जो शरीर भिन्न आत्मा को मानते हैं उन्हें अन्तरात्मा कहते हैं।

परमात्मा—कर्ममलरहित आत्माओं को परमात्मा कहते हैं।

सूत्र—उत्तममध्यमजघन्याअन्तरात्मानः ॥३॥

अर्थ—अन्तरात्मा तीन प्रकार के हैं।

१–उत्तम अन्तराआत्मा, २–मध्यम अन्तरात्मा, जघन्य उत्तम अन्तरात्मा ।

उत्तम अन्तर आत्मा—बाह्य और आभ्यान्तर परिग्रह को सर्वथा त्यागने वाले शुद्धोपयोगी मुनि उत्तम अन्तर आत्मा है ।

मध्यम अन्तरात्मा—हिंसादिपंच पापों के एक देशत्यागी ग्रहस्थ मध्यम अन्तर आत्मा है ।

जघन्य अन्तर आत्मा—अविरतसम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तर आत्मा है ।

सूत्र—सम्यक्त्वाराधनाः ॥४॥

अर्थ—सम्यक्त्वाराधना तीन प्रकार की है १—उत्तम २—मध्यम ३—जघन्य ।

सूत्र—ज्ञानाराधनाः ॥५॥

अर्थ—ज्ञानाराधना भी तीन प्रकार की है १—उत्तम २—मध्यम ३—जघन्य ।

सूत्र—चारित्राराधनाः ॥६॥

अर्थ—चारित्राराधना भी तीन प्रकार की है । १–उत्तम, २–मध्यम, ३–जघन्य ।

सूत्र—तप आराधनाः ॥७॥

अर्थ—तप आराधना भी तीन प्रकार की है । १–उत्तम, २–मध्यम, ३–जघन्य ।

सूत्र—ध्यातारः ॥८॥

अर्थ—ध्याता भी तीन प्रकार के हैं। १—उत्तम, २—मध्यम, ३—जघन्य।

सूत्र—ध्यानसामग्र्यः ॥९॥

अर्थ—ध्यानसामग्री भी तीन प्रकार की है। १—उत्तम, २—मध्यम, ३—जघन्य।

सूत्र—प्रोषधोपवासाः ॥१०॥

अर्थ—प्रोषधोपवास भी तीन प्रकार के हैं। १—उत्तम, २—मध्यम, ३—जघन्य।

सूत्र—संख्याताश्च ॥११॥

अर्थ—संख्यात भी तीन प्रकार का है। १—उत्तम, २—मध्यम, ३—जघन्य।

सूत्र—पात्राश्च ॥१२॥

अर्थ—पात्र भी तीन प्रकार के हैं। १—उत्तम, २—मध्यम, ३—जघन्य।

उत्तम—एक कम जघन्य परीतासंख्यात को उत्तम संख्यात कहते हैं।

मध्यमसंख्यात—जघन्य और उत्तम संख्यात के मध्यवर्ती संख्याओं को मध्यम संख्यात कहते हैं।

जघन्यसंख्यात—दो को जघन्यसंख्यात कहते हैं।

सूत्र—असंख्याताश्च ॥१२॥

अर्थ—असंख्यात भी तीन प्रकार का है। १–उत्तम (उत्कृष्ट), २–मध्यम, ३—जघन्य।

उत्कृष्ट असंख्यात—एक कम जघन्य परीतानन्तको उत्कृष्ट असंख्यात कहते हैं।

मध्यम असंख्यात—उत्कृष्टअसंख्यात और जघन्य असंख्यात की मध्य की गणना को मध्यम असंख्यात कहते हैं।

जघन्य असंख्यात—लक्षयोजनप्रमाण कल्पित अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका, महाशलाका कुण्डों में विधि से मापे गये फिर महाशलाके अन्तिम अनवस्थितकुण्ड में माने गये सरसों की संख्या प्रमाण जघन्य असंख्यात होता है। इसे ही जघन्यपरीतासंख्यात कहते हैं।

सूत्र—अनन्ताश्च ॥१३॥

अर्थ—अनन्त भी तीन प्रकार का है। १–उत्कृष्टअनन्त, २–मध्यम, ३–जघन्य।

उत्कृष्ट अनन्त—चरम अनन्तात को उत्कृष्ट अनन्त कहते हैं।

मध्यमअनन्त—उत्कृष्ट अनन्त और जघन्यअनन्त के मध्य को मध्यम अनन्त कहते हैं।

जघन्य अनन्त—(इसका स्वरूप इसी अध्याय के १७ नं० के सूत्र में जघन्य युक्तानंत के स्वरूप में देखना चाहिये)।

सूत्र—युक्तासंख्याताः ॥१४॥

अर्थ—युक्तासंख्यात—तीन प्रकार का. होता है ।

१—उत्कृष्टयुक्तासंख्यात, २—मध्यमयुक्तासंख्यात, ३—जघन्ययुक्तासंख्यात ।

१—उत्कृष्टयुक्तासंख्यात—जघन्ययुक्तासंख्यात (आवली के समय प्रमाण) को जघन्ययुक्तासंख्यात से गुणा करने पर जो लब्ध हो वह जघन्य असंख्यातसंख्यात है उसमें एक कम करने पर उत्कृष्टयुक्तासंख्यातसंख्यात होता है ।

मध्यमयुक्तासंख्यात—जघन्ययुक्तासंख्यात और उत्कृष्ट युक्तासंख्यात के मध्य के विकल्प मध्यमयुक्तासंख्यात हैं ।

जघन्ययुक्तासंख्यात—जघन्यपरीतासंख्यात को एक एक विरलन करके उतने प्रमाण जघन्यपरीतासंख्यातों को परस्पर गुणा करने पर जो लब्ध हो वह जघन्ययुक्तासंख्यात है । यह एक आवली के समय प्रमाण है ।

सूत्र—परीतासंख्याताः ॥१५॥

अर्थ—परीतासंख्यात तीन प्रकार का है ।

१—उत्कृष्टपरीतासंख्यात, २—मध्यम परीतासंख्यात ३—जघन्यपरीतासंख्यात ।

१—उत्कृष्ट परीतासंख्यात—जघन्यपरीतासंख्यात को एक एक करि विरलन करके उतने रूप प्रति जघन्यपरीता

सङ्ख्यात लिखकर परस्पर गुणा करने से जो लब्ध हो उसमें एक कम कर दिया जावे वह उत्कृष्ट परीतासङ्ख्यात है।

२—मध्यमपरीतासङ्ख्यात—जघन्य परीतासङ्ख्यात से ऊपर उत्कृष्टासङ्ख्यात के पहिले के विकल्प मध्यम परीतासङ्ख्यात हैं।

३—जघन्य परीतासङ्ख्यात—इसका वर्णन ऊपर के १२वें सूत्र के जघन्य असङ्ख्यात के स्वरूप में किया गया है।

सूत्र—असङ्ख्यातासङ्ख्याताः ॥१६॥

अर्थ—असङ्ख्यातासङ्ख्यात भी तीन प्रकार का है।

१—उत्कृष्ट असङ्ख्यातासङ्ख्यात। २—मध्यमअसङ्ख्यातासङ्ख्यात। ३—जघन्य असङ्ख्यातासङ्ख्यात।

१—उत्कृष्ट असङ्ख्यातासख्यात—जघन्य परीतानन्त से से एक कम करने पर जो राशि हो वह उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात है।

२—मध्यम असङ्ख्यातासंख्यात—जघन्य असंख्यातासंख्यात और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यान के मध्य के विकल्प उत्कृष्ट असंख्यात है।

३—जघन्य असंख्यात संख्यात— जघन्ययुक्तसंख्यात को जघन्य युक्तासंख्यात से गुणा करने पर जो लब्ध हो

वह जघन्य असंख्यातासंख्यात है।

सूत्र—युक्तानन्ताः ॥१७॥

अर्थ– युक्तानन्त तीन प्रकार का है—

१--उत्कृष्टयुक्तानन्त। २– मध्यम युक्तानन्त। ३–जघन्य युक्तानन्त।

१–उत्कृष्टयुक्तानन्त—जघन्य अनन्तानन्त में से एक कम होने पर उत्कृष्ट युक्तानन्त होता है।

२ मध्यम युक्तानन्त—उत्कृष्ट युक्तानन्त और जघन्य युक्तानन्त के मध्य के विकल्पों को मध्ययुक्तानन्त कहते हैं।

३ जघन्ययुक्तानन्त – जघन्यपरीतानन्त का विरलनदेय करके परस्पर गुणा करने से जो राशि हो वह जघन्य युक्तातानन्त है।

सूत्र—परीतानन्ताः ॥१८॥

अर्थ—परीतानन्त तीन प्रकार का है १ उत्कृष्टपरीतानन्त २ मध्यमपरीतानन्त ३ जघन्य परीतानन्त।

१ उत्कृष्टपरीतानन्त—जघन्यपरीतानन्त को विरलन देय विधि से परस्पर गुणित होने पर जो राशि हो वह जघन्ययुक्तानन्त है, जघन्ययुक्तानन्त में से १ कम करने पर उत्कृष्टपरीतानन्त कहते हैं।

२ मध्मपरीतानन्त—उत्कृष्टपरीतानन्त व जघन्यपरीता-

नन्त के मध्य के विकल्पों को मध्यमपरीतानन्त कहते हैं।

३ जघन्य परीतानन्त—जघन्य असंख्यातसंख्यात का शलाका विरलनदेय विधि करके पुनःशलाकाप्रमाण लब्ध के विरलनदेयों को करके फिर उस महाराशि के शलाका विरलनदेयों की विधि कर फिर महाराशि के शलाका विरलनदेयों को करने पर (शलाकात्रय का निष्ठापन करने पर) मध्य असंख्यातासंख्यात हुआ उस मध्य असंख्यातासंख्यात में ये ६ राशि मिलाना धर्मद्रव्य के प्रदेश, अधर्मद्रव्य के प्रदेश, एक जीव द्रव्य के प्रदेश, लोकाकाश के प्रदेश अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवन का प्रमाण (लोका- काश के प्रदेशनिते असंख्यातगुणें), प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवनि का प्रमाण (असंख्यात लोकगुणा)। इन सबका जो माण हो उसका शलाका विरलनदेयों की विधि से शलाकात्रय निष्टापन करे फिर जो लब्ध हो उसमें ये राशि मिलावे कल्पकाल के समय (संख्यात पल्य मात्र), स्थितिबंधाध्वसायस्थान (कल्प के समयों से असंख्यातगुणा), योग का उत्कृष्ट अविभागप्रतिच्छेद (स्थिति बंधाध्यवसायस्थान से असंख्- यातगुणा)। इन सबका जो प्रमाण हो उसका शलाका विरलन देयों की विधि से शलाकात्रय निष्ठापन करे। यह सब करने पर जो प्रमाण हो वह जघन्य परीतानन्त है।

सूत्र—अनन्तानन्ताः ॥१६॥

अर्थ—अनन्तानन्त तीन प्रकार का है १ उत्कृष्टअनन्तानन्त २ मध्यम अनन्तानन्त ३ जघन्यअनन्तानन्त।

१ उत्कृष्टअनन्तानन्त—जघन्य अनन्तानन्तराशि को विरलन देय शलाका से महा शलाकात्रय तक परस्पर गुणित करे जो राशि हो उसमें सिद्धराशि, अलोकाकाश के प्रदेशों की राशि मिलाना। फिर जो राशि हो विरलन देय शलाका से महाशालाकात्रय तक गुणित करे, जो राशि हो उसमें धर्मद्रव्य के अधर्मद्रव्य के अगुरुलघुगुण के अविभाग प्रतिच्छेद का प्रमाण मिलाना। फिर जो राशि हो उसे विरलनदेय शलाका परस्पर गुणे इस प्रकार शलाकात्रय पूर्ण करे फिर जो राशि होय उसे केवल ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद में से घटाय जो राशि (वही की वही) है उसे केवल ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद में मिलाय जो राशि हो वह उत्कृष्टानतानन्त है अर्थात् उत्कृष्टानंतानन्त केवल ज्ञान है।

३—जघन्य अनन्तान्त—जघन्य युक्तानन्त को जघन्य युक्तानन्त से गुणित होने पर जघन्य अनन्तानन्त होता है।

सूत्र—भोगभूमयः ॥२०॥

अर्थ—भोगभूमियां तीन प्रकार की हैं। १–उत्कृष्ट भोगभूमि, २–मध्यमभोगभूमि, ३–जघन्य भोगभूमि।

१—उत्कृष्ट भोगभूमि—जहां के मनुष्य तथा तिर्यञ्चों की आयु तीन पल्य प्रमाण होती है और इष्ट सामग्री कल्प वृक्षों के द्वारा प्राप्त होती है उस क्षेत्र को उत्तम भोगभूमि कहते हैं।

२—मध्यम भोगभूमि जहां के मनुष्य तथा तिर्यञ्चों की आयु दोपल्यप्रमाण होती है और इष्ट भोगोपभोग की सामग्रीकल्पवृक्षों से प्राप्त होती है उस क्षेत्र को मध्यम भोगभूमि कहते हैं।

३–जघन्यभोगभूमि—जहाँ के मनुष्य तथा तिर्यञ्चों की आयु एक पल्य प्रमाण होती है और इष्ट भोगोपभोग की सामग्रीकल्प वृक्षों से प्राप्त होती है उस क्षेत्र को जघन्य भोगभूमि कहते हैं।

सूत्र–भक्त प्रतिज्ञाः ॥२१॥

अर्थ—भक्त प्रतिज्ञा तीन प्रकार की है। १–उत्ष्ट भक्त प्रतिज्ञा २–मध्यमभक्त प्रतिज्ञा, ३–जन्घय भक्त प्रतिज्ञा।

उत्कृष्ट भक्तप्रतिज्ञा—विधिपूर्वक क्रमशः भोजनपान के त्याग को भक्त प्रतिज्ञा कहते हैं और बारह वर्ष तक की गई भक्त प्रतिज्ञा को उत्कृष्ट भक्त प्रतिज्ञा कहते हैं।

२–मध्यम भक्त प्रतिज्ञा— उत्कृष्ट और जघन्यभक्त

प्रतिज्ञा के मध्यवर्ती काल में होने वाली भक्त प्रतिज्ञा को मध्यमभक्त प्रतिज्ञा कहते हैं।

३—जघन्यभक्त प्रतिज्ञा—अन्तमुहूर्त प्रमाण की गई प्रतिज्ञा को जघन्य भक्त प्रतिज्ञा कहते हैं।

सूत्र—श्रावकाः ॥२२॥

अर्थ—श्रावक भी तीन प्रकार के होते हैं।

१—उत्तम श्रावक, २—मध्यम श्रावक, ३—जघन्य श्रावक।

१—उत्कृष्ट श्रावक—दशवीं और ग्यारहवी प्रतिमा धारी श्रावक को उत्कृष्ट श्रावक कहते हैं।

२—मध्यम श्रावक— ७ सातवीं ८ आठवीं और नववीं प्रतिमा धारी श्रावक को मध्यम श्रावक कहते हैं।

जघन्यश्रावक–पहली प्रतिमा से छठवीं प्रतिमा तक के पालक श्रावक को जघन्य श्रावक कहते हैं।

सूत्र–मुनयः ॥२३॥

अर्थ—मुनि भी तीन प्रकार के होते हैं। १—उत्तम, २—मध्यम, ३—जघन्य।

१—उत्तम मुनि चार ज्ञान के धारी गणधर मुनि उत्तम हैं।

२—मध्यम मुनि— ऋद्धिविशेषधारी मुनि मध्यम मुनि हैं।

३ जघन्यमुनि—उक्त दोनों प्रकार के मुनियों से भिन्न मुनि जघन्य मुनि हैं।

सूत्र—नक्षत्राणि ॥२४॥

अर्थ—नक्षत्र भी तीन प्रकार के होते हैं—

१ उत्तम २ मध्यम ३ जघन्य।

१ उत्तम—रोहिणी, विशाखा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा ये ६ उत्कृष्ट नक्षत्र हैं।

२ मध्यम—अश्विनी कृत्तिका मृगशीर्षा पुष्य मघा हस्त चित्रा अनुराधा पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढ़ा पूर्वाभाद्रपदा मूल श्रवण घनिष्ठा रेवती ये १५ नक्षत्र उत्कृष्ट नक्षत्र हैं।

३ जघन्य—शतभिषा भरणी आर्द्रा स्वाति अश्लेषा ज्येष्ठा ये ६ जघन्य नक्षत्र हैं।

सूत्र—पात्राश्च ॥२५॥

अर्थ—पात्र भी तीन प्रकार के होते हैं—

१ उत्तम २ मध्यम ३ जघन्य।

१ उत्तमपात्र—त्रयोदश प्रकार चरित्राराधक मुनि उत्तम पात्र हैं।

२ मध्यमपात्र—देशव्रतश्रावक मध्यमपात्र हैं।

३—जघन्यपात्र—अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्यपात्र हैं।

सूत्र—सुपात्रकुपात्रा पात्रावा ॥२६॥

अर्थ—सुपात्र कुपात्र तथा अपात्र के भेद से भी पात्र तीन

प्रकार के होते हैं ।

१ सुपात्र—व्रतधारी सम्यग्दृष्टि सुपात्र हैं ।

२ कुपात्र—व्रतधारी मिथ्यादृष्टि कुपात्र हैं ।

३ अपात्र—उक्तदोनों प्रकार की योग्यता से रहित अपात्र हैं ।

सूत्र—स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्याः एकाकीभंगः ॥२७॥

अर्थ—स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्य यह एक भंग है ।

सूत्र—ज्ञानार्थशब्दनयाः ॥२८॥

अर्थ—नय तीन प्रकार का है-

१ ज्ञाननय २ अर्थनय ३ शब्दनय ।

१ ज्ञाननय—ज्ञान प्रधाननय को ज्ञाननय कहते हैं ।

२ अर्थ—प्रधाननय को अर्थनय कहते हैं ।

सूत्र—संशयविपर्ययानध्यवसायाः प्रमाणाभासाः ॥२९॥

अर्थ—संशय,विपर्ययानध्यवसायाःप्रमाणाभासा ।

१—संशयविपर्यया और अनध्यवसाय ये तीन प्रमाणाभास हैं । अर्थात् इनमें प्रमाण का लक्षण तो नहीं है फिर भी प्रमाण सरीखे मालूम होते हैं इस लिये प्रमाणाभास हैं ।

१ संशय—विरुद्ध दो कोटि को स्पर्श करने वाले ज्ञान को संशय कहते हैं ।

२ विपर्य—विपरीत ज्ञान को विपर्य कहते हैं ।

३ अनध्यवसाय—अनिश्चयात्मक ज्ञान को अनध्यवसाय कहते हैं।

सूत्र—केवलान्वयव्यतिरेकान्वयवयतिरेकिणोहेतवः ॥३०॥

अर्थ—हेतु तीन प्रकार का है—

१ केवलान्वयी २ केवलव्यतिरेकी ३ अन्वयव्यतिरेकी।

१ केवलान्वयी—जिसमें सिर्फ अन्वयव्याप्ति पाई जाय उसे केवलान्वयी हेतु कहते हैं।

२ केवलव्यतिरेकी—जिसमें सिर्फ व्यतिरेक व्याप्ति पाई जाय उसे केवल व्यतिरेकी हेतु कहते हैं।

३ अन्वयव्यतिरेकी—जिसमें अन्वयव्याप्ति तथा व्यतिरेक व्याप्ति पाई जाय उसे अन्वयव्यतिरेकी कहते हैं।

सूत्र—अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानिप्रत्यक्षाणि ॥३१॥

अर्थ—अवधिज्ञान मनःपर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान ये ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

१—अवधिज्ञान—द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव की सहायता से जो रूपी पदार्थ को जाने उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

२—मनःपर्ययज्ञान—जो दूसरे के मन में रहने वाले पदार्थ को जाने उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

३—केवलज्ञान—जो तीन लोक और तीन काल के अनन्तानन्त पदार्थों के अनन्तानन्तगुण और अनन्तानन्त पर्यायों को एक साथ जाने उसे केवल ज्ञान कहते हैं।

सूत्र—उपशमवेदक क्षायिकाणि सम्यग्दर्शनानि ॥१२॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन के तीन भेद हैं।

१ उपशम सम्यग्दर्शन २ वेदक सम्यग्दर्शन ३ क्षायिक सम्यग्दर्शन।

१ उपशम सम्यग्दर्शन—अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ मिथ्यात्व सम्यङ् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति इन सातों के उपशम से होने वाले सम्यग्दर्शन को उपशम सम्यग्दर्शन कहते हैं।

२—वेदक सम्यग्दर्शन—अनन्तानुबंधी क्रोध-मान माया लोभ मिथ्यात्व सम्यङ् मिथ्यात्व इन छहसर्व घाती प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय और इनहीं का सदवस्था रूप उपशम तथा देश घाती सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने पर जो सम्यग्दर्शन होता है उसे वेदक सम्यग्दर्शन कहते हैं।

३—क्षायिक सम्यग्दर्शन—अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ मिथ्यात्व सम्यङ् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति के क्षय होने पर जो सम्यक्त्व होता है उसे क्षायिक सम्यग्दर्शन कहते हैं।

सूत्र—चलमलागाढा वेदक दोषाः ॥३३॥

अर्थ— चलमल और अगाढ ये तीन वेदक सम्यक्त्व के दोष हैं।

चल—जिससे सच्चेश्रद्धान में भी तरंग की तरह चंचलता हो वह चल दोष है जैसे अपने बनाये मंदिर व बिम्ब में अन्य की अपेक्षा अधिक श्रद्धा रखना।

मल—दोष में शंका कांक्षा विचिकित्सा अन्यदृष्टि प्रशंसा अन्यदृष्टि- संस्त व ये ५ अतीचार लग जाते हैं।

अगाढ-दोष में गाढापना नहीं होता है। जैसे सब अर्हंत समान हैं तो भी किसी की भक्ति से अधिक लाभ समझना।

सूत्र—मिथ्यात्व सम्यङ्‌मिथ्यात्व सम्यक् प्रकृतयो-दर्शनमोहा : ॥३४॥

अर्थ—दर्शन मोह तीन प्रकार का है— १ मिथ्यात्व २ सम्यङमिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति।

१ मिथ्यात्वअतत्वश्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं।

सम्यङ्‌मिथ्यात्व—कुछ सम्यक्त्व रूप और कुछ मिथ्यात्व रूप मिले हुये दही गुण के समान परिणामों को सम्यङ्‌मिथ्यात्व कहते हैं।

३—सम्यक् प्रकृति–जिसके उदय से सम्यग्दर्शन में चल मलिन और अगाढ ये तीन दोष पैदा होते हैं उसे सम्यक् प्रकृति कहते हैं।

सूत्र—औदारिक वैक्रियिकाहारकाणां नोकर्मवर्गणाः ॥३५॥

अर्थ—नोकर्मवर्गणा तीन प्रकार की हैं— १ औदारिक

नोकर्मवर्गणा। वैक्रियिक नोकर्मवर्गणा। ३ आहारक वर्गणा।

१–औदारिक नोकर्मवर्गणा–औदारिक शरीर के योग्य नोकर्मवर्गणाओं को औदारिक नोकर्मवर्गणा कहते हैं।

२–वैक्रियिक नोकर्मवर्गणा–वैक्रियिक शरीर के योग्य नोकर्मवर्गणाओं को वैक्रियिकनोकर्मवर्गणा कहते हैं।

३—आहारक नोकर्मवर्गणा–आहारक शरीर के योग्य नोकर्मवर्गणाओं को आहारक नोकर्मवर्गणा कहते हैं।

सूत्र—अंगोपांगाश्च ॥३६॥

अंगोपाँग भी तीन प्रकार का होता है।

१ औदारिक अङ्गोपाङ्ग २ वैक्रियिक अङ्गोपाङ्ग ३ आहारकअङ्गोपाङ्ग।

१ औदारिक अङ्गोपाङ्ग—जिसके उदय से औदारिक शरीर में अङ्गों और उपाङ्गों की रचना होती है उसे औदारिक अङ्गोपाङ्ग कहते हैं।

२ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग—जिसके उदय से वैक्रियिक शरीर में अङ्गों तथा उपाङ्गों की रचना होती है उसे वैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग कहते हैं।

३ आहारकाङ्गोपाङ्ग—जिसके उदय से आहारक शरीर में अङ्गों तथा उपाङ्गों की रचना होती है उसे आहारक अङ्गोपाङ्ग कहते हैं।

सूत्र--मुन्यार्यिकोद्दिष्टत्यागिश्रावकाणां जैनलिंगानि ॥३७॥

अर्थ--जैनलिंग तीन प्रकार के होते हैं-

१ मुनिलिंग २ आर्यिका ३ उद्दिष्टत्यागिश्रावक ।

१ मुनि-निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधु को मुनि कहते है ।

२ आर्यिका-शाटिकामात्रपरिग्रह वाली साध्वी को आर्यिका कहते हैं ।

३ उद्दिष्ट त्यागीश्रावक-जो अपने (उद्दिष्टत्यागीश्रावक के) निमित्त से बनाए हुए भोजन का त्यागी होता है और अपने शरीर पर एक चादर और एक लंगोटी रखता हो अथवा एक लंगोटीमात्र रखता हो उसे उद्दिष्टत्यागी उत्तम श्रावक कहते हैं ।

सूत्र—धर्माधर्माकाशमेकैकद्रव्यम् ॥३८॥

अर्थ—धर्म-अधर्म और आकाश ये तीनों एक एक स्वतन्त्र द्रव्य हैं ।

१ धर्मद्रव्य—उसे कहते हैं जो जीवों और पुद्गलों के चलने में उदासीन रूप से सहायक हो। यह द्रव्य सर्व-लोक व्यापी हैं ।

२ अधर्मद्रव्य—यह वह द्रव्य है जो जीवों और पुद्गलों की स्थिति में उदासीन रूप से सहायक होता है यह द्रव्य भी तिल में तेल की तरह सर्वलोक व्यापी है ।

३ आकाशद्रव्य—जो जीवादि द्रव्यों को अवकाश दे

उसे आकाशद्रव्य कहते हैं। इसके उपाधि के भेद से दो भेद हैं १ लोकाकाश, २ अलोकाकाश। जीवादिषड्-द्रव्यवान आकाश लोकाकाश है। इससे भिन्न आकाश का नाम अलोकाकाश है यह आकाश एक अखण्ड द्रव्य है।

सूत्र—मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्राणिभवपद्धतयः ॥३६॥

अर्थ—१ मिथ्यादर्शन २ मिथ्याज्ञान ३ मिथ्याचारित्र ये तीन संसार के मार्ग हैं।

१ मिथ्यादर्शन—अतत्व रुचि को मिथ्यादर्शन कहते हैं।

२ मिथ्याज्ञान—अतत्वज्ञान को मिथ्याज्ञान कहते हैं।

३ मिथ्याचारित्र—संसार की कारणभूत क्रियाओं को मिथ्याचारित्र कहते हैं।

सूत्र—निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धीनांसमूहः
स्त्यानगृद्धित्रिकम् ॥४०॥

अर्थ—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, और स्त्यानगृद्धि के समूह को स्त्यानगृद्धित्रिक कहते हैं।

१ निद्रानिद्रा—जिसके उदय से नींद पर नींद आवे।

२ प्रचलाप्रचला—जिसके उदय से सोते हुए मुख से लार बहने लगे और अङ्गोपाङ्ग भी चलने लगें।

३ स्त्यानगृद्धि—जिसके उदय से सोते हुए कुछ

विलक्षण-आश्चर्यजनक कार्य करके और जागने पर पता भी न चले ।

सूत्र—सूक्ष्मापर्याप्तसासाधारणानां सूक्ष्मत्रिकम् ॥४१॥

अर्थ—सूक्ष्म, अपर्याप्त, और साधारण इन तीनों का समुदाय सूक्ष्मत्रिक कहलाता है ।

१ सूक्ष्म—जो नामकर्म सूक्ष्म शरीर का निर्माण करे उसे सूक्ष्मनामकर्म कहते है ।

२ अपर्याप्त—जिस नाम कर्म के उदय से एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो उसे अपर्याप्त नाम कर्म कहते हैं ।

३ साधारण—जिस नाम कर्म के उदय से एक शरीर के अनेक जीव स्वामी हों ।

सूत्र—दुःस्वर दुर्भगानादेयानां दुर्भगत्रिकम् ॥४२॥

अर्थ—दुःस्वर, दुर्भग और अनोदय इन तीन प्रकृतियों का समूह दुर्भगत्रिक कहलाता है ।

१ दुःस्वर—जिस नाम कर्म के उदय से खोटा स्वर हो ।

२ दुर्भग—जिस नाम कर्म के उदय से लोक अप्रीति करे ।

३ अनादेय—जिस नाम कर्म के उदय से कान्ति रहित शरीर हो ।

सूत्र—त्रसबादरपर्याप्तानां त्रसत्रिकम् ॥४३॥

अर्थ—त्रस, बादर, और पर्याप्त इन तीन प्रकृतियों का

समूह त्रसत्रिक कहलाता है।

१ त्रस—जिस नामकर्म के उदय से द्वीन्द्रियादि जीवों में जन्म हो।

२ बादर—जिस नाम कर्म के उदय से स्थूल शरीर हो।

३ पर्याप्त—जिस नाम कर्म के उदय से शरीरादि पर्याप्तियां पूर्ण हों।

सूत्र—भावद्रव्य नोकर्माणि कर्माणि ॥४४॥

अर्थ—कर्म तीन प्रकार के हैं—

१ भावकर्म, २ द्रव्यकर्म, ३ नोकर्म।

१ भावकर्म—जीव के राग द्वेष आदि विभाव भावों को भावकर्म कहते हैं।

२ द्रव्यकर्म—ज्ञानावरणादि कर्मों को द्रव्यकर्म कहते हैं।

३ नोकर्म—शरीरादि को नोकर्म कहते हैं।

सूत्र—चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि दर्शनावरण देशघातीनि ॥४५॥

अर्थ—दर्शनावरण देशघाती प्रकृति तीन प्रकार की है—

१ चक्षुर्दर्शनावरण, २ अचक्षुर्दर्शनावरण, ३ अवधि दर्शनावरण।

१ चक्षुर्दर्शनावरण—जिस कर्म के उदय से चक्षुः इन्द्रिय से दर्शन न हो।

२ अचक्षुर्दर्शनावरण—जिस कर्म के उदय से अचक्षु

इन्द्रिय द्वारा दर्शन न हो ।

३ अवधिदर्शनावरण—जिस कर्म के उदय से अवधि दर्शन न हो ।

सूत्र—पाणिमुक्त लाङ्गलिकगोमूत्र गतयोविग्रह वक्रगतयः ॥४६॥

अर्थ—विग्रहवक्रगति तीन प्रकार की होती है ।

१ पाणिमुक्ता, २ लाङ्गलिका, ३ गोमूत्र ।

पाणिमुक्ता—एक मोडे वाली गति को पाणिमुक्ता कहते हैं ।

२ लाङ्गलिका—दो मोड़े वाली गति को लाङ्गलिका कहते हैं ।

३ गोमूत्रिका—तीन मोड़े वाली गति को गोमूत्रिका कहते हैं ।

सूत्र—सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाजन्म ॥४७॥

अर्थ—जन्म तीन प्रकार के हैं—

१ सम्मूर्च्छनजन्म २ गर्भजन्म ३ उपपादजन्म ।

१ सम्मूर्च्छनजन्म—इधर उधर के परमाणुओं के मेल से जो जन्म होता है उसे सम्मूर्च्छजन्म कहते हैं ।

२ गर्भजन्म—माता पिता के रजोवीर्य के भेल से जो जन्म होता है उसे गर्भजन्म कहते हैं ।

३ उपापादजन्म—देव और नारकियों के उपपादशय्या

तथा उत्पत्ति स्थानों में पहुँचने पर जो जन्म होता है उसे उपपाद जन्म कहते हैं।

सूत्र—जरायुजाण्डजपोतागर्भजाः ॥४८॥

अर्थ—गर्भजन्म तीन प्रकार का होता है—

१ जरायुज २ अण्डज ३ पोत।

१ जरायुज—जेर से होने वाले जन्म को जरायुजगर्भ जन्म कहते हैं।

२ अण्डज—अण्डे से होने वाले जन्म को अण्डजगर्भ जन्म कहते हैं।

३ पोत—जिस जन्म से पैदा होते ही भागने दौड़ने लगे उसे पोत कहते हैं।

सूत्र—घताम्बुघनतनुनातानां वलयाः वातवलयाः ॥४६॥

अर्थ—वातवलय तीन प्रकार के हैं—

१ घनोदधिवातवलय २ घनवातवलय ३ तनुवातवलय।

१ घनोदधिवातवलय—में मोटी वायु के साथ साथ जल का अंश मिश्रित है, रंग गाय के मूत्र के समान है, यह वलय आठ पृथ्वी के तीन ओर और लोक के चारों ओर है।

२ घनवातवलय—घनोदधिवातवलय के अनन्तर जहाँ जहाँ घनोदधिवातवलय है वहां घनवातवलय है, इसमें घनवायु है।

३ तनुवातवलय—घनवातवलय के चारों ओर तनुवातवलय है।

सूत्र—उपदेशजातिस्मरणवेदनाः नारकसम्यग्दर्शनहेतवः ॥५०॥

अर्थ—नारकों के सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के हेतु (कारण) तीन हैं—

१ जातिस्मरण २ वेदनाभिभव ३ उपदेश।

१ जातिस्मरण—पूर्वजन्म की स्मृति अर्थात् इससे पूर्वजन्म में मैंने अमुक प्रकार से धर्माचरण किया था आदि का स्मरण करना भी सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में हेतु हो सकता है।

२ वेदनाभिभव—नरक भूमि में पहुँचने पर वहां जो तरह तरह की वेदना होती है वह भी सम्यग्दर्शन का कारण हो सकता है।

३ उपदेश—तीसरे नरक तक के नारकों को देवादिकों के उपदेशक का निमित्त मिल सकता है उस धार्मिक उपदेश का सुनना भी सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में कारण हो सकता है।

सूत्र—ब्रह्मचर्यारम्भपरिग्रह त्यागप्रतिमाः मध्यमश्रावकाः। ॥५१॥

अर्थ—मध्यमश्रावक तीन प्रकार के होते हैं। १ ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी २ आरम्भत्याग प्रतिमाधारी ३ परिग्रहत्याग-

प्रतिमाधारी ।

१ ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी— मन वचन काय कृत कारित अनुमोदना रूप नवधा जो स्त्रीमात्र का त्यागी होता है उसे ब्रह्मचर्यप्रतिमाधारी कहते हैं ।

२ आरम्भत्यागप्रतिमाधारी—मन वचन काय से कृत जो कृषि आदि आरम्भमात्र त्यागी का हो उसे आरम्भ-त्यागप्रतिमाधारी कहते हैं ।

३ परिग्रह त्यागप्रतिमाधारी—आवश्यक वस्त्र वर्तन को छोड़कर शेष परिग्रह को मनवचन काय कृत कारित अनुमोदनारूप नवप्रकार से त्याग करने वाला परिग्रह त्याग प्रतिमाधारी है ।

सूत्र—भव्याभव्यत्वानुभयानां भव्यत्वमार्गणाः ॥५२॥

अर्थ—भव्यत्वमार्गणा तीन प्रकार की है । १ भव्यत्व २ अभव्यत्व ३ अनुभय ।

१ भव्यत्व—जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र रूप पर्याय को प्राप्त कर सकता है उसे भव्यत्व कहते हैं ।

२ अभव्यत्व—जो कभी भी सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र रूप पर्याय को प्राप्त नहीं कर सकता हो उसे अभव्यत्व कहते हैं ।

३ अनुभय—भव्यत्वभाव के विपाक को प्राप्त जीवों को

अनुभय कहते हैं।

सूत्र—सञ्ज्यसंज्ञ्यनुभयानां संज्ञिमार्गणाः ॥५३॥

अर्थ—सञ्ज्ञी मार्गणा तीन प्रकार की है। १ सञ्ज्ञी २ असंज्ञी ३ अनुभय।

१ सञ्ज्ञी—मन सहित जीवों को सञ्ज्ञी कहते हैं।

२ असंज्ञी—मन रहित जीवों को असञ्ज्ञी कहते हैं।

३ अनुभय—उक्त दोनों अवस्थाओं से रहित जीवों को अनुभय कहते हैं।

सूत्र—स्पर्शनेन्द्रियकायबलायूंष्यपर्याप्तैकेन्द्रियप्राणाः ॥५४॥

अर्थ—अपर्याप्त एकेन्द्रिय जीव के तीन प्राण होते हैं। १ स्पर्शनेन्द्रिय २ कायबल ३ आयु।

१ स्पर्शनेद्रिय—स्पर्शनेन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम के होने पर जिसके द्वारा स्पर्श का ज्ञान होता है उसे स्पर्शनेन्द्रिय कहते हैं।

२ कायबल—शरीर नाना नाम कर्म के उदय से और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से जो हो उसे कायबल कहते हैं।

३ आयु—एकेन्द्रियशरीर में रोक रखने वाले तिर्यगायु कर्म के उदय को आयु कहते हैं।

सूत्र—देवलोकपाखण्डिनां मूढ़ताः ॥५५॥

अर्थ—मूढ़ता तीन प्रकार की होती है। १ देवमूढ़ता २ लोकमूढ़ता ३ पाखण्डिमूढ़ता।

१ देवमूढ़ता—किसी इष्ट वस्तु को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा से इच्छावान् होता हुआ रागी और देवी देवों की उपासना-पूजा-या भक्ति आदि करना देव मूढता है।

२ लोकमूढ़ता–गंगा यमुना आदि नदियों में स्नान कर धर्म मानना बालु पत्थर आदि के ढेर लगाने में और पर्वत आदि से गिरने में अग्नि में जलकर मरने में धर्म मानना लोक मूढ़ता है।

३ पाखण्डिमूढ़ता—आरम्भ परिग्रह सहित विषय कषायासक्त पाखण्डी साधुओं का भक्ति से आदर सत्कार करना पाखण्डिमूढ़ता है।

सूत्र--भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष्काः, भवनत्रिकाः ॥५६॥

अर्थ—भवनत्रिक कहे जाने वाले तीन निकाय के देव हैं।

१ भवन वासी २ व्यन्तर ३ ज्योतिष्क।

१ भवन वासी—जो रत्नप्रभा पृथ्वी के खर भाग में तथा पङ्क भाग में रहने वाले खास भवनों में निवास करते हैं उन्हें भवनवासी देव कहते हैं।

२ व्यन्तर—जो भवनों में तथा मध्य लोक वर्ती अनेक

आवासों में निवास करते हैं उहें व्यन्तर देव कहते हैं।

३ ज्योतिष्क—जो मध्य लोक वर्ती ज्योतिर्लोक के सूर्यचन्द्र आदि विमानों में निवास करते हैं उन्हें ज्योतिष्क देव कहते हैं।

सूत्र—कृष्ण नीलकापोता अशुभलेश्याः ॥५७॥

अर्थ—कृष्ण, नील, ओर कापोत ये तीन लेश्यायें अशुभ हैं।

१ कृष्णलेश्या—तीव्रतम संक्लेश परिणामों को कृष्ण लेश्या कहते हैं।

२ नीललेश्या—तीव्रतर संक्लेश परिणामों को नील लेश्या कहते हैं।

३ कापोतलेश्या—तीव्र संक्लेश परिणामों को कापोत लेश्या कहते हैं।

सूत्र—पीतपद्मशुक्लाः, शुभलेश्याः ॥५८॥

अर्थ—१ पीतलेश्या २ पद्मलेश्या ३ शुक्ललेश्या ये तीन शुभ लेश्यायें हैं।

१ पीतलेश्या—मन्द कषायभाव को पीतलेश्या कहते हैं।

२ पद्मलेश्या—मंदतर कषायभाव को पद्म लेश्या कहते हैं।

३ शुक्ललेश्या—मन्दतम कषायभाव को शुक्ल लेश्या

कहते हैं ।

सूत्र—कूर्मोन्नतशंखावर्तवंशपत्रीया योनयः ॥५६॥

अर्थ—योनि तीन प्रकार की है । १ कूर्मोन्नत २ शखावर्त ३ वंशपत्र ।

१ कूर्मोन्नत—कछुवे के पीठ की तरह आकार वाली योनि को कूर्मोन्नत योनि कहते हैं। तीर्थंकरादि महापुरुष इस योनि में जन्म लेते हैं ।

२ शंखावर्त—शंख के समान आवर्तमय योनि को शंखावर्त योनि कहते हैं। इस योनि में जन्म नहीं होता ।

३ वंशपत्र योनि—वंशपत्र के समान आकार वाली योनि को वंशपत्र योनि कहते हैं। इसमें सामान्य मनुष्यों का जन्म होता है ।

सूत्र—व्यवहारोद्धाराद्धाः पल्यानि ॥६०॥

अर्थ—१ व्यवहारपल्य, २ उद्धार पल्य, ३ अद्धापल्य के भेद से पल्य तीन प्रकार के होते हैं।

१ व्यवहारपल्य—दो हजार कोश लम्बे चौड़े गहरे गोल गड्ढे में उत्तम भोग भूमि के सात दिन वाले मेढ़े के कोमल रोमों के सूक्ष्म खण्डों को जिनके दूसरे भाग न हो सकें भर दिये जायें । फिर सौवर्ष में एक खण्ड निकाला जाय इस क्रम से पूरे गड्ढे के खाली होने में

जितना समय लगे उतने समय को व्यवहार पल्य कहते हैं। यह एक सत्कल्पना गम्य वस्तु है।

२ उद्धारपल्य—व्यवहार पल्य से असंख्यात गुणित काल को उद्धारपल्य कहते हैं।

३ अद्धापल्य—उद्धारपल्य से असंख्यात गुणित काल को अद्धापल्य कहते हैं।

सूत्र—सागाराश्च ॥६१॥

अर्थ—सागर भी तीन प्रकार का है। १ व्यवहार सागर २ उद्धार सागर ३ अद्धासागर।

१ व्यवहारसागर—दश कोड़ा कोड़ी व्यवहार पल्य को व्यवहार सागर कहते हैं।

२ उद्धारसागर—दश कोड़ा कोड़ी उद्धासागर पल्य को उद्धारसागर कहते हैं।

३ अद्धासागर—दश कोड़ा कोड़ी अद्धा पल्य को अद्धासागर कहते हैं।

सूत्र—सचित्ताचित्तोभयाः परिग्रहाः ॥६२॥

अर्थ—परिग्रह तीन प्रकार का है। १ सचित्त २ अचित्त ३ उभय।

१ सचित्त परिग्रह—सजीव वस्तुओं में मूर्च्छा परिणाम का होना।

२ अचित्त परिग्रह—अचेतन वस्तुओं में मूर्च्छा परिणाम

का होना।

३ उभयपरिग्रह—सचेतन अचेतन दोनों प्रकार के पदार्थों में मूर्च्छा परिणाम का होना।

सूत्र—करुरास्त्र्यङ्गनमस्काराङ्गा ॥६३॥

अर्थ—त्र्यङ्ग नमस्कार के अङ्ग तीन हैं। १ क (मस्तक) करौ दोनों हाथ।

सूत्र—अव्याप्त्यतिव्याप्त्यसम्भवाः लक्षण दोषाः ॥६४॥

अर्थ—लक्षण के तीन दोष हैं। १ अव्याप्ति २ अतिव्याप्ति ३ असम्भव।

१ अव्याप्ति—लक्ष्य के एक देश में लक्षण के रहने को अव्याप्ति कहते हैं।

२ अतिव्याप्ति—लक्ष्य से भिन्न अलक्ष्य में भी लक्षण के रहने को अतिव्याप्ति कहते हैं।

३ असम्भव—लक्ष्यमात्र में लक्षण की असम्भवता को असम्भव कहते हैं।

सूत्र—अधोमध्योर्ध्वानि ग्रैवेयाकाणि ॥६५॥

अर्थ—ग्रैवेयक तीन प्रकार के हैं। १अधोग्रैवेयक २ मध्यमग्रैवेयक ३ ऊर्ध्वग्रैवेयक।

१ अधोग्रैवेयक—ग्रैवेयक विमानों में नीचे के प्रस्तारों के विमान अधोग्रैवेयक कहलाते हैं।

२ मध्यग्रैवेयक—ग्रैवेयक विमानों में मध्य के ३

प्रस्तारों के विमान मध्यग्रैवेयक कहलाते हैं।

३ ऊर्ध्वग्रैवेयक—ग्रैवेयकविमानों में ऊर्ध्व के तीन प्रस्तारों के विमान ऊर्ध्वग्रैवेयक कहलाते हैं।

सूत्र—सुदर्शनामोघसुप्रबुद्धेन्द्रका अधोग्रैवेयकाः ॥६६॥

अर्थ—१ सुदर्शनेन्द्रक २ अमोघेन्द्रक तथा ३ प्रबुद्धेन्द्रक ये तीन अधोग्रैवेयक कहलाते हैं।

सूत्र—यशोधरसुभद्रसुविशालेन्द्रकाः मध्यग्रैवेयाः ॥६७॥

अर्थ—१ यशोधरेन्द्रक २ सुभद्रेन्द्रक ३ सुविशालेन्द्रक ये तीन मध्यग्रैवेयक कहलाते हैं।

सूत्र—सुमनससौमनस प्रीतिंकरेन्द्रकाः ऊर्ध्वग्रैवेयकाः ॥६८॥

अर्थ—सुमनसेन्द्रक २ सौमनसेन्द्रक ३ प्रीतिंकरेन्द्रक ये तीन ऊर्ध्वग्रैवेयक कहलाते हैं।

सूत्र—भवक्षेत्रोभयानुगामिनोऽनुगाम्यवधयः ॥६९॥

अर्थ—अनुगामी अवधिज्ञान तीन प्रकार का है—

१ भवानुगामी २ क्षेत्रानुगामी ३ उभयानुगामी।

१ भवानुगामी—जो जीव के साथ एक भव से दूसरे भव में जावे उस अवधिज्ञान को भवानुगामी कहते हैं।

२ क्षेत्रानुगामी—जो जीव के साथ एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जावे उस अवधिज्ञान को क्षेत्रानुगामी कहते हैं।

३ उभयानुगामी—जो जीव के साथ भव और क्षेत्र दोनों में जावे उस अवधिज्ञान को उभयानुगामी कहते हैं।

सूत्र—भवक्षेत्रोभयाननुगामिनोऽननुगाम्यवधयः ॥७०॥

अर्थ—अननुगामी अवधिज्ञान तीन प्रकार का है—

१ भवाननुगामी २ क्षेत्राननुगामी ३ उभयाननुगामी ।

१ भवाननुगामी—जो अवधिज्ञान जीव के साथ दूसरे भव में न जावे उसे भवाननुगामी अवधिज्ञान कहते हैं ।

२ क्षेत्राननुगामी—जो अवधिज्ञान जीव के साथ न जावे उसे क्षेत्राननुगामी अवधिज्ञान कहते हैं ।

३ उभयाननुगामी—जो अवधिज्ञान जीव के साथ भव तथा क्षेत्र दोनों में जीव के साथ न जावे उसे उभयाननुगामी अवधिज्ञान कहते हैं ।

सूत्र—विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धितोऽनुपलब्धि-हेतवः ॥७१॥

अर्थ—अनुपलब्धिहेतु तीन प्रकार का है—

१ विरुद्धकार्यानुपलब्धि २ विरुद्धकारणानुपलब्धि ३ विरुद्ध स्वाभावानुपलब्धि ।

१ विरुद्धकार्यानुपलब्धि—साध्य से विरुद्ध के कार्य की अनुपलब्धिरूप हेतु को विरुद्धकार्यानुपलब्धि कहते हैं ।

२ विरुद्धकारणानुपलब्धि—साध्य से विरुद्ध के कारण की अनुपलब्धिरूप हेतु को विरुद्ध कारणानुपलब्धि कहते हैं ।

३ विरुद्धस्वभावानुपलब्धि—साध्य से विरुद्ध स्वभाव की अनुपलब्धि को विरुद्ध स्वभावानुपलब्धि कहते हैं ।

सूत्र—साध्यसाधनोभयविकला अन्वय दृष्टान्ताभासाः ॥७२॥

अर्थ—१ साध्यविकलान्वयदृष्टान्ताभासः २ साधन विकला-न्वयदृष्टान्ताभास ३ उभयविकलान्वयदृष्टान्ताभास के भेद से अन्वय दृष्टान्ताभास तीन प्रकार का है।

१ साध्यविकल—जिस अन्वय दृष्टान्त में साधन तो पाया जाये परन्तु साध्य न पाया जावे उसे साध्यविकला-न्वयदृष्टान्ताभास कहते हैं।

२ साधनविकल—जिस अन्वय दृष्टान्त में साध्य तो पाया जावे परन्तु साधन न पाया जावें उसे साधन दृष्टान्ताभास कहते हैं।

३ उभयविकल—जिस अन्वय दृष्टान्त में साध्य और साधन दोनों न पाये जायें उसे उभयविकलदृष्टान्ताभास कहते हैं।

सूत्र—शब्द समभिरुढैवम्भूताः शब्दनयाः ॥७३॥

अर्थ—शब्द नय के तीन भेद हैं। १ शब्द २ समभिरुढ ३ एवंभूत।

१ शब्दनय—जो लिङ्ग संख्या, साधन-कारक, काल आदि के व्यभिचार को दूर करता हुआ भेद रूप से अर्थ को ग्रहण करें।

२ समभिरूढ़नय—एक शब्द के अनेक अर्थ वाक्य होने पर भी जो किसी रूढ़ अर्थ को ग्रहण करे।

३ एवम्भूतनय—जिस शब्द का जो अर्थ हो उसही क्रिया रूप परिणत अर्थ को जो ग्रहण करे।

सूत्र—प्रमाणार्थमध्यमपदानि पदानि ॥७४॥

अर्थ—पद तीन प्रकार के हैं– १ प्रमाणपद २ अर्थपद ३ मध्यमपद।

१ प्रमाणपद—श्लोक छन्दादि के पदों (चरणों) के प्रमाण को प्रमाण पद कहते हैं।

२ अर्थपद—जिनपदों से किसी प्रयोजन का बोध होवे अर्थपद कहलाते हैं।

३ मध्यमपद—१६३४८३०७८८८ प्रमाण अपुनरुक्त अक्षरों का समूह मध्यम पद है।

सूत्र—अल्पतर भुजाकाएवस्थिताः वन्धाः ॥७५॥

अर्थ—वन्ध तीन प्रकार का है। १ अल्पतरवन्ध २ भुजाकार वन्ध ३ अवस्थितवन्ध।

१ अल्पतरवन्ध—अधिक प्रकृतियों के वन्ध के पश्चात् कर्म प्रकृतियों के वन्ध को अल्पतर वन्ध कहते हैं।

२ भुजाकार वन्ध—कर्म प्रकृतियों के वन्ध के बाद अधिक प्रकृतियों के वन्ध को भुजाकार वन्ध कहते हैं।

३ अवस्थितवन्ध—जितनी संख्या में प्रकृतियों का वन्ध हो रहा था बाद भी उतनी संख्या का वन्ध होना अवस्थितवन्ध है।

सूत्र--पूर्वपश्चाद्यथा तथानुपूर्विण आनुपूर्विणः ।।७६।।

अर्थ--आनुपूर्वी के तीन भेद हैं। १ पूर्वानुपूर्वी २ पश्चादानु पूर्वी ३ यथातथानुपूर्वी।

१ पूर्वानुपूर्वी—सीधे क्रम से वर्णन करना।

२ पश्चादानुपूर्वी—उलटे क्रम से वर्णन करना।

३ यथातथानुर्वी—क्रम का ध्यान न रखते हुए इच्छानुसार वर्णन करना।

सूत्र--गार्हपत्याद्य यनीदयक्षिणावर्ता आहयनीयकुण्डाः ।।७७।।

अर्थ—आहयनीयकुण्ड तीन प्रकार के हैं।

१ गार्हपत्यकुण्ड २ आह्वयनीयकुण्ड ३ दक्षिणावर्त।

१ गार्हपत्य-इस कुण्ड में तीर्थंकर की निर्वाणाग्नि की स्थापना होती है इसका आकार चौखूंटा है।

२ आह्वयनीय-इस कुण्ड में गणधरों के निर्वाणाग्नि की स्थापना होती है। इसका आकार त्रिकोण है।

३ दक्षिणावर्त—इस कुण्ड में सामान्य केवली के निर्वाणाग्नि की स्थापना होती है। इसका आकार अर्ध-चन्द्र तुल्य है।

सूत्र—उदयानुदयोदयव्युच्छित्तीनां प्रतिपादिकोदयत्रिभंगी ।।७८।।

अर्थ-१ उदयत्रिभंगी २ उदय ३ अनुदय और व्युच्छित्ति

इन तीन की प्रतिपादन करने वाली है।

१ उदय—कर्मों के विपाक को अर्थात् फल देने को उदय कहते है।

२ अनुदय—कर्मों के सत्त्व में रहते हुए भी फल न देने को अनुदय कहते हैं।

३ उदयव्युच्छित्ति—आगे के गुणस्थानों में उदय के अभाव को उदयव्युच्छित्ति कहते हैं।

सूत्र—बन्धाबन्धबन्धव्युच्छित्तीनांबन्ध त्रिभङ्गी ॥७९॥

अर्थ—बन्ध त्रिभङ्गी १ बन्ध २ अबन्ध ३ बन्धव्युच्छित्ति इन तीन का प्रतिपादन करने वाली है।

१ बन्ध—आत्म प्रदेशों के साथ कर्मों के बन्धने को बन्ध कहते हैं।

२ अबन्ध—कर्मों का आत्म प्रदेशों से नहीं बन्धने को अबन्ध कहते हैं।

३ बन्धव्युच्छित्ति आगे के गुणस्थानों में बन्ध के अभाव को बन्धव्युच्छित्ति कहते हैं।

सूत्र—सत्वासत्वसत्व व्युच्छित्तीनांसत्वत्रिभंगी ॥८०॥

अर्थ—सत्वत्रिभङ्गी १ सत्व २ असत्व और सत्वव्युच्छित्ति इन तीन का प्रतिपादन करने वाली है।

१ सत्त्व—कर्मों के सत्ता में रहने को सत्व कहते हैं।

२ असत्व—कर्मों के सत्ता में होने को असत्व कहते

हैं ।

३ सत्वव्युच्छित्ति–आगे के गुणस्थानों में सत्व के न रहने को सत्वव्युच्छित्ति कहते हैं ।

सूत्र—रसर्द्धिसातानां गारवाः ॥८१॥

अर्थ—गारव तीन प्रकार के होते हैं । १ रसगारव २ ऋद्धिगारव ३ सात गारव ।

१ रसगारव—विशिष्ट भोजनादि प्राप्त होते रहने पर गर्व होना–रस गारव हैं ।

२ ऋद्धि गारव–किसी ऋद्धि विशेष की प्राप्ति होने पर गर्व होना ऋद्धि गारव ।

३ सातगारव—सन्मान सेवा आदि साता होते रहने पर गर्व होना सातगारव है ।

सूत्र—मद्यमांसमधूनि मकाराः ॥८२॥

अर्थ—१ मद्य २ मांस ३ मधु ये तीन मकार हैं । इन तीनों का प्रथम अक्षर मकार है इसलिये इन्हें मकार कहा जाता है ।

१ मद्य—बहुत से मादक शक्ति प्रधान पदार्थों को सड़ा गला कर जो हेय पेय पदार्थ तैयार होता है उसे मद्य कहते हैं ।

२ मांस—दोइन्द्रिय जीवों के मृत या मारित शरीर से जो तैयार किया जाता है उसे मांस कहते हैं ।

३ मधु—मधुमक्खियों के छत्ते को निचोड़ कर जो तैयार किया जाता है उसे मधु कहते हैं वह एक प्रकार से मधुमक्खियों की कै (वमन) ही है।

सूत्र—प्रारब्धघटमाननिष्पन्न योगाः ध्यानाभ्यासाः ॥८३॥

अर्थ—१ प्रारब्ध योग २ घटमान योग ३ निष्पन्न योग ये तीन ध्यानाभ्यास हैं।

१ प्रारब्ध—ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था के अभ्यास को प्रारब्ध कहते हैं।

२ घटमान—ध्यान की माध्यमिक अवस्था के सफल अभ्यास को घटमान कहते हैं।

३ निष्पन्न—ध्यान की चरम सीमा पर पहुँचाने वाले अभ्यास को निष्पन्न कहते हैं।

सूत्र—उपपादैकान्तानुवृद्धिपरिणामानां योगस्थानानि ॥८४॥

अर्थ—योगस्थान तीन हैं। १ उपपाद योगस्थान २ एकान्तानु वृद्धि योगस्थान ३ परिणाम योग स्थान।

१ उपपाद योगस्थान—जन्म के प्रथम समय में होने वाले योगस्थान को उपपाद योगस्थान कहते हैं।

२ एकान्तानुवृद्धियोगस्थान—जो उपपाद योगस्थान के दूसरे समय से लेकर बढ़ता हुआ शरीरपर्याप्ति के पूर्ण होने के पहले समय तक हो उसे एकान्तानुवृद्धि योग-

स्थान भी कहते हैं।

३ परिणाम योगस्थान—जो शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने के पहले समय से लेकर आयुपर्यन्त हो। यहाँ योगस्थान कभी घटते कभी बढ़ते कभी एक से रहते हैं। इनको घोटमान योगस्थान भी कहते हैं।

नोट—योगस्थान योगशक्ति के परिणामन के दर्जों को कहते हैं।

सूत्र—खरपङ्काब्बहुलभागा रत्न प्रमाभागाः ॥८५॥

अर्थ—रत्नप्रभा पृथिवी के तीन भाग हैं।

१ खरभाग २ पङ्कभाग ३ अब्बहुलभाग।

१ खरभाग—सोलह हजार योजन मोटा है जिसके अन्तर्गत सोलह पृथिवियाँ हैं। असुर और राक्षसों को छोड़कर शेष भवनवासी व व्यन्तर इन्हीं पृथिवियों में ऊपर नीचे के एक एक भाग को छोड़कर शेष भागों में रहते हैं।

२ पङ्कभाग—यह ८४ चौरासी हजार योजन मोटा है इसमें असुर जाति के भवनवासी तथा राक्षस जाति के व्यन्तर रहते हैं।

३ अब्बहुलभाग—यह ८० अस्सी हजार योजन मोटा हैं इसीमें प्रथम नरक के तीस लाख बिल हैं।

सूत्र—साधितकुल जातिविद्या, विद्याधर विद्याः ॥८६॥

अर्थ—विद्याधरों की विद्यायें तीन प्रकार की हैं।
१ साधित विद्या २ कुल विद्या ३ जातिविद्या।
१ साधितविद्या—सिद्ध की जाने वाली विद्या।
२ कुलविद्या—पितृपक्ष की विद्या (जो पितृ पक्ष से मिले।)
३ जातिविद्या—मातृ पक्ष की विद्या (जो मातृ पक्ष से मिले।)

सूत्र—सूत्रार्थोभययत्नाः सूत्रोयसम्यदः ॥८७॥

अर्थ—सूत्रोय सम्यत् के तीन भेद हैं। १ सूत्रयत्न २ अर्थयत्न ३ उभय यत्न।
१ सूत्रयत्न—सूत्रों के सीखने का यत्न करना।
२ अर्थयत्न—सूत्रों के अर्थ के लिये यत्न करना।
३ उभययत्न दोनों के लिये यत्न करना।

सूत्र—लौकिकसैद्धान्तिकाध्यात्मिकानि शास्त्राणि ॥८८॥

अर्थ—शास्त्र तीन प्रकार के हैं। १ लौकिकशास्त्र २ सैद्धान्तिक शास्त्र ३ आध्यात्मिक शास्त्र।
१ लौकिकशास्त्र—लोक व्यवहार प्रमुख व्याकरण गणित आदि शास्त्र।
२ सैद्धान्तिकशास्त्र—वस्तु सिद्धान्त को प्रतिपादन करने वाले शास्त्र।
३ आध्यात्मिक शास्त्र—आत्मतत्त्व का विवेचन करने

वाले शास्त्र ।

सूत्र—मायामिथ्यानिदानानि शल्यानि ॥८९॥

अर्थ—शल्य के तीन भेद हैं ।

१ मायाशल्य २ मिथ्याशल्य ३ निदानशल्य ।

१ मायाशल्य—छल कपट के भाव को मायाशल्य कहते हैं

१ मिथ्याशल्य—अतत्त्व श्रद्धानरूप भाव को मिथ्याशल्य कहते हैं ।

३ निदानशल्य-अगामी काल में भोगों की इच्छा रखना ।

सूत्र—लब्धिर्निर्वृत्तिस्थापनाक्षराण्यक्षराणि ॥९०॥

अर्थ—अक्षर तीन प्रकार के हैं ।

१ लब्ध्यक्षर २ निर्वृत्त्यक्षर ३ स्थापनाक्षर ।

लब्ध्यक्षर—सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीव के उत्पन्न होने के पहिले समय में होने वाला सर्वजघन्य श्रुतज्ञान (लब्धिश्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम, अक्षर-अविनाशी)

२ निर्वृत्त्यक्षर—जो अक्षर कण्ठ ओष्ठ तालु आदि के प्रयत्न से पैदा हो जैसे अकरादि स्वर ककारादि व्यञ्जन ।

३ स्थापनाक्षर—शब्द की लिपि करने वाला जो अक्षर है वह स्थापनाक्षर है ।

सूत्र—प्रत्यनूभयसारिण अनुसार्यृद्धयः ॥९१॥

अर्थ—अनुसारी ऋद्धि तीन प्रकार की है।

१ प्रतिसारी २ अनुसारी ३ उभयसारी ।

१ प्रतिसारी—बीजों के पदों में रहने वाले चिन्हों के द्वारा उस बीज पर के नीचे नीचे के पदों को जान लेना।

२ अनुसारी—बीज पद के ऊपर ऊपर के पदों को जान लेना।

३ उभयसारी—दोनों ओर रहने वाले पदों को नियमित व अनियमित रूप से जान लेना।

सूत्र—भक्तप्रत्याख्यानेङ्गिनी प्रायोपगमनानि समाधिमरणानि। ॥६२॥

अर्थ—समाधिमरण तीन प्रकार का है।

१ भक्तप्रत्याख्यान २ इंगिनी ३ प्रायोपगमन।

१ भक्तप्रत्याख्यान—भोजन मात्र को त्याग कर देना।

२ इंगिनी—जो साधु संघ से निकल कर एकान्त में स्वाधीनता से मरण करे उसे इंगिनी मरण कहते हैं।

३ प्रायोपगमन—जो साधु अपने रोगादि के प्रतिकार को न तो स्वयं करे और न दूसरे से करावे किन्तु सावधानी से प्राणत्याग करे।

सूत्र—संग्रहव्यवहारजु सूत्रनय। अर्थनयाः ॥६३॥

अर्थ—अर्थनय के तीन भेद हैं।

१ संग्रहनय २ व्यवहारनय ३ ऋजुसूत्रनय।

१ संग्रहनय—अपनी जाति का विरोध न करते हुए जो अनेक विषयों को एक रूप से ग्रहण करे।

२ व्यवहारनय—संग्रहनय से ग्रहण किये हुए पदार्थों का विधि पूर्वक व्यवहार करते हुए जानने वाले नय को व्यवहार नय कहते हैं।

३ ऋजुसूत्रनय—वर्तमान पर्याय को विषय करने वाले नय को ऋजुसूत्रनय कहते हैं।

सूत्र—हिमवार्दलिजल्लकयोमघवीन्द्रकविलानि ॥६४॥

अर्थ—१ हिम २ वार्दलि ३ लल्लकी। ये तीन मघवी पृथिवी के इन्द्रक विल हैं।

सूत्र—भवन, भवनपुर, भवन पुरावासकाः व्यन्तरनिलय प्रकाराः ॥६५॥

अर्थ—व्यन्तरों के निवास स्थान तीन प्रकार के हैं।

१ भवन २ भवनपुर, भवनपुरावासक।

सूत्र—लवणकालोदधिस्वयम्भूरमणसमुद्रा जलचरजीव समुद्राः ॥६६॥

अर्थ—१ लवणसमुद्र २ कालोदधिसमुद्र ३ स्वयम्भूरमण समुद्र ये तीन समुद्र जलचर जीवों के सहित हैं।

सूत्र—गाधह्रदपंकवत्यः सीतानद्युत्तरतीरगा, विभंगनद्यः ॥६७॥

अर्थ—१ गाधवती २ ह्रदवती ३ पंकवती ये तीन सीता नदी के उत्तर तीर पर बहने वाली विभंग नदियां हैं।

सूत्र—तप्त मत्तोन्मत्तजलाः सीता दक्षिणतीरगाः ॥६८॥

अर्थ—१ तप्तजला, मत्तजला; उन्मत्तजला ये तीन सीता नदी के दक्षिण तीर पर बहने वाली विभङ्ग नदियां हैं ।

सूत्र— क्षीरोदासीतोदास्रोतोवाहिन्यःसीतोदादक्षिणदिग्गाः ॥९९॥

अर्थ—१ क्षीरोदा २ सीतोदा ३ स्रोतोवाहिनी ये तीन सीतोदा नदी के दक्षिण तीर पर बहने वाली विभङ्ग नदियां हैं ।

सूत्र—गम्भीरफेनोर्मिमालिन्यः सीतोदोत्तरवाहिन्यः ॥१००॥

अर्थ—१ गम्भीर मालिनी २ फेन मालिनी ३ ऊर्मि-मालिनी ये तीन सीतोदा नदी के उत्तर तीर पर बहने वाली विभङ्ग नदियां है ।

सूत्र— काकिणीचूड़ामणिचर्मरत्नानि श्रीगृहभावीनि ॥१०१॥

अर्थ—१ काकिणरत्न २ चूड़ामणिरत्न ३ चरमरत्न ये तीन रत्न श्री गृह में होने वाले रत्न हैं ।

सूत्र—मनोवचनकायवलानां वलर्द्धयः ॥१०२॥

अर्थ—वलऋद्धियां तीन हैं । १ मनोवल ऋद्धि २ वचन वलऋद्धि ३ कायवलऋद्धि ।

१ मनोवलऋद्धि—जिसके प्रकट होने पर मन से समस्त द्वादशांग का अल्प समय में चिन्तवन कर सकें ऐसा मनोवल प्राप्त हो ।

२ वचनबलऋद्धि—जिसऋद्धि के प्राप्त होने पर समस्त द्वादशांग का अल्प समय में पाठ कर सकें ऐसा वचन प्राप्त हो।

३ कायबलऋद्धि—जिस ऋद्धि के प्राप्त होने पर ऐसा कायबल प्राप्त हो जो।

सूत्र—ज्ञायकशरीरभावितद्वयतिरिक्तानि नो आगमद्रव्य-कर्माणि ॥१०३॥

अर्थ—नो आगमद्रव्य कर्म तीन प्रकार का है। १ ज्ञायक शरीर २ भावि ३ तद्व्यतिरिक्त।

१ ज्ञायकशरीर—कर्म स्वरूप के ज्ञाता के शरीर को ज्ञायक कहते हैं।

२ भावि—कर्म स्वरूप का ज्ञाता जो आगे होगा।

३ तद्व्यतिरिक्त—ज्ञानावरणादि स्वरूप परिणमता हुआ पुद्गल तथा उससे भिन्न जो नोकर्मद्रव्य वे दोनों।

सूत्र—भूतभाविवर्तमानानि ज्ञायक शरीराणि ॥१०४॥

अर्थ—ज्ञायक शरीर तीन प्रकार का है। १ भूत २ भावि ३ वर्तमान।

१ भूतशरीर—जो पहले ज्ञाता का शरीर हो चुका।

२ भाविशरीर—जो आगे ज्ञाता का शरीर होगा।

३ वर्तमानशरीर—जो ज्ञाता का शरीर विद्यमान है।

सूत्र—च्युतच्यावितत्यक्तानि भूतज्ञायकशरीराणि ॥१०५॥

अर्थ—भूतज्ञायक शरीर के तीन भेद हैं। १ च्युत २ च्यावित ३ त्यक्त।

१ च्युतशरीर—जो दूसरे किसी कारण के बिना आयु के पूर्ण होने पर जो नष्ट हो चुका हो। यह च्युत शरीर कदलीघात और सन्यास दोनों से रहित है।

२ च्यावित शरीर—जो ज्ञायक का भूत शरीर कदलीघात सहित नष्ट हो गया हो। परन्तु सन्यास विधि से रहित हो।

३ त्यक्त—जो कदलीघात सहित अथवा कदली घात रहित सन्यास रूप परिणामों से शरीर छोड़ दिया हो।

सूत्र—भक्तप्रतिज्ञेंगिनीप्रायोग्यविधित्यक्तानि त्यक्त शरीराणि ॥१०६॥

अर्थ—त्यक्त शरीर तीन प्रकार का है। १ भक्त प्रतिज्ञा विधि त्यक्त २ इङ्गिनीविधित्यक्त ३ प्रायोग्य विधि-त्यक्त।

१ भक्त प्रतिज्ञाविधि त्यक्त—जो शरीर भक्त प्रतिज्ञा की विधि से छोड़ा गया हो।

२ इङ्गिनीविधित्यक्त—जो शरीर इङ्गिनीविधि से छोड़ा गया हो।

३ प्रायोग्यविधित्यक्त – जो शरीर प्रायोग्य विधि से छोड़ा गया हो।

सूत्र—पुलाकवकुशकुशीलाः सरागमुनयः ॥१०७॥

अर्थ—सराग मुनि तीन प्रकार के हैं।

१ पुलाक २ वकुश ३ कुशील।

१ पुलाक मुनि—जिनके कभी कभी मूल गुणों तक भी विराधना हो जाये।

२ वकुशमुनि—जिनके कभी उत्तर गुणों में विराधना हो जाय।

३ कुशीलमुनि—जिनके मनोज्ञ उप करणों में अनुराग हो। अथवा संज्वलन मान कषाय हो।

सूत्र—अष्टकसप्तकचतुष्ककर्मोदयतो कर्मोदयतो मूल स्थानानि ॥१०८॥

अर्थ—मूलकर्मोदयस्थान तीन हैं। १ अष्टों कर्मोदय रूप २ सातकर्मों के उदय रूप ३ चारकर्मों के उदय रूप।

१ अष्टक कर्मोदयरूप २ सप्तक कर्मोदय रूप ३ चतुष्क कर्मोदय रूप।

१ अष्टक कर्मोदयरूप—जहां आठों कर्मों का उदय पाया जाय। अर्थात् प्रथम गुणस्थान से दशवें गुण स्थान तक।

२ सप्तककर्मोदयरूप—जहां सातों कर्मों का उदय पाया जाये जैसे ग्यारहवां तथा बारहवां गुणस्थान।

३ चतुष्ककर्मोदयरूप—जहां चारों कर्मों का उदय पाया

जाये ।

सूत्र—नवक षटक चतुष्काणां वन्धतो दर्शनावरणस्य वन्ध स्थानानि ॥१०६॥

अर्थ—दर्शननावरण के वन्ध स्थान तीन है १ नवक प्रकृति रूप २ षट्क प्रकृति रूप । ३ चतुष्कप्रकृति रूप ।

१ नवक प्रकृतिरूप—जहाँ दर्शनावरण की नवप्रकृतियों का वन्ध पाया जाये । अर्थात् प्रथम और द्वितीयगुण स्थान ।

२ षट्कप्रकृतिरूप—जहां दर्शनावरण की ६ छहप्रकृतियों का ही वन्ध पाया जाये जैसे तीसरे गुणस्थान से अपूर्व-करणगुणस्थान के पहले भाग तक ।

३ चतुष्कप्रकृतिरूप—जहां दर्शनावरण की चार प्रकृतियों का ही वन्ध पाया जाये जैसे अपूर्वकरणके दूसरे भाग से दशवें गुणस्थान के अन्त समय तक ।

सूत्र—सत्वतः सत्वस्थानानि ॥११०॥

अर्थ—दर्शनावरण के सत्व स्थान तीन हैं ।

१ नवकप्रकृतिरूप २ षट्कप्रकृतिरूप ३ चतुष्कप्रकृतिरूप ।

१ नवकप्रकृतिरूप—जहां दर्शनावरण की नवप्रकृतियों का सत्व पाया जाय जैसे मिथ्यात्वगुणस्थान से उपशान्त कषायगुणस्थान तक और क्षपकश्रेणि में अनिवृत्तिकरण

के पहले भाग तक।

२ षट्कप्रकृतिरूप–जहाँ दर्शनावरण की छह प्रकृतियों का सत्व पाया जाये जैसे क्षपकश्रेणि में अनिवृत्तिकरण के दूसरे भाग से क्षीणकषायगुणस्थान के द्विचरम समय तक।

१ चतुष्कप्रकृतिरूप — जहां दर्शनावरण की चारों प्रकृतियों का सत्व पाया जाये। जैसे क्षीणकषाय गुण स्थान के अन्तिम समय तक।

सूत्र—एकविकलसकलेन्द्रियां जीवसमासाः ॥११२॥

अर्थ—जीवसमास तीन प्रकार का है।

१ एकेन्द्रियजीवसमास २ विकलेन्द्रियजीव समास ३ सकलेन्द्रियजीवसमास।

१ एकेन्द्रियजीवसमास – केवल स्पर्शन इन्द्रियवाले जीवों का समूह।

२ विकलेन्द्रिय जीवसमास – दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रियवाले जीवों का समुदाय।

३ सकलेन्द्रिय जीवसमास–पांचों इन्द्रियोंवाले जीवों का समूह।

सूत्र—पर्याप्त निवृत्त्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्ताश्च ॥११३॥

अर्थ—१ पर्याप्त २ निवृत्त्यपर्याप्त ३ लब्ध्यपर्याप्त रूप से भी जीव समास तीन प्रकार का है।

१ पर्याप्त जीवसमास–पर्याप्त जीवों का समूह ।

२ निर्वृत्यपर्याप्त जीवसमास–जहां पर्याप्तियां पूर्ण तो न हुई हों लेकिन नियम से पूर्ण होने वाली हों ऐसे जीवों का समूह ।

३ लब्ध्यपर्याप्त जीवसमास—जहां पर्याप्तिपूर्ण होती ही नहीं और मरण हो जाता है ऐसे जीवों का समूह ।

सूत्र— सञ्ज्वलनक्रोधमानमाया मोहनीयत्रिकवन्धस्थान प्रकृतयः ॥११४॥

अर्थ—मोहनीयकर्म के तीन प्रकृति वाले वन्धस्थान की प्रकृतियां तीन हैं ।

१ सञ्ज्वलनक्रोध २ सञ्ज्वलनमान ३ सञ्ज्वलनमाया ।

सूत्र—सञ्ज्वलनक्रोधमान माया मोहनीयत्रिकसत्वस्थान प्रकृतयः ॥११५ ।

अर्थ—१ सञ्ज्वलनक्रोध २ सञ्ज्वलनमान ३ सञ्ज्वलन माया ये तीन प्रकृतियाँ मोहनीयकर्म के तीन प्रकृतिवाले सत्वस्थान की प्रकृतियां हैं ।

सूत्र–अमूर्ताचेतनत्वे गतिहेतुत्वेन सह धर्मस्यविशेष गुणाः ॥ ११६ ॥

अर्थ— गतिहेतुत्व रूप गुण के साथ अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये दो गुण धर्मद्रव्य के विशेष गुण हैं ।

सूत्र– स्थितिहेतुत्वेनसहाधर्मस्य ॥११७॥

अर्थ—स्थितिहेतुत्वरूपगुण के साथ अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये दो गुण अधर्मद्रव्य के विशेष गुण हैं।

सूत्र–अवगाहनाहेतुत्वेनाकाशस्य ॥११८॥

अर्थ–अवगाहनारूप गुण केसाथ अमूर्तत्व और अचेतनत्वमे दो गुण आकाश द्रव्य के विशेषगुण हैं।

सूत्र–वर्तनाहेतुत्वेन कालस्य ॥११९॥

अर्थ—वर्तनाहेतुरूपगुण के साथ अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये दो गुण कालद्रव्य के विशेष गुण हैं।

सूत्र—ज्ञानकर्म कर्मफलानां चेतनाः ॥१२०॥

अर्थ—चेतना के तीन भेद हैं।

१ ज्ञानचेतना २ कर्मचेतना ३ कर्मफलचेतना।

१ सम्याग्दृष्टि की चेतना को ज्ञान चेतना कहते हैं।

२ कर्मचेतना—ज्ञान के सिवाय अन्य भावों में कर्तृत्व बुद्धि का होना कर्मचेतना है।

३ कर्मफलचेतना—ज्ञान के सिवाय अन्य भावों के फल में भोक्तृत्व बुद्धि का होना कर्मफल चेतना है।

सूत्र—अतीतवर्तमानागता=उपभोगाः ॥१२१॥

अर्थ—उपभोग के तीन भेद हैं।

१ अतीत २ वर्तमान ३ अनागत।

१ अतीत उपभोग—जो भोगा जा चुका है।

२ वर्तमानोपभोग—जो भोगा जा रहा है।

३ अनागतोपभोग—जो भोगा जायगा।

सूत्र—निकटदूरातिदूरभव्या भव्याः॥ १२२॥

अर्थ—भव्य के तीन भेद हैं।

१ निकटभव्य, २ दूरभव्य ३ अतिदूरभव्य।

१ निकटभव्य—जो नियम से शीघ्र ही मुक्ति पाने की योग्यता रखता है।

२ दूरभव्य—जो नियम से मोक्ष पाने की योग्यता रखता है।

३ अतिदूरभव्य—जिसमें मुक्ति पाने की योग्यता है ही नहीं।

सूत्र—सद्भूतासद्भूतोपचरितासद्भूतव्यवहारा उपनयाः ॥ १२३ ॥

अर्थ—उपनय के तीन भेद हैं।

१ सद्भूतव्यवहार २ असद्भूतव्यवहार ३ उपचरितासद्भूतव्यवहार।

१ सद्भूतव्यवहार—वस्तुगतधर्म का परद्रव्य के निमित्त से जो व्यवहार होता है उसे सद्भूतव्यवहार कहते हैं जैसे जीव के मतिज्ञानादि।

२ असद्भूतव्यवहार—जो वस्तुगत तो न हो लेकिन पर द्रव्य के निमित्त से व्यवहार में आता हो उसे असद्-

भूतव्यवहार कहते हैं जैसे जीव के रागद्वेषादि ।

३ उपचरितासद्भूतव्यवहार--एक द्रव्य को परद्रव्य के निमित्त से पर रूप व्यवहार में लाने को उपचरितासद्भूतव्यवहार कहते हैं जैसे घी के निमित्त से घी के घड़े को घी का घड़ा कहना ।

सूत्र—भूतभाविवर्तमाननिगमा नैगमा ॥१२४॥

अर्थ—नैगमनय के तीन भेद हैं ।

१ भूतनिगम २ भाविनिगम ३ वर्तमान निगम ।

१ भूतनिगम—जिस नय से भूत की बात में वर्तमान की मान्यता हो जैसे आज वीरजन्म दिन है ।

२ भाविनिगम—जो आगे होने वाली हो उसे वर्तमान में कहना यह भाविनैगमनय का विषय है, जैसे युवराज को राजा कहना ।

३ वर्तमाननिगम—जो कार्य हो रहा हो पूर्ण न हुआ हो तब भी कहना पूर्ण हो गया यह वर्तमान नैगमनय का विषय है, जैसे चांवल धोने वाले से कोई पूछे कि क्या कर रहे हो तब वह उत्तर देता है कि भात बना रहा हूँ

सूत्र—सजातिविजाति उभयासद्भूताः असद्भूतव्यवहाराः ॥१२५॥

अर्थ—असद्भूतव्यवहार के तीन भेद हैं ।

१ स्वजात्यसद्भूत २ विजात्यसद्भूत ३ उभयासद्भूत

१ स्वजात्यसद्भूत—सजाति द्रव्य गुण पर्याय में द्रव्य गुण पर्याय का जिस नय से आरोप हो जैसे ज्ञान को आत्मा कहना।

२ विजात्य सद्भूत—जिस नय से एक द्रव्य गुण या पर्याय का दूसरे द्रव्य गुण या पर्याय में आरोप हो, जैसे मतिज्ञान को मूर्तिक कहना।

३ उभयासद्भूतव्यवहारनय—जिस नय से सजाति में विजाति के द्रव्य गुण पर्याय का परस्पर आरोप हो। जैसे जीव को अमूर्तिक कहना।

सूत्र—सजातिविजात्युभयोपचरिता उपचरितासद्भूतव्यवहाराः। ॥१२६॥

अर्थ—उपचरितासद्भूतव्यवहार के तीन भेद हैं।

१ स्वजात्युपचरित असभूद्तव्यवहारनय—भिन्न सजाति पदार्थों को अपनाना। जैसे मित्र पुत्र आदि मेरे हैं ऐसा कहना।

२ विजात्युपचरित—सर्वथा भिन्न विजाति द्रव्य को अपना मानना। जैसे ये वस्त्र मकान मेरे हैं ऐसा कहना।

३ उभयोपचरित असद्भूतव्यवहारनय—भिन्न सजाति विजाति पदार्थों का अपनाना। जैसे यह नगर मेरा है ऐसा कहना।

सूत्र—पाक्षिक नैष्ठिकसाधका: श्रावका: ॥१२७॥

अर्थ—श्रावक तीन प्रकारत के हैं।

१ पाक्षिक २ नैष्ठिक ३ साधक।

१ पाक्षिक—जो सम्यग्दर्शन से पवित्र हो, संसार और शरीर के भोगों से विरक्त हो, पञ्च परमेष्ठी के चरणों को ही शरण रूप से मानता हो उसे पाक्षिक कहते हैं।

२ नैष्ठिक—जो पांच अणुव्रत, तीनगुणव्रत, चार शिक्षा-व्रत इन बारह व्रतों को निरतिचार पालता हो उसे नैष्ठिक कहते हैं।

३ साधक—अन्तिम समय में समाधिपूर्वकमरण करके आत्मा साधनाकरने वाले को साधक कहते हैं।

सूत्र— आक्षेपिणीसंवेदिनीनिर्वेदिन्यः सन्यस्तक्षपकश्रुति योग्य कथाः ॥१२८॥

अर्थ—सन्यस्तक्षपक के सुनने योग्य कथायें तीन हैं।

१ आक्षेपिणी २ संवेदिनी ३ निर्वेदिनी।

१ आक्षेपिणी—धर्म का स्वरूप बताने वाली कथा।

२ संवेदिनी—धर्मानुराग बढ़ाने वाली कथा।

३ निर्वेदिनी—जो आत्मा को संसार और शरीरादि से वैराग्य उत्पन्न करादे ऐसी कथा।

सूत्र—प्रीतिभयशोकाः जागरणहेतवः ॥१२६॥

अर्थ—जागरण के कारण तीन हैं।

१ प्रीति २ भय ३ शोक

१ प्रीति—अनुरागरूप परिणाम ।

२ भय—भयरूप परिणाम ।

३ शोक—इष्ट वियोग के निमित्त से उत्पन्न हुए दुःख रूप परिणाम ।

सूत्र—सावद्यात्पसावद्यासावद्यकर्माणः कर्मार्याः ॥१३०॥

अर्थ—कर्मार्यों के तीन भेद हैं ।

१ सावद्यकर्मार्य २ अल्पसावद्यकर्मार्य ३ असावद्यकर्मार्य ।

१ सावद्यकर्मार्य—पापकर्मकरके आजीविका करने वाले सावद्यकर्मार्य हैं ।

२ अल्पसावद्यकर्मार्य—थोड़ा पापकर्म करके आजीविका करने वाले अल्पसावद्यकर्मार्य हैं ।

३ असावद्यकर्मार्य—जो पुण्यकर्म करके आजीवि का का साधन करते हैं वे असावद्यकर्मार्य हैं ।

सूत्र—असत्यकठोरधर्मविरुद्धवाचोऽशुभ वचन योगजातयः ॥१३१॥

अर्थ—अशुभवचनयोगजाति के तीन भेद हैं ।

१ असत्यवाक २ कठोरवाक् ३ धर्मविरुद्धवाक् ।

१ असत्यवाक—जो जैसा हो उसे वैसा न कहना ।

२ कठोरवाक—मर्मभेदी वचन बोलना ।

३ धर्मविरुद्धवाक—धर्म से विरुद्ध वचन बोलना ।

सूत्र—निरुद्धनिरुद्धतरपरमनिरुद्धान्यविचार भक्त-प्रत्याख्यानानि ॥१३२॥

अर्थ—अविचारभक्तप्रत्याख्यान के तीन भेद हैं।

१ निरुद्धाविचारभक्तप्रत्याख्यान २ निरुद्धतराविचार-भक्तप्रत्याख्यान ३ परमनिरुद्धाविचारभक्तप्रत्याख्यान।

१ निरुद्धाविचारभक्तप्रत्याख्यान—जो मुनि रोग या निर्बलता के कारण परसंघ में न जा सके अपने ही सघ में रुक जाय ऐसा मुनि आचार्य से शुद्ध हो कर आलोचना करके भक्तप्रत्याख्यान करता है उसके निरुद्ध अविचार भक्तप्रत्याख्यान होता है।

२ निरुद्धतराविचारभक्तप्रत्याख्यान—सर्प, अग्नि, व्याघ्र शत्रु चोर मूर्च्छा आदि करके जो मुनि शीघ्र आपत्ति में पड़ जाय तो वहां किसी आचार्यादिक कूं आलोचना कर आराधना से मरण करता है उसके निरुद्धतर अवि-चार भक्तप्रत्याख्यान होता है।

३ परमनिरुद्धाविचार भक्तप्रत्याख्यान—सिंह अग्नि चोर आदि के उपद्रव से यदि क्षपक की वाणी भी नष्ट हो जाय तो वह स्वयं आराधना का शरण ग्रहण कर मरण करता है उसके परमनिरुद्धअविचारभक्तप्रत्याख्यान होता है।

सूत्र—संशयतातिगृहीतानभिगृहीतानि मिथ्यादर्शनानि ॥१३३॥

अर्थ—मिथ्यादर्शन तीन प्रकार का है ।

१ संशयित २ अतिगृहीत ३ अनभिगृहीत ।

१ संशयित—आत्मा नित्य है या अनित्य ऐसा संशय रूप श्रद्धान ।

२ अतिगृहीत—स्वरूप से अधिक का (जो स्वरूप में न हो) ग्रहण कर श्रद्धान करना ।

३ अनभिगृहीत—स्वरूप से न्यून का श्रद्धान ।

सूत्र—इष्टाधिकृताभिमता देवताः ॥१३४॥

अर्थ—देवता तीन प्रकार के हैं

१ इष्टदेवता २ अधिकृतदेवता ३ अभिमतदेवता ।

१ इष्टदेवता—जिससे इष्ट सिद्धि का श्रद्धान हो ।

२ अधिकृतदेवता—जिसका जिस क्षेत्र व कार्य में अधिकार हो ।

३ अभिमतदेवता—जो बिना किसी स्वार्थ के, कल्याण के लिये माना गया हो ।

सूत्र—आशीर्वस्तुनमस्क्रियारूपानमस्काराः ॥१३५॥

अर्थ—नमस्कार तीन प्रकार का है ।

१ आशीर्नमस्कार २ वस्तुनमस्कार ३ नमस्क्रिया-रूपनमस्कार ।

१ आशीर्नमस्कार—जयवंत हो आदि शब्दों से अपनी निर्मलता को विकास रूप नमस्कार को आशीर्नमस्कार कहते हैं

२ वस्तुनमस्कार—परमात्मतत्व शुद्धात्मतत्व का स्वरूप विचारते हुए निर्मलता के विकास रूप नमस्कार को वस्तु नमस्कार कहते हैं ।

३ नमस्क्रियानमस्कार—अङ्ग नमा कर नमस्कार करना सो नमस्क्रिया नमस्कार है ।

सूत्र—मूलतन्त्रोत्तरतन्त्रोत्तरोत्तरतन्त्रकर्तारः कर्तार ॥१३६॥

अर्थ—कर्ता तीन प्रकार के होते हैं ।

१ मूलतन्त्रकर्ता २ उत्तरतन्त्रकर्ता ३ उत्तरोत्तरतन्त्र - कर्ता ।

१ मूलतन्त्रकर्ता—आप्तसर्वज्ञदेव हैं जिस मूल से सिद्धान्त का प्रवाह चलता है ।

२ उत्तरतन्त्रकर्ता—गणधरदेव हैं जो आप्त की दिव्यध्वनि के अनुसार अङ्गपूर्व सिद्धान्तों की रचना करते हैं ।

३ उत्तरोत्तरतन्त्रकर्ता—आचार्य उपाध्याय ,साधु हैं जो पूर्वपरम्परानुकूल ग्रन्थ रचना करते हैं ।

सूत्र—शब्दार्थज्ञानसमयाः समयाः ॥१३७॥

अर्थ—समय तीन प्रकार का है ।

१ शब्दसमय २ अर्थसमय ३ ज्ञानसमय ।

१ शब्दसमय—आगम को कहते हैं जिन शब्द समूहों के द्वारा समय अर्थात् द्रव्यका प्रति पादन हो।

२ अर्थसमय—शब्दसमय के द्वारा जो वाच्य भूत अर्थ अर्थसमय है।

३ ज्ञानसमय—निर्विकार ज्ञान स्वरूप आत्मा ज्ञानसमय है।

सूत्र—उपलब्धिभावनोपयोगरूपाणिमतिज्ञानानि ॥१३८॥

अर्थ—मतिज्ञान के तीन भेद हैं।

१ उपलब्धि २ भावना ३ उपयोग।

१ उपलब्धि—मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम को उपलब्धि कहते हैं।

२ भावना—किसी तत्त्व के चिन्तवन करते रहने को भावना कहते हैं।

३ उपयोग—तत्त्व का गाढ़ चिन्तवन करने पर आत्मा भी तद्रूप उपयोगमय हो जाय उस स्थिति को उपयोग कहते हैं।

सूत्र—मागधवरतनुप्रभासाविदेहेप्रतिदेशे देवीद्वीपाः ॥१३९॥

अर्थ—विदेतक्षेत्र में प्रतिदेश में तीन देवद्वीप हैं।

१ मागध २ वरतनु ३ प्रभास।

सूत्र—ऋजुमनःकृतार्थज्ञ ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ ऋजुकायकृतार्थज्ञा

ऋजुमति मनःपर्ययाः ॥१४०॥

अर्थ—ऋजुमतिमनःपर्यय के तीन भेद हैं।

१ ऋजुमनःकृतार्थज्ञ २ ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ ३ ऋजुकाय-कृतार्थज्ञ।

१ ऋजुमतिमनःकृतार्थज्ञ—सरलता से चिन्तितपदार्थ को जानने वाला।

२ ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ—वचन की सरलता से चिन्तितपदार्थ को जानने वाला।

३ ऋजुकायकृतार्थज्ञ— कायकी सरलता से चिन्तित पदार्थ को जानने वाला।

सूत्र—औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षापोऽनपवर्त्यायुष्काः ॥१४१॥

अर्थ—अनवर्त्यायुष्क तीन प्रकार के हैं।

१ औपपादिक २ चरमोत्तमदेह ३ असंख्येयवर्षायुष्क।

१ औपपादिक—उपपाद जन्म वाले देव और नारक

२ चरमोत्तमदेह—तद्भव मोक्षगामी और तीर्थंकरआदि

३ असंख्येयवर्षायुष्क—असंख्यातवर्ष की आयुवाले।

सूत्र—स्वस्तिकवर्द्धमानविश्रुताः स्वर्गादिविमानप्रकाराः ॥१४२॥

अर्थ—स्वर्गादि विमानों के तीन प्रकार हैं।

१ स्वस्तिक २ वर्द्धमान ३ विश्रुत।

सूत्र—समिताचन्द्राजतव इन्द्रपरिषदः ॥१४३॥
अर्थ—समिता २ चन्द्रा ३ जतु ये तीन इन्द्र परिषद हैं।
१ समिता—आभ्यन्तरपरिषद का नाम है।
२ चन्द्रा—मध्यपरिषद का नाम है।
३ जतु—बाह्यपरिषद का नाम है।
सूत्र—घ्राणावलोकनश्रवणानि भोगाः ॥१४४॥
अर्थ—भोग के तीन भेद है।
१ घ्राण २ अवलोकन ३ श्रवण।
सूत्र—भेद भेद सघातसंघाताः स्कन्धोत्पत्तिहेतवः ॥१४५॥
अर्थ—स्कन्धोत्पत्ति के हेतु तीन हैं।
१ भेद २ भेदसघात ३ संघात।
१ भेद—स्कन्ध से स्कन्ध का पृथक् होना।
२ भेदसंघात—स्कन्ध से स्कन्ध का पृथक् होना और स्कन्ध का स्कन्ध से मिल जाना।
३ संघात—स्कन्ध का स्कन्ध से मिल जाना।
सूत्र—पूर्वोत्तरचारिकार्यकारणभावाः क्रमभावाः ॥१४६॥
अर्थ—क्रमभाव के तीन भेद हैं।
१ पूर्वचारिभाव २ उत्तरचारिभाव ३ कार्यकारणभाव।
१ पूर्वचारिभाव—काल की अपेक्षा हेतु का पहिले होना और साध्य का बाद में होना ऐसा जहां अविनाभाव हो वह पूर्वचारिभाव है।

२ उत्तरचारिभाव—काल की अपेक्षा साध्य का पहिले हो जाना और हेतु का बाद में होना ऐसा जहां अविनाभाव हो वह उत्तरचारिभाव है ।

३ कार्यकारणभाव—साधन साध्य में कार्यकारणभाव का होना ।

सूत्र—प्रमाण विकल्पोभयसिद्धाधर्मिणः ॥१४७॥

अर्थ—धर्मी के तीन भेद हैं ।

१ प्रमाणसिद्ध २ विकल्पसिद्ध ३ उभयसिद्ध ।

१ प्रमाणसिद्ध—अनुमान में यदि पक्ष प्रत्यक्षादि प्रमाण से पहिले ही सिद्ध हो तो वह धर्मी प्रमाणसिद्ध है—जैसे अग्निमान् अयं पर्वतः धूमवत्त्वात् ।

२ विकल्पसिद्ध—जो धर्मी विकल्प में सिद्ध हो—जैसे अस्ति सर्वज्ञः आदि ।

३ उभयसिद्ध—जो धर्मी प्रमाण और विकल्प दोनों से सिद्ध हो ।

सूत्र—सामान्यं विशेषः स्वतन्त्रद्वयं विषयाभासाः ॥१४८॥

अर्थ—विषयाभास तीन प्रकार का है ।

१ सामान्यविषयाभास २ विशेषविषयाभास ३ स्वतन्त्रद्वय विषयाभास ।

१ सामान्यविषयाभास—वस्तु का केवल सामान्य अशं ही प्रमाण का विषय मानना सामान्यविषयाभास है ।

२ विशेषविषयाभास—वस्तु का केवल विशेष अशं ही प्रमाण का विषय मानना विशेषविषयाभास है ।

३ स्वतन्त्रद्वविषयाभास—वस्तु के स्वतन्त्र स्वतन्त्र ही सामान्य व विशेष विषय मानना स्वतन्त्रद्वयविषयाभास है ।

सूत्र—अगृहीतगृहीतमिश्रग्रहणरूपाः द्रव्यपरिवर्तनकालाः ॥१४६॥

अर्थ—द्रव्यपरिवर्तनकाल तीन प्रकार का है ।

१ अगृहीत २ गृहीत ३ मिश्र ।

१ अगृहीत—द्रव्यपरिवर्तन में अगृहीत अणुपुञ्जो से प्रारंभ करने से परिवर्तन का काल का जो अश बताया वह अगृहीतद्रव्यपरिवर्तनकाल है ।

२ गृहीत—द्रव्यपरिवर्तन में गृहीतअणूपुञ्जों से प्रारंभकर परिवर्तन का काल का जो भाग बताया वह गृहीतद्रव्यकाल है ।

३ मिश्र—द्रव्यपरिवर्तन में मिश्रअणुपुञ्जों से प्रारंभकर परिवर्तन के काल का जो भाग बताया है वह मिश्रद्रव्यपरिवर्तनकाल है ।

सूत्र—ईडासुखमनापिङ्गला नाड्यः ॥१५०॥

अर्थ—नाडी तीन प्रकार की है ।

१ ईडा २ सुखमना ३ पिङ्गला ।

१ ईडा
२ सुखमना
३ पिङ्गला

सूत्र—अनन्तानुबन्धिक्षयदर्शनमोहत्रिकोपशमजानन्तानुबन्धि मिथ्यात्वक्षयमिश्रयसम्यक्प्रकृत्युपशमजानन्तानुबन्धि मिथ्यात्व मिश्रक्षयसम्यक्प्रकृत्युपशमजानिक्षायोपशमिक सम्यक्त्वानि ॥१५१॥

अर्थ—क्षायोपशमिक सम्यक्त्व तीन प्रकार का है।

१ अनन्तानुबन्धिक्षयदर्शनमोहत्रिकोपशमज—
अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्कका क्षय तथा दर्शनमोहत्रिक का उपशम होनेपर जो प्रकट हो।

२ अनन्तानुबन्धिमिथ्यात्वक्षयमिश्रसम्यक्प्रकृत्युहशम।
अनन्तानुबन्धिका तथा मिथ्यात्वसम्यक् मिथ्यात्व का क्षय मिश्रप्रकृतिका उपशम होनेपर जो प्रकट हो।

३ अनन्तानुबन्धि मिथ्यात्वमिश्रक्षयसम्यक् प्रकृत्युपशमज-
अनन्तानुबन्धि चतुष्क का तथा मिथ्यात्व सम्यङ् मिथ्यात्व प्रकृतिका क्षय औरसम्यक् प्रकृतिका उपशम होनेपर जो प्रकट हो।

सूत्र—मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्राणि बन्धकारणानि ॥१५२॥

अर्थ—१ मिथ्यादर्शन २ मिथ्याज्ञान ३ मिथ्याचारित्र ये ही तीन बन्ध के कारण हैं।

१ मिथ्यादर्शन—जीवादिसप्ततत्वों का विपरीत श्रद्धान ।
२ मिथ्याज्ञान—जीवादिसप्ततत्वों का विपरीत ज्ञान ।
३ मिथ्याचारित्र—संसार की कारणभूत क्रियाओं का आचरण करना ।

सूत्र—अधोऽपूर्वानिवृत्तीनि करणानि ॥१५३॥

अर्थ—करण के तीन भेद हैं। १ अधःकरण २ अपूर्व-करण ३ अनि वृत्तिकरण ।

१ अधःकरण ।
२ अपूर्वकरण ।
३ अनिवृत्तिकरण ।

सूत्र—कायवाङ्मनसां योगाः ॥१५४॥

अर्थ—योग के तीन भेद हैं। १ काययोग २ वाग्योग ३ मनोयोग ।

१ काययोग—काय के निमित्त से आत्म प्रदेशों का परिस्पन्द (हलन चलन) होना ।
२ वाग्योग—वचन के निमित्त से आत्म प्रदेशों का परिस्पन्द (हलन चलन) होना ।
३ मनोयोग—मनके निमित्त से आत्म प्रदेशों का परिस्पन्द (हलन चलन) होना ।

सूत्र—निसर्गाश्च ॥१५५॥

अर्थ—निसर्ग भी तीन प्रकार का है। १ कायनिसर्ग

२ वाग्निसर्ग ३ मनोनिसर्ग ।

१ कायनिसर्ग—काय की प्रवृत्ति ।

२ वाग्निसर्ग—वचन की प्रवृत्ति ।

३ मनोनिसर्ग—मन की प्रवृत्ति ।

सूत्र—गुप्तयः ॥१५६॥

अर्थ-गुप्ति भी तीन प्रकार की है । १ मनोगुप्ति २ वचन गुप्ति ३ कायगुप्ति ।

१ मनोगुप्ति—मन की प्रवृत्ति को वश में करना ।

२ वचनगुप्ति—वचन की प्रवृत्ति को वश में करना ।

३ कायगुप्ति—शरीर की प्रवृत्ति को रोकना ।

सूत्र—वलप्राणाश्च ॥१५७॥

अर्थ—वलप्राण भी तीन प्रकार का है । १ मनोवलप्राण २ वचनवल प्राण ३ कायवल प्राण ।

१ मनोवलप्राण—मनोवल विशिष्ट जीवन ।

२ वचनवलप्राण—कायवल विशिष्ट जीवन ।

सूत्र—अधोमध्योर्ध्वलोकाः लोका ॥१५८॥

अर्थ—लोक के भी तीन भेद हैं । १ अधोलोक २ मध्य लोक ३ ऊर्ध्वलोक ।

१ अधोलोक—सप्त नरक भूमिमय लोक ।

मध्यलोक—जम्बूद्वीपादि द्वीप लवणसमुद्रादि समुद्रमय लोक ।

३ ऊर्ध्वलोक—वैमानिक देवों का निवास रूप लोक ।

सूत्र—भूतवर्तमानभाविनः कालाः ॥१५९॥

अर्थ—काल के भी तीन भेद हैं । १ भूतकाल २ वर्तमान काल ३ भाविकाल ।

१ भूतकाल—जो व्यतीय हो गया ।

२ वर्तमानकाल—जो हो रहा ।

३ भाविकाल—जो आगे होगा ।

सूत्र—जीवभव्याभव्यत्वानि पारिणामिक भावाः ॥१६०॥

अर्थ—१ जीवत्व २ भव्यत्व ३ अभव्यत्व ये तीन पारिणामिक भाव हैं ।

१ जीवत्व—चैतन्य ।

२ भव्यत्व—रत्नत्रय की प्राप्ति रूप योग्यता ।

३ अभयत्व—रत्नत्रय की प्राप्तिरूप योग्यता का न होना ।

सूत्र—पुंस्त्रीनपुंसकानि वेदाः ॥१६१॥

अर्थ—वेद भी तीन प्रकार का है । १ पुम्वेद २ स्त्रीवेद ३ नपुंसकवेद ।

१ पुम्वेद—स्त्री से रमण करने की इच्छा ।

२ स्त्रीवेद—पुरुष से रमण करने की इच्छा ।

३ नपुंसकवेद—दोनों से रमने की इच्छा ।

सूत्र—कुमतिश्रुतावधयः कुज्ञानानि ॥१६२॥

अर्थ—कुज्ञान के तीन भेद हैं । १ कुमति २ कुश्रुत ३ कुअवधि ।

१ कुमति—मिथ्यादर्शन सहित मतिज्ञान ।

२ कुश्रुत—मिथ्यादर्शन सहित श्रुतज्ञान ।

३ कुअवधि—मिथ्यादर्शन सहित अवधिज्ञान ।

सूत्र—देशपरम सर्वावधयोऽवधिज्ञानानि ॥१६३॥

अर्थ—अवधिज्ञान तीन प्रकार का है ।

१ देशावधि २ परमावधि ३ सर्वावधि ।

१ देशावधि—

२ परमावधि—

३ सर्वावधि—

सूत्र—चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि क्षायोपशमिक दर्शनानि ॥१६४॥

अर्थ—क्षायोपशमिक दर्शन के तीन भेद हैं ।

१ चक्षुर्दर्शन २ अचक्षुर्दर्शन ३ अवधिदर्शन ।

१ चक्षुर्दर्शन—चक्षुर्दर्शनावरण कर्म के क्षायोपशम से जो चक्षुरिन्द्रिय द्वारा दर्शन होता है उसे चक्षुर्दर्शन कहते हैं ।

२ अचक्षुर्दर्शन—अचक्षुर्दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम से जो अचक्षुरिन्द्रिय द्वारा दर्शन होता है उसे अचक्षु-दर्शन होता है उसे अचक्षुर्दर्शन कहते हैं ।

३ अवधिदर्शन—अवधिदर्शनावरणकर्म के क्षयोपशम से जो अवधिज्ञान के पहले रूपी पदार्थ का सामान्यावलोकन होता है उसे अवधिदर्शन कहते हैं।

सूत्र—शुभाशुभशुद्धाजीवपरिणतयः ॥१६५॥

अर्थ—जीव की परिणति तीन प्रकार की होती है।

१ शुभपरिणति २ अशुभपरिणति ३ शुद्धपरिणति।

१ शुभपरिणति—क्रोधादिक विषयों के मन्दोदय में होने वाली जीव की परिणति।

२ अशुभपरिणति—क्रोधादिकषायों के तीव्रोदय से होने वाली जीव की परिणति।

३ शुद्धपरिणति—क्रोधादिकषायों के सर्वथा अभाव से होने वाली जीव की परिणति।

सूत्र—उपयोगाश्च ॥१६६॥

अर्थ—उपयोग भी तीन प्रकार का होता है।

१ शुभोपयोग—शुभक्रियाओं में होने वाले जीव के परिणाम को शुभोपयोग कहते हैं।

२ अशुभोपयोग—अशुभक्रियाओं से होने वाले जीव के परिणाम को अशुभोपयोग कहते हैं।

३ शुद्धोपयोग—शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की क्रियाओं से रहित एकमात्र आत्मोपयोग को शुद्धोपयोग कहते हैं।

सूत्र—द्वित्रिचतुरिन्द्रिया विकलत्रिकाः ॥१६७॥

अर्थ—१ दो इन्द्रिय २ तीन इन्द्रिय ३ चतुरिन्द्रियजीव विकलत्रिक कहे जाते हैं।

१ द्विन्द्रियजीव—जिन जीवों के १ स्पर्शन २ रसन (ये दो इन्द्रियां हों।

२ त्रीन्द्रियजीव—जिन जीवों के १ स्पर्शन २ रसना ३ घ्राण ये तीन इन्द्रियां हों।

३ चतुरिन्द्रियजीव—जिन जीवों के १ स्पर्शन २ रसना ३ घ्राण ४ चक्षुः में चार इन्द्रियां हों।

सूत्र—चलस्थलनभश्चराः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः ॥१६८॥

अर्थ—पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च तीन प्रकार के होते हैं।

१ जलचर २ स्थलचर ३ नभचर।

१ जलचर—जो जल में ही जन्म लेते जल में ही जीवित रहते जल में विचरते हैं।

२ स्थलचर—जो स्थल भूमि पर जन्म लेते भूमि पर जीवित रहते भूमि पर ही चलते फिरते हैं।

३ नभचर—जो नभ-आकाश में चलते फिरते हैं।

सूत्र—आचार्योपाध्यायसाधवश्छद्मस्थ परमेष्ठिनः ॥१६९॥

अर्थ—१ आचार्य २ उपाध्याय ३ साधु ये तीन छद्मस्थ-अल्पज्ञ- परमेष्ठि हैं।

१ आचार्यपरमेष्ठी—जो पांच आचारों को स्वयं पालते

तथा अपने शिष्यों से पढ़वाते हैं।

२ उपाध्यायपरमेष्ठी—जो ११ ग्यारह अंग तथा १४ चौदह पूर्व के पाठी होते हैं और अन्यपिपठिषु मुनियों को पढ़ाते हैं।

३ साधुपरमेष्ठी—जो २८ अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हुए आत्म साधना करते हैं।

सूत्र—ओं अर्हं इति त्र्यक्षरमन्त्र है ॥१७०॥

अर्थ—ओं अर्हं मत तीन अक्षर वाला मंत्र है।

सूत्र—ओं सिद्धम् ॥१७१॥

अर्थ—ओं सिद्धम् यह भी तीन अक्षर का मंत्र।

सूत्र—स्वस्थानपरस्थानसर्वस्थानीयान्यल्पबहुत्वानि ॥१७२॥

अर्थ—अल्पबहुत्व तीन प्रकार का है।

१ स्वस्थानाल्पबहुत्व २ परस्थानाल्पबहुत्व ३ सर्वस्थानाल्पबहुत्व।

१ स्वस्थानाल्पबहुत्व—अपने जातीय स्थानों में अल्पबहुत्व बताना स्वस्थानाल्पबहुत्व है।

२ परस्थानाल्पबहुत्व—

३ सर्वस्थानाल्पबहुत्व—

सूत्र—गृहीत, गृहीतगृहीत, गृहीतगुणकारा, उपरिमविकल्पाः ॥१७३॥

अर्थ—उपरिम विकल्प तीन प्रकार का है ।

१ गृहीतोपरिम २ गृहीतगृहीतोपरिम ३ गृहीतगुणकारोपरिम ।

१ गृहीतोपरिम—

२ गृहीतगृहीतोपरिम—

३ गृहीतगुणकारोपरिम—

सूत्र—अर्थव्यञ्जनयोगानांसंक्रान्ति ॥१७४॥

अर्थ—योगसंक्रान्ति तीन प्रकार का है ।

१ अर्थसंक्रान्ति २ व्यञ्जनसंक्रान्ति ३ योगसंक्रान्ति

३ अर्थसंक्रान्ति—एक अर्थ को छोड़कर दूसरे अर्थ पर मन को स्थिर करना ।

२ व्यञ्जनसंक्रान्ति—एक व्यञ्जन को छोड़ कर दूसरे व्यञ्जन पर मन की गति को स्थिर करना ।

३ योगसंक्रान्ति—एक योग को छोड़कर दूसरे योग पर मन को स्थिर करना ।

सूत्र—अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्याप्रत्याख्यानोदिता ॥१७५॥

अर्थ—योगसक्रान्ति तीन प्रकार की है ।

१ अनन्तानुबन्ध्युदित २ अप्रत्याख्यानोदित ३ प्रत्याख्यानोदित ।

१ अनन्तानुबन्ध्युदित—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान माया, लोभ के उदय से होने वाली योगसक्रान्ति ।

२ अप्रत्याख्यानोदित---अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि के उदय से होने वाली योगसंक्रान्ति ।

३ प्रत्याख्यानोदित---प्रत्याख्यानावरण के उदय से होने वाली योगसंक्रान्ति ।

सूत्र—लिखितसाक्षित्वभुक्तयो व्यवहारप्रमाणानि ॥१७६॥

अर्थ—व्यवहार प्रमाण तीन प्रकार के होते हैं ।

१ लिखित २ साक्षित्व ३ भुक्त ।

१ लिखित—लिखा हुआ + जैसे दस्तावेज रुक्का रोकड़ आदि ।

२ साक्षित्व—साक्षीभूत + जैसे किसी का कोई गवाह हो ।

३ भुक्त—भोगा हुआ+जैसे जो जिस मकान में रहता है या जिस का जिस पर कब्जा है ।

सूत्र—सन्निकर्षसहकारिणः खण्ड्यविकल्पाः तद्द्रव्यंगुणः कर्मवा ॥१७७॥

अर्थ—सन्निकर्षकी योग्यता सहकारिकारणों की उपस्थितिमात्र है तब वहां ३ खण्ड्य विकल्प होते हैं । कि १ वह सहकारी कारण क्या द्रव्य है २ या गुण है, ३ या कर्म है ।

१ प्रथम पक्ष अनेक विकल्पों से खंडित है । इसीप्रकार २रा व ३रा विकल्प भी अनेक निर्बल विकल्पों से

खंडित है ।

सूत्र——सन्निकर्षसहकारिव्यापिद्रव्यस्य तन्मनो नयन-मालोको वा ॥१७८॥

अर्थ——व्यापी द्रव्यरूप सहकारी कारण का सन्निध्य होने रूप सन्निकर्ष की योग्यता से प्रतिनियतबोध की व्यवस्था होने पर ३ खंड्य विकल्प होते हैं कि १ वह व्यापी द्रव्य क्या मन है ? क्या नेत्र है या ३ आलोक है ? तीनों ही पदार्थ घटरूपरूपत्व विषयक इन्द्रियसन्निकर्ष की तरह आकाशादि व इन्द्रिय के सन्निकर्ष में भी है फिर आकाश भी प्रत्यक्ष हो जाना चाहिये ।

सूत्र——सन्निकर्षसहकारिगुणस्य सगुणः प्रमातृगतः प्रमेयगतस्तदुभयगतोवा ? ॥१७९॥

अर्थ——सन्निकर्षयोग्यता यदि गुण सहकारी कारण के सन्निध्यरूप मानते हो तब वहाँ ये १ विकल्प होते हैं २ वह गुण क्या प्रमातृ (ज्ञाता पुरुष) गतहै, क्या प्रमेय (ज्ञेय) में रहने वाला है, ३ या प्रमाता प्रमेय दोनों में रहने वाला है ?

१ प्रमातृगतमानने पर अन्य विकल्पों द्वारा ठहर नहीं सकता ।

२ प्रमेयगत मानने पर आकाश में भी सन्निकर्ष का फल (प्रत्यक्षता) मानना पड़ेगी।

३ उभयगत मानने पर उक्त दोनों पक्ष के दोष आते हैं।

सूत्र—सविकल्पाविकल्पैकत्वाध्यवसायस्वरूपस्य एक विषयत्वमन्यतरेणान्यतरस्यविषयीकरणं परत्रेतरस्याध्यारोपो वा ॥१८०॥

अर्थ—इस सूत्र में बौद्धदार्शनिक के सिद्धान्तों को युक्ति की कसौटी पर घिसा जा रहा है और देखने का प्रयत्न किया जा रहा है कि वह कितना ठोस और बुद्धि को ठीक लगने वाला है प्रश्न किया जा रहा है कि आपके द्वारा (बौद्धों द्वारा) मान्य सविकल्प एवं निर्विकल्प ज्ञान में पाया जाने वाला जो एकत्वाध्यवसाय है उस का क्या स्वरूप है? (१) क्या एक विषयता का नाम एकत्वाध्यवसाय है या (२) अन्य के द्वारा किसी अन्य का विषय बना लेना है अथवा (३) दूसरे में दूसरे का अध्यारोप कर लेने का नाम एकत्वाध्यवसाय है। उपरिलिखित तीनों पक्षों को क्रम से विचार कोटि में रखा जा रहा है। (१) प्रथम पक्ष का खडन दोनों ज्ञानों में एक विषयता तो नहीं है कारण कि सविकल्प ज्ञान सामान्य को तथा निर्विकल्प ज्ञान विशेष को विषय करता है अतः दोनों में भिन्न विषयता पाई जाती है।

(२) दूसरे पक्ष का खंडन-किसी एक का अन्य किसी दूसरे के द्वारा विषय कर लिया जाना हो नहीं सकता

क्योंकि समान काल में होने वाले उन दोनों ज्ञानों में कोई परतंत्रता नहीं है अतः यह पक्ष भी उचित नहीं है।

(३) तीसरे पक्ष का खंडन-जो विषयी कृत नहीं हुआ है उसका दुसरे ज्ञान में अध्यारोप भी नहीं हो सकता है। यदि एक का दूसरे में अध्यारोप मान भी लिया जाय तो पूछना यह है कि विकल्प ज्ञान में निर्विकल्प ज्ञान का अध्यारोप होगा या निर्विकल्प में विकल्प का प्रथम पक्ष मानने में तो विकल्प का व्यवहार ही खतम हो जायगा कारण कि समस्त ही ज्ञान निर्विकल्प हो जायेगे और द्वितीय पक्ष के अंगीकार करने पर तो निर्विकल्प की कोई बात ही न रहेगी कारण कि सब ज्ञान सविकल्प हो जायेंगे।

सूत्र—तदध्यवसायकस्य निर्विकल्पो विकल्पो ज्ञानान्तरं वा ॥१८१॥

अर्थ—उनदोनों (सविकल्प एवक निर्विकल्पक) ज्ञानों की एकता को १ निर्विकल्प ज्ञान जानता या निश्चित करता है, या २ सविकल्प ज्ञान जानता है अथवा ३ अन्य कोई तीसरा ही ज्ञान जानता है।

१ प्रथम पक्ष का खंडन—निर्विकल्प ज्ञान तो उन दोनों की एकता को निश्चित नहीं करता कारण कि निर्विक-

ल्पक ज्ञान अध्यवसाय से – विकल रहता हैं अन्यथा यदि वह निश्चयात्मक माना जायगा तो भ्रांतता का का प्रसंग हो जायगा।

२ विकल्प ज्ञान भी दोनों ज्ञानों की एकता को नहीं जानता है कारण कि वह अविकल्प को विषय नहीं करता यदि वह अविकल्प को विषय करने लग जाय तो स्व लक्षण को विषय करने की प्राप्ति होने से "विकल्पोऽवस्तु निर्भासः—अवस्तु के प्रतिभास को विकल्प कहते हैं" इस ग्रंथ वाक्य का विरोध हो जायगा और फिर जो विषयी कृत नहीं हुआ है उसका दूसरी जगह आरोप बन नहीं सकता है।

३ तीसरे पक्ष का खंडन—जो ज्ञानान्तर एकत्व का अध्यवसायी माना जायगा वह भी या तो निर्विकल्पक होगा या सविकल्पक होगा, सो दोनों ही पक्षों में उपरि लिखित दोषों के आ जाने से दोनों को विषय करने की बात नहीं रहती है।

सूत्र—अर्थस्य शब्दाद्वैतवादिमताभिधानानुषक्त तायाः स्वरूपस्य अर्थज्ञाने तत्प्रतिभासः अर्थदेशेतद्वेदनं तत्काले तत्प्रतिमासोवा ॥१८२॥

अर्थ—शब्दाद्वैतवादियों के द्वारा मानी हुई अर्थ में शब्दानुषक्तता का क्या स्वरूप है १ अर्थ के ज्ञान में

शब्द का प्रतिभास होना या २ अर्थ ज्ञान के रहने की जगह में शब्द का वेदन होना अथवा अर्थज्ञान के समय में शब्द का प्रतिभास होना। ३ इन तीनों पक्षों का क्रम से खंडन आगे की पंक्तियों में किया जा रहा है।

(१) आद्य विकल्प तो हो नहीं सकता कारण कि नेत्रों के द्वारा अर्थ के प्रत्यक्ष ज्ञान होने में शब्द का प्रतिभास नहीं होता है।

२ दूसरा विकल्प भी ठीक नहीं कारण कि शब्द का श्रोत्र प्रदेश में और रूपादिकों का जो कि शब्द सन्नि-धि से रहित हैं, अपने प्रदेश में अपने विज्ञान के द्वारा अनुभव होता है।

३ तीसरा पक्ष भी समुचित नहीं है कारण कि समान काल में होने वाले भी शब्द का लोचन ज्ञान में प्रति भास नहीं होता है। दूसरी बात यह है कि जो लोग "अभिधानानुषक्त अर्थ ही प्रत्यक्ष ज्ञान में प्रतिभासित होता है" ऐसा मानते हैं उन लोगों के यहां बाल, मुक आदिकों को अर्थ के दर्शन की सिद्धि कैसे होगी क्यों कि उन्हें अर्थ का दर्शन (प्रत्यक्ष ज्ञान) करने में अभिधान की प्रतीति नहीं होती है। इस प्रकार शब्दा-द्वैतवादियों के द्वारा मान्य शब्दानुषक्तता अर्थ में सिद्ध नहीं हो पाती है।

सूत्र—अविकल्पाध्यक्षवसीयैकत्वस्वरूपस्यकिमेक व्यक्तिगत मनेकव्यक्तिगतं व्यक्ति मात्रगतं वा ॥१८३॥

अर्थ—आर्हतमत के मानने वाले बौद्धाभिमत निर्विकल्प प्रत्यक्ष के द्वारा मालूम की जाने वाली एकता के खण्डन करने के लिये तीन विकल्पों को इस सूत्र में उठाया गया है। विकल्प इस प्रकार से हैं।

(१) वह एकता एक व्यक्ति में रहने वाली है या (२) अनेक व्यक्तियों में रहने वाली है अथवा (३) व्यक्ति सामान्य में रहने वाली है। तीनों प्रकारों में से किसी भी प्रकार की एकता नहीं बन सकती। इनका खन्डन इस प्रकार है—

खण्डन (१) यदि कहा जाय कि वह एकता एक व्यक्ति गत है तो उसके विषय में पूछना यह है कि वह साधारण है या असाधारण। यदि कहा जाय कि साधारण हैं तो एक व्यक्तिगत और साधारण विरुद्ध होता है। और यदि कहा जाय कि असाधारण हैं तो इससे एकत्व की सिद्धि न होती हुई प्रत्युत भेद की ही सिद्धि होती है कारण कि असाधारणस्वरूप का होना ही भेद कहलाता है।

(२) दूसरे पक्ष का खण्डन—यदि कहा जाय कि अनेक व्यक्तियों में रहने वाली, सत्ता सामान्य रूप एकता

प्रत्यक्ष के द्वारा ग्रहण करने योग्य है तो प्रश्न यह है कि वह व्यक्तियों में रहते हुए प्रतीत होती हैं अथवा व्यक्तियों में न रहते हुए। यदि प्रथम पक्ष अंगीकार किया जाता हो तो भेद का प्रसंग हो जायगा कारण कि व्यक्ति तो अधिकरण और सत्ता सामान्य उसमें रहने वाला आधेय इस प्रकार प्रगट ही भेद स्पष्ट होता रहेगा।

द्वितीय पक्ष के आलंबन करने पर व्यक्तियों के ग्रहण न करने पर भी अंतराल में उसका प्रतिभास होते रहना चाहिये या होने लगेगा।

फिर यह दूसरा दूषण भी है कि उसकी प्रतीति एक व्यक्ति के ग्रहण करने से होगी।

प्रथम पक्ष मानने में तो विरोध होगा कारण कि अनेक व्यक्तियों रहने वाले एक स्वरूप को ही एकाकार कहते हैं। वह एक व्यक्ति स्वरूप के मालूम होने पर भी अनेक व्यक्तियों में अनुयायी रूप से कैसे मालूम हो सकेगी।

द्वितीय पक्ष अर्थात् सकल व्यक्तितों के ग्रहण द्वारा वह मालूम होगी तो उसका ज्ञान ही नहीं हो पायगा क्यों कि सकल व्यक्तियों का ग्रहण करना ही असंभव हैं।

३ तीसरे पक्ष का खंडन —यदि कहा जाय कि व्यक्ति

मात्र गत एकत्व का नाम एकता है तो वह भी खण्डित हो जाती है कारण कि एक व्यक्ति और अनेक व्यक्ति को छोड कर व्यक्ति मात्र कोई भिन्न (अलहदा) हो नहीं सकता है।

सूत्र—अर्थाभेदकारणस्य देशाभेदात्कालाभेदादाकारभेदाद्वा ॥१८४॥

अर्थ—अर्थों में अभेद पाया जाता है इस प्रकार के अद्वैतवादियों के अभिमान को खण्डन करने के लिये तीन विकल्प हैं। वे विकल्प इस प्रकार हैं—

१ वह अभेद देश के अभेद होने है २ काल के अभेद होने से है अथवा ३ आकार के अभेद होने पर है।

प्रथम पक्ष खण्डन—यदि देश के अभेद होने से अभेद है तो देश में अभेद क्योंकर सिद्ध होगा, कहा जाय कि अन्य देश में अभेद होने से तो अनवस्था नामक दूषण आ उपस्थित होगा। यदि कहा जाय कि अपने आप अभेद होजायगा तो पदार्थों में भी अपने आप ही अभेद मान लिया जावे। देश के अभेद होने से अभेद की कल्पना करने से क्या लाभ।

(२ और ३ पक्ष के खण्डन)—इन पक्षों में भी देश भेद के समान विकल्प उठा कर तथा उनमें अनवस्थादि

दूषण बतला कर खण्डन कर देना चाहिये ।

सूत्र—प्रत्यक्षं त्रिविधं–स्वसंवेदनं बाह्येन्द्रियजं मनःप्रभवं च ॥१८५॥

अर्थ—इस सूत्र में प्रत्यक्ष के तीन भेदों को गिनाया गया है। उनके नाम अलग अलग इस प्रकार हैं :–

(१) स्वसंवेदनप्रत्यक्ष (२) बाह्येन्द्रियजप्रत्यक्ष (३) मनःप्रभवप्रत्यक्ष ।

१ स्वसंवेदनप्रत्यक्ष—ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान जिसकी उत्पत्ति में न तो बाह्य इन्द्रियों के साहाय्य की आवश्यकता होती हो और न मन की मदद की जरूरत होती हो किन्तु जो अपने आप ही अपना ज्ञान होवे उसे स्वसंवेदन ज्ञान कहते हैं ।

२ बाह्येन्द्रियजप्रत्यक्ष—ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान जिसकी उत्पत्ति में बाह्य जो पांच इन्द्रियां (स्पर्शन-रसना-नासिकानेत्र-कर्ण)हैं उनके साहाय्य की आवश्यकता पड़ती हो उसे बाह्येन्द्रियज प्रत्यक्ष कहते हैं। चूंकि उपरिलिखित पांच इन्द्रियों का स्वरूप बाह्य रूप से प्रतीत होना अतः इन्हे बाह्येन्द्रिय कहते हैं इनसे जो ज्ञान पैदा होता है उसे बाह्येन्द्रियज कहते हैं ।

(३) मनःप्रभवप्रत्यक्ष—मात्र मन के निमित्त से उत्पन्न होने वाला जो प्रत्यक्ष ज्ञान होता है उसे मनःप्रभवप्रत्यक्ष कहते हैं इस मन का दूसरा नाम है अनीन्द्रिय। इस प्रकार इस में प्रत्यक्ष के भेदों का स्वरूप वर्णित किया गया है।

(अपूर्ण)

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सूत्र—नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवानां गतयः ॥१॥

अर्थ—गति चार प्रकार की है।

१ नारकगति २ तिर्यग्गति ३ मनुष्यगति ४ देव-गति।

१ नारकगति—नारक भव को प्राप्त कराने वाली गति।
२ तिर्यग्गति—तिर्यग्भव को प्राप्त कराने वाली गति।
३ मनुष्यगति—मनुष्यभव को प्राप्त कराने वाली गति।
६ देवगति—देवभव को प्राप्त कराने वाली गति।

सूत्र—आयूंषि ॥२॥

अर्थ—आयु भी चार प्रकार की है।

१ नारकआयु २ तिर्यग्आयु ३ मनुष्यआयु ४ देवआयु।

१ नारकआयु—जो जीव को नारक शरीर में रोके।
२ तिर्यगायु—जो जीव को तिर्यग् शरीर में रोके।
३ मनुष्यायु—जीव को मनुष्य शरीर में रोके।
४ देवायु—जो जीव को देव शरीर रोके।

सूत्र—आनुपूर्व्यश्च ॥३॥

अर्थ—आनुपूर्वी चार प्रकार की है

१ नारकगत्यानुपूर्वी २ तिर्यग्गत्यानुपूर्वी ३ मनुष्य-गत्यानुपूर्वी ४ देवगत्यानुपूर्वी ।

१ नारकगत्यानुपूर्वी—नारक गति में पहुँचने के पहले आत्म प्रदेशो का विग्रह गति में पूर्व शरीर के आकार बने रहना ।

२ तिर्यग्गत्यानुपूर्वी—तिर्यग्गति में पहुँने के पहले आत्म प्रदेशों का विग्रहगति में पूर्व शरीर के आकार बने रहना ।

३ मनुष्यगत्यानुपूर्वी—मनुष्य गति में पहुँचने के पहले आत्म प्रदेशों का विग्रहगति में पूर्व शरीर के आकार बने रहना ।

४ देवगत्यानुपूर्वी—देवगति में पहुंचने के पहले आत्म प्रदेशों का विग्रह गति में पूर्व शरीर के आकार बने रहना ।

सूत्र—क्रोधमानमायालोभाः कषायाः ॥४॥

अर्थ—कषाय चार हैं ।

१ क्रोध (गुस्सा) २ मान (घमण्ड) ३ माया (छल कपट) ४ लोभ (लालच)

सूत्र—अनन्तानुवन्धि कषायाश्च ॥५॥

अर्थ—अनन्तानुवन्धी कषाय के चार भेद हैं ।

१ अनन्तानुवन्धी क्रोध २ अनन्तानुवन्धीमान ३

अनन्तानुबन्धीमाया ४ अनन्तानुबन्धीलोभ ।

१ अनन्तानुबन्धी क्रोध—अनन्त संसार का कारणीभूत क्रोध ।

२ अनन्तानुबन्धी मान—अनन्त संसार का कारणीभूत मान ।

३ अनन्तानुबन्धी माया—अनन्त संसार की कारणीभूत माया ।

४ अनन्तानुबन्धी लोभ—अनन्त संसार का कारणीभूत लोभ ।

सूत्र—अप्रत्याख्यानावरणाः ॥६॥

अर्थ—अप्रत्याख्यानावरण कषाय के चार भेद हैं ।

१ अप्रत्याख्यानावरण क्रोध—जो देश चारित्र को न होने दे ।

२ अप्रत्याख्यानावरणमान—जो देश चारित्र को न होने दे ।

३ अप्रत्याख्यानावरण माया—जो देश चारित्र को न होने दे ।

४ अप्रत्याख्यानावरणलोभ—जो देश चारित्र को न होने दे ।

सूत्र—प्रत्याख्यानावरणाः ॥७॥

अर्थ—प्रत्याख्यानावरण कषाय के चार भेद हैं ।

१ प्रत्याख्यानावरणक्रोध—जो सकल संयम न होने दे।

२ प्रत्याख्यानावरणमान—जो सकल संयम को न होने दे।

३ प्रत्याख्यानावरणमाया—जो सकल संयम को न होने दे।

४ प्रत्याख्यानावरणलोभ—जो सकल संयम को न होने दे।

सूत्र—संज्वलनाश्च ॥८॥

अर्थ—संज्वलन कषाय के भी चार भेद हैं।

१ संज्वलनक्रोध—जो यथाख्यातसंयम को न होने दे।

२ सज्वलनमान—जो यथाख्यात संयम को न होने दे।

३ सञ्ज्वलनमाया—जो यथाख्यात संयम को न होने दे।

४ संज्वलनलोभ—जो यथाख्यात सयम को न होने दे।

सूत्र—अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान प्रत्याख्यानावरणसंज्वलनाश्चकषायाः ॥९॥

अर्थ—कषाय के चार भेद हैं?

१ अनन्तानुबन्धीकषाय—जो अनन्त संसार का कारण हो।

२ अप्रत्याख्यानावरणकषाय—जो देश व्रत न होने दे।

३ प्रत्याख्यानावरणकषाय—जो महाव्रत न होने दे ।

४ संज्वलनकषाय—जो यथाख्यात संयम न होने दे ।

सूत्र—क्रोधा उक्त चतुर्जातिकाः ॥१०॥

अर्थ—क्रोध उक्त चार जाति वाले हैं ।

१ अनन्तानुबंधी क्रोध—जो क्रोध ६ माह से भी अधिक या अनेक भवों तक रहे ।

२ अप्रत्याख्यानावरणक्रोध—जो क्रोध अधिक से अधिक ६ माह तक रहे ।

३ प्रत्याख्यानावरणक्रोध—जो क्रोध १५ दिन तक ही रह सके ।

४ सञ्ज्वलनक्रोध—जो क्रोध अन्तर्मुहूर्त से अधिक न रह सके ।

सूत्र—मानानि ॥११॥

अर्थ—मान चार जाति वाले हैं ।

१ अनन्तानुबन्धी-मान ।

२ अप्रत्याख्याननावरण-मान ।

३ प्रत्याख्यानावरण-मान ।

४ सञ्ज्वलनमान ।

सूत्र—मायाः ॥१२॥

अर्थ—माया चार जाति की है ।

१ अनन्तानुबन्धी,माया

२ अप्रत्याख्यानावरण,माया

३ प्रत्याख्यानावरण,माया

४ संज्वलन,माया

सूत्र—लोभाश्च ॥१३॥

अर्थ—लोभ भी चार जाति वाले हैं।

१ अनन्तानुबन्धी,लोभ

२ अप्रत्याख्यानावरण,लोभ

३ प्रत्याख्यानावरण,लोभ

४ संज्वलन,लोभ

सूत्र—शिलापृथ्वीभेदधूलजलराजिसदृशाः क्रोधाः ॥१४॥

अर्थ—क्रोध ४ तरह का है— १ शिलाभेदसदृश, २ पृथ्वीभेदसदृश, ३ धूलराजिसदृश, ४ जलराजिसदृश।

१ शिलाभेदसदृश—जो क्रोध शिला पाषाण में पड़ी हुई लकीर के सदृश हो अर्थात् अनंतानुबन्धी क्रोध।

२ पृथ्वीभेदसदृश—जो क्रोध पृथ्वी में खोदी हुई लकीर के सदृश हो अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण क्रोध।

३ धूलरजिसदृश—जो क्रोध धूल में आई चक्र (पहिये) के लकीर के सदृश हो अर्थात् प्रत्याख्यानावरण क्रोध।

४ जलराजिसदृश—जो क्रोध पानी में की हुई लकीर के सदृश हो अर्थात् जल्दी ही मिट जावे (संज्वलन क्रोध)

सूत्र—शैलास्थिकाष्ठवेत्रनम्रतासदृशानि मानानि ॥१५॥

अर्थ—मान चार तरह का है– १ शैलसदृश, २ अस्थि-सदृश, ३ काष्टसदृश, ४ वेत्रनम्रता सदृश ।

१ शैलसदृश—जो मान पर्वत के समान कठोर हो। अर्थात् अनन्तानुवन्धीमान ।

२ अस्थिसदृश—जो मान हड्डी के समान कठोर हो। अर्थात् अप्रत्याख्यानावरणमान ।

३ काष्ठसदृश—जो मान काठ के समान कठोर हो। अर्थात् प्रत्याख्यानावरणमान ।

४ वेत्रनम्रतासदृश—जो मान वेंत की नम्रता के समान नाम हो अर्थात् संज्वलनमान ।

सूत्र—वेणूयमूलमेषशृङ्गगोमूत्रक्षुरप्रकौटिल्यसदृशा माया: ॥१६॥

अर्थ—माया चार प्रकार की है ।

१ वेणूयमूल कौटिल्यसदृश २ मेष शृङ्ग कौटिल्य सदृश ३ गोमूत्र कौटिल्यसदृश ४ क्षुरप्रकौटिल्य सदृश ।

१ वेणूयमूलकौटिल्य सदृश—वांस के जडों की कुटिलाईसमानटेडी हो वह अनन्तानुवन्धी माया ।

२ मेषशृङ्गकौटिल्यसदृश—जो मेढ़े के सींग की कुटिलाई के समान टेढा हो वह अप्रत्याख्यानावरणमाया ।

३ गोमूत्रकौटिल्य सदृश—जो गोमूत्र की कुटिलाई के

समान टेढ़ी हो वह प्रत्याख्यानावरण माया है।

४ क्षुरप्रकौटिल्यसदृश—जो खुरपा की कुटिलाई के समान टेढ़ी हो वह संज्वलन माया है।

सूत्र—क्रिमिरागचक्रमलतनुमलहरिद्रारागसदृशा लोभाः ॥१७॥

अर्थ—लोभ कषाय चार प्रकार का है।

१ क्रिमिरागसदृश २ चक्रमलसदृश ३ तनुमलसदृश ४ हरिद्रारागसदृश।

१ क्रिमिरागसदृश—जो लाखारंग के समान पक्का रंग वाला हो वह अनन्तानुबन्धी लोभ है।

२ चक्रमलसदृश—जो रथ के पहिए में रहने वाले ओंगन के समान रंग वाला हो वह अप्रत्याख्यानावरण लोभ है।

३ तनुमलसदृश—जो शरीर के मल के समान रंग वाला हो वह प्रत्याख्यानावरण लोभ है।

४ हरिद्रारागसदृश—जो हलदी के रंग के समान रंग वाला हो अर्थात् हलका होने से जल्दी छूट जाय वह संज्वलन लोभ है।

सूत्र—मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणानि ज्ञानावरणदेशघातीनि ॥१८॥

अर्थ—ज्ञानावरण देश घाती प्रकृतियां चार हैं।

१ मतिज्ञानावरण २ श्रुतज्ञानावरण ३ अवधिज्ञानावरण ४ मनःपर्ययज्ञानावरण ।

सूत्र—जीवपुद्गलक्षेत्रभवविपाकिनो विपाकिप्रकृतयः ॥१६॥

अर्थ—विपाकी प्रकृतियां चार है ।

१ जीवविपाकी २ पुद्गलविपाकी ३ क्षेत्रविपाकी ४ भवविपाकी ।

१ जीवविपाकी—जिस का फल जीव में हो ।

२ पुद्गलविपाकी—जिस का फल फुद्गल में हो ।

३ क्षेत्रविपाकी—जिस का फल क्षेत्र में हो ।

४ भवविपाकी—जिसका फल भव में हो ।

सूत्र—निम्बकांजीरविषहालाहलसदृशाः पापानुभागाः ॥२०॥

अर्थ—पापानुभाग चार प्रकार का है ।

१ निम्बसदृश २ कांजीरसदृश ३ विषसदृश ४ हालाहल ।

१ निम्बसदृश— नीम के समान कटुक रस वाला ।

२ कांजीरसदृश— कांजी के समान रस वाला ।

३ विषसदृश—विष के समान रस वाला ।

४ हालाहलसदृश—हालाहल के समान रस वाला ।

सूत्र—गुडखंडशर्करामृतसदृशाः पुण्यानुभागाः ॥२१॥

अर्थ—पुण्यानुभाग चार प्रकार का है ।

१ गुडसदृश २ खंडसदृश ३ शर्करासदृश ४ अमृतसदृश ।

गुडसदृश— गुड के समान मधुर रस वाला ।

२ खण्डसदृश— खांड के समान मधुर रस वाला ।

३ शर्करासदृश— शक्कर के समान मधुर रस वाला ।

४ अमृतसदृश— अमृत के समान मधुर रस वाला ।

सूत्र—आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ध्यानानि २२॥

अर्थ—ध्यान चार प्रकार का है ।

१ आर्तध्यान २ रौद्रध्यान ३ धर्म्यध्यान ४ शुक्लध्यान ।

१ आर्त्तध्यान—पीडारूपपरिणामों से होने वाला ध्यान

२ रौद्रध्यान—रुद्रता (क्रूरता) रूप परिणामों से होने वालाध्यान ।

३धर्म्यध्यान –धर्मयुक्त (शुभ) परिणामो से होने वाला ध्यान ।

४ शुक्लध्यान—शुद्ध परिणामों से होने वाला ध्यान ।

सूत्र—इष्टवियोगानिष्टसंयोगपीड़ाचिन्तननिदानान्यार्त्त ध्यानानि ॥२३॥

अर्थ—आर्त्तध्यान चार प्रकार का है ।

१ इष्टवियोगज २ अनिष्टसयोगज ३ पीडाचिन्तन ४ निदान ।

१ इष्टवियोगज—किसी प्रिय पदार्थ के वियोग से होने वाला ध्यान ।

२ अनिष्टसंयोगज—किसी अप्रिय पदार्थ के संयोग से होने वाला ध्यान ।

३ पीडाचिन्तन—किसी पीडा विशेष के चिन्तन से होने वाला ध्यान ।

४ निदान—आगामी काल में भोगों को प्राप्त करने की इच्छा रूप ध्यान ।

सूत्र—हिंसामृषाचौर्यविषयसंरक्षणानन्दनानि रौद्रध्यानानि ॥२४॥

अर्थ— रौद्रध्यान के चार भेद हैं ।

१ सिंहानन्दन २ मृषानन्दन ३ चौर्यानन्दन ४ विषयसंरक्षणानन्दन ।

१ हिंसानन्दन— हिंसा में आनन्द मानना ।

२ मृषानन्दन— झूठ बोलने में आनन्द मानना ।

३ चौर्यानन्दन— चोरी करने में आनन्द मानना ।

४ विषयसंरक्षणानन्दन— पञ्चेन्द्रिय के विषयों के संरक्षण में आनन्द मानना ।

सूत्र— आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयचिन्तनानि धर्म्य-ध्यानानि ॥२५॥

अर्थ—धर्म्यध्यान चार प्रकार का है ।

१ आज्ञाविचयचिन्तन २ अपायविचयचिन्तन ३ विपाकविचयचिन्तन ४ संस्थानविचयचिन्तन ।

१ आज्ञाविचयचिन्तन— जिनेन्द्रदेव की आज्ञा की मुख्यता से तत्त्व चिन्तन करना ।

२ अपायविचयचिन्तन— सन्मार्ग-मोक्षमार्ग को छोडकर उन्मार्ग-मिथ्यामार्ग पर चलने वाले ये प्राणी सन्मार्ग पर कैसे आयेगे ऐसा चिन्तन करना ।

३ विपाकविचयचिन्तन— कर्मों के फल का चिन्तन करना अर्थात् पाप कर्म के फल से जीव नारक आदि दुर्गति के दुःखों को भोगता है और पुण्य कर्म के उदय से देवादि उत्तमगति के सुखों को भोगता है । और ये दोनो हेय ऐसा चिन्तन करना ।

४ संस्थानविचयचिन्तन— लोक की रचना का विचार करना अर्थात् मध्यलोक में सप्त नरक हैं जहां यह जीव दुःखी होता है । मध्य लोक में मोक्ष के साधनापेयोगी क्षेत्रादिक का चिन्तन करना ।

ऊर्ध्वलोकमेंस्वर्गादिककीरचना का चिन्तन करना इत्यादि ।

सूत्र—पृथक्त्ववितर्कवीचारैकत्ववितर्कावीचार सूक्ष्मक्रिया प्रतिपातिव्युपरत क्रियानिवृत्तीनिशुक्लध्यानानि॥२६॥

अर्थ—शुक्लध्यान के चार भेद हैं ।

१ पृथक्त्ववितर्कवीचार २ एकत्ववितर्कअविचार ३ सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ४ व्युपरतक्रियानिवृत्ति ।

१ पृथक्त्ववितर्कवीचार—भिन्न भिन्न श्रुत का विषयभूत पदार्थ को छोड़कर पर्याय का चिन्तन पर्याय को छोड़ कर गुण का चिन्तन गुणों को छोड़ कर द्रव्य का चिन्तनात्मक ध्यान ।

२ एकत्ववितर्कवीचार—ऐसा ध्यान जिसमें साधु किसी एक का चाहे वह द्रव्य या गुण हो या पर्याय हो स्थिर हो कर चिन्तन करे ।

३ सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती—यह वह ध्यान है जो तेरहवें गुणस्थान के अन्त में अन्तर्मुहूर्त में काययोग का सूक्ष्म परिणमन होने से होता है ।

४ व्युपरतक्रियानिवृत्ति—यह ध्यान चौदहवें गुणस्थान में जब तीनों योगों का निरोध होने से निश्चल आत्मा में आत्मा आत्मरूप हो जाता है तब होता है ।

सूत्र—सत्यासत्योभयानुभयानां मनसां योगाःमनोयोगाः।।१७।।

अर्थ—मनोयोग चार प्रकार का है ।

१ सत्यमनोयोग २ असत्यमनोयोग ३ उभयमनोयोग ४ अनुभयमनोयोग ।

१ सत्यमनोयोग—सत्य मन की क्रिया से आत्मप्रदेश-परिस्पन्द ।

२ असत्यमनोयोग—असत्य मन की क्रिया से आत्म-प्रदेशपरिस्पन्द ।

३ उभयमनोयोग—उभय मन की क्रिया से आत्मप्रदेश परिस्पन्द ।

४ अनुभयमनोयोग—अनुभय मन की क्रिया से आत्म प्रदेशपरिस्पन्द ।

सूत्र—वचसांयोगा,वचनयोगाः ॥१८॥

अर्थ—वचनयोग भी चार प्रकार का है ।

१ सत्यवचनयोग २ असत्यवचनयोग ३ उभयवचन योग ४ अनुभयवचनयोग ।

१ सत्यवचनयोग—सत्यवचन की क्रिया से आत्मप्रदेश परिस्पन्द ।

२ असत्यवचनयोग—असत्यवचन की क्रिया से आत्म प्रदेश परिस्पन्द ।

३ उभयवचनयोग—उभयवचन की क्रिया से आत्मप्रदेश परिस्पन्द ।

४ अनुभयवचनयोग—अनुभयवचन की क्रिया से आत्म प्रदेशपरिस्पन्द ।

सूत्र—मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानानि क्षायोपशमिकज्ञानानि ॥१९॥

अर्थ—क्षायोपशमिकज्ञान चार प्रकार का है ।

१ मतिज्ञान २ श्रुतज्ञान ३ अवधिज्ञान ४ मनःपर्यय-ज्ञान ।

सूत्र—मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगा आस्रवाः ॥३०॥

अर्थ—आस्रव चार प्रकार का है ।

१ मिथ्यात्व २ अविरति ६ कषाय ४ योग ।

१ मिथ्यात्व—अतत्वश्रद्धान (आत्म प्रयोजनीभूत तत्वों का विपरीत श्रद्धान) ।

२ अविरति—षट् काय जीवो की रक्षा रूप परिणाम का न होना तथा पंचेन्द्रिय और मन को वश में नहीं करना ।

३ कषाय—क्रोधादि रूप आत्मपरिणतिका होना ।

४ योग—मन वचन काम के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में हलन चलन का होना ।

सूत्र—प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां वन्धाः ॥३१॥

अर्थ—वन्ध चार प्रकार का है ।

१ प्रकृतिवन्ध २ स्थितिवन्ध ३ अनुभागवन्ध ४ प्रदेशवन्ध ।

१ प्रकृतिवन्ध—कर्मों में ज्ञानादि गुणों के घातने का स्वभाव होना ।

२ स्थितवन्ध—कर्मों का आत्मा के साथ किसी निश्चित काल तक रहना ।

३ अनुभागवन्ध—कर्मों में फल दान शक्ति का होना ।

४ प्रदेशवन्ध—कर्म परमाणुओं का आत्मा के प्रदेशों में निश्चित संख्या में रहना ।

सूत्र—उत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्याश्च ॥३२॥

अर्थ—वन्ध के चार भेद हैं ।

१ उत्कृष्टवन्ध २ अनुत्कृष्टवन्ध ३ अजघन्यवन्ध ४ जघन्यवन्ध ।

१ उत्कृष्टवन्ध—उत्कृष्ट शक्ति सहित कर्मों के प्रदेशों के वन्ध को उत्कृष्टवन्ध कहते हैं ।

२ अनुत्कृष्टवन्ध—अनुत्कृष्ट शक्ति सहित कर्मों के प्रदेशों के वन्ध को अनुत्कृष्ट वन्ध कहते हैं ।

३ अजघन्यवन्ध—अजघन्य शक्ति सहित कर्मों के प्रदेशों के वन्ध को अजघन्य वन्ध कहते हैं ।

४ जघन्यवन्ध—जघन्य शक्ति सहित कर्मों के प्रदेशों के वन्ध को जघन्य वंध कहते हैं ।

सूत्र— देवगतिदेवगत्यानुपूर्व्यवैक्रियिकशरीरवैक्रियिकाङ्गोपाङ्गा देवचतुष्कम् ॥३३॥

अर्थ— देवचतुष्क से चार प्रकृतियों का ग्रहण करना चाहिये ।

१ देवगति २ देवगत्यानुपूर्व्य ३ वैक्रियिकशरीर ४ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग ।

सूत्र—वर्णरसगंधस्पर्शावर्णचतुष्कम् ३४॥

अर्थ— वर्णचतुष्क से चार प्रकृतियों का ग्रहण करना चाहिये ।

१ वर्ण २ रस ३ गंध ४ स्पर्श ।

१ वर्णनामकर्म २ रसनामकर्म ३ गंधनामकर्म ४ स्पर्शनामकर्म ।

सूत्र—अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासा अगुरुलघुचतुष्कम् ॥३५॥

अर्थ—अगुरुलघुचतुष्क से चार प्रकृतियों का ग्रहण करना चाहिये ।

१ अगुरुलघुनामकर्म २ उपघातनामकर्म ३ परघातनामकर्म ४ उच्छ्वासनामकर्म ।

सूत्र—मिथ्यात्वसासादनमिश्राविरत सम्यक्त्वान्यसंयम गुणस्थानानि ॥३६॥

अर्थ—असंयम के गुण स्थान चार हैं । १ मिथ्यात्व २ सासादन ३ मिश्र ४ अविरतसम्यक्त्व ।

सूत्र— सामायिकप्रोषधोपवासभोगोपभोगपरिमाणातिथि संविभागाः शिक्षाव्रतानि ॥३७॥

अर्थ—शिक्षाव्रत चार प्रकार का है । १ सामायिकशिक्षाव्रत २ प्रोषधोपवासशिक्षाव्रतः ३ भोगोपभोगपरिमाण शिक्षाव्रत ४ अतिथिसंविभागा-शिक्षाव्रत ।

१ सामायिकशिक्षाव्रत—विधिपूर्वक साम्यभाव की सिद्धि के लिये सामायिक करना सामायिक शिक्षाव्रत है।

२ प्रोषधोपवासशिक्षाव्रत—प्रत्येक अष्टमी तथा चतुर्दशी को प्रोषधपूर्वक उपवास करना प्रोषधोपवास शिक्षा व्रत है।

३ भोगोपभोगपरिमाण—भोग तथा उपभोग की वस्तुओं का परिमाण कर लेना शेष का त्यागना भोगोप-भोग परिमाण शिक्षाव्रत है।

४ अतिथिसंविभाग—अतिथियों के लिये आहारादि देने योग्य वस्तुओं का विभाग करना—अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत है।

सूत्र—देशव्रत सामायिकप्रोषधोपवासातिथिसंविभागा वा ॥३८॥

अर्थ—अथवा १ देशव्रत २ सामायिक ३ प्रोषधोपवास ४ अतिथिसंविभाग ये भी चार प्रकार का शिक्षा-व्रत है।

१ देशव्रत—दिग्व्रत में की गई मर्यादा में भी मर्यादित क्षेत्र के भीतर किसी देश तक जाने आने का परिणाम कर लेना देशव्रत है।

सूत्र—भोगपरिमाणोपभोगपरिमाणातिथिसंविभागसंल्ले-खनाश्च ॥३९॥

अर्थ–१ भोगपरिमाण (भोग योग्य वस्तुओं का परिमाण करना) ।

२ उपभोगपरिमाण—उपभोग योग्य वस्तुओं का परिमाण करना) ।

३ अतिथिसंविभाग ४ सल्लेखना (समता भावों से काय और कषायों को कृश करना) ।

सूत्र—ज्ञानदर्शनचारित्रतपसामाराधनाः ॥४०॥

अर्थ—आराधना चार प्रकार की है ।

१ ज्ञानाराधना २ दर्शनाराधना ३ चारित्राराधना ४ तप आराधना ।

१ ज्ञानाराधना–ज्ञान की आराधना (उपासना) करना ।

२ दर्शनाराधना–दर्शन की आराधना (उपासना) करना ।

३ चारित्राराधना—चारित्र की आराधना (उपासना) करना ।

१ तपआराधना—तप की आराधना (उपासना) करना ।

सूत्र—ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयान्तराया घातिकर्माणि ॥४१॥

अर्थ—घातिकर्म चार हैं । १ ज्ञानावरण २ दर्शनावरण ३ मोहनीय ४ अन्तराय ।

सूत्र—वेदनीयायुर्नामगोत्रण्यघातिकर्माणि ॥४२॥

अर्थ—अघातिकर्म चार हैं।

१ वेदनीय २ आयुः ३ नाम ४ गोत्र।

सूत्र—स्पर्शरसगन्धवर्णाःपुद्गलगुणाः ॥४३॥

अर्थ—१ स्पर्श २ रस ३ गन्ध ४ वर्ण ये चार पुद्गल द्रव्य के गुण हैं अर्थात् ये चारों पुद्गल में ही पाये जाते हैं अन्य द्रव्य में नहीं।

सूत्र—जीवधर्माधर्माकाशा अमूर्तास्तिकायाः ॥४४॥

अर्थ—अमूर्तास्तिकाय के चार भेद हैं।

१ जीवामूर्तास्तिकाय २ धर्मामूर्तास्तिकाय ३ अधर्मामूर्तास्तिकाय ४ आकाशामूर्तास्तिकाय।

सूत्र—भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिका देवाः ॥४५॥

अर्थ—देव चार प्रकार वाले हैं।

१ भवनवासी २ व्यन्तर ३ ज्योतिष्क ४ वैमानिक।

सूत्र—द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियास्त्रासाः ॥४६॥

अर्थ—त्रस जीव चार प्रकार के हैं। १ दो इन्द्रिय २ तीन इन्द्रिय ३ चार इन्द्रिय ४ पांच इन्द्रिय।

सूत्र—ऋजुपाणिमुक्तलांगलिकगोमूत्रिका विग्रहगतयः ॥४७॥

अर्थ—१ ऋजुगति २ पाणिमुक्तागति ३ लाङ्गलिकागति १ गोमूत्रिका गति।

सूत्र— जातिस्मरणोपदेशदेवर्द्धिजिनविम्बदर्शनानि-देव

सम्यग्दर्शनवाह्यसाधनानि ॥४८॥

अर्थ—देवों के सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का वाह्य साधन चार प्रकार का है ।

१ जातिस्मरण २ धर्मोपदेश ३ देवर्द्धिदर्शन ४ जिनविम्बदर्शन

सूत्र—पुंस्त्रीनपुंसकापगतवेदानां वेदमार्गणाः ॥४६॥

अर्थ—वेदमार्गणा के चार भेद हैं ।

१ पुम्वेदमार्गणा २ स्त्रीवेदमार्गणा ३ नपुंसकवेदमार्गणा ४ अपगतवेदमार्गणा ।

सूत्र—चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनानां दर्शनमार्गणाः ॥५०॥

अर्थ— दर्शनमार्गणा के चार भेद हैं ।

१ चक्षुर्दर्शनमार्गणा २ अचक्षुर्दर्शनमार्गणा ३ अवधिदर्शनमार्गणा ४ केवलदर्शनमार्गणा ।

सूत्र—आहारभयमैथुनपरिग्रहाःसञ्ज्ञाः ॥५१॥

अर्थ—सञ्ज्ञा के चार भेद हैं ।

१ आहारसंज्ञा २ भयसंज्ञा ३ मैथुनसंज्ञा ४ परिग्रहसंज्ञा ।

सूत्र—स्त्रीराष्ट्रभूपाशनानां कथा विकथाः ॥५२॥

अर्थ— विकथा के चार भेद हैं ।

१ स्त्रीकथा २ राष्ट्रकथा ३ भूपकथा ४ अशनकथा

सूत्र—आक्षेपिणीविक्षेपिणीसंवेगिनीनिर्वेदिन्यः कथाः ॥५३।

अर्थ—कथायें चार प्रकार की हैं ।

१ आक्षेपिणी २ विक्षेपिणी ३ संवेगिनी ४ निर्वेदिनी ।

२ विक्षेपिणीकथा—परमतकार खंडन करने वाली कथा ।

सूत्र—स्पर्शनेन्द्रियकायबलायुरुच्छासाःपर्याप्तैकेन्द्रियप्राणाः ॥५४॥

अर्थ—पर्याप्तएकेन्द्रिय जीव के चार प्राण होते हैं ।

१ स्पर्शनेन्द्रिय २ कायबल ३ आयु ४ उच्छ्वास ।

सूत्र—स्पर्शनरसनेन्द्रियकायबलायूंष्यपर्याप्तद्वीन्द्रियप्राणाः ॥५५॥

अर्थ— १ स्पर्शनेन्द्रिय २ रसनेन्द्रिय ३ कायबल ४ आयु ये चार प्राण अपर्याप्त दो इन्द्रिय जीव के होते हैं ।

सूत्र—बादरसूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्ताएकेन्द्रिय जीवसमासाः ॥५६॥

अर्थ—एकेन्द्रिय जीव समास के चार भेद हैं ।

१ बादरएकेन्द्रियपर्याप्त २ बादरएकेन्द्रियअपर्याप्त ३ सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्त ४ सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्त ।

सूत्र—संज्ञ्यसंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्ताःपंचेन्द्रिय जीवसमासाः ॥५७॥

अर्थ— १ संज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्त २ संज्ञीपञ्चेन्द्रिय-अपर्याप्त ३ असंज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्त ४ असंज्ञीपञ्चे-

न्द्रियअपर्याप्त । ये चार पञ्चेन्द्रिय जीव समान हैं ।

सूत्र—प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्यानि सम्यक्त्वचिह्नानि ॥५८॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन के चार चिन्ह हैं ।

१ प्रशम २ संवेग ३ अनुकम्पा ४ आस्तिक्य ।

१ प्रशम—कषायों की मन्दता का होना ।

२ संवेग—दुःख पूर्ण संसार भाव से भयभीत रहना ।

३ अनुकम्पा दुःखियों पर दया रूप परिणामों का होना ।

४ आस्तिक्य—लोक परलोक आत्मा परमात्मा आदि में श्रद्धा रूप परिणामों का होना ।

सूत्र—सूच्युत्सेधप्रमाणात्मांगुलान्यंगुलानि ॥५९॥

अंगुल चार प्रकार के है

अर्थ—१ सूच्यंगुल २ उत्सेधांगुल ३ प्रमाणांगुल ४ आत्मांगुल ।

१ सूच्यंगुल—अद्धा पल्य के अर्द्ध च्छेदों को फैला कर प्रत्येक पर अद्धा पल्य लिखकर परस्पर गुणा करने से जोराशिहो उसे सूच्यंगुल कहते हैं ।

२ उत्सेधांगुल—आठ बालों की मुटाई की एक लीख आठलीख का एक सरसों आठ सरसों का एक जब और आठ जब का एक उत्सेधाङ्गुल होता है उत्सेधांगुल से

चारगति के जीवों का शरीर देवों के नगर वा मन्दिरादि का परिमाण होता है ।

३ प्रमाणांगुल—उत्सेधांगुल से ५०० पांच सौ गुणा प्रमाणांगुल होता है ।

४ आत्मांगुल—जिस समय जो मनुष्य हों उस समय उन मनुष्यों के अंगुल को आत्मांगुल कहते हैं ।

सूत्र—ज्ञानदर्शनचारित्रोपचारा विनयाः ॥६०॥

अर्थ—विनय चार प्रकार की है ।

१ ज्ञानविनय २ दर्शन विनय ३ चारित्र विनय ४ उपचार विनय ।

१ ज्ञानविनय—मोक्ष के हेतु ज्ञान का आदर करना ।

२ दर्शनविनय—शंकरादि दोष रहित सम्यक्त्वपालन करना ।

३ चारित्रविनय—निर्दोष चारित्र का पालन करना ।

४ उपचार विनय—आचार्यादि पूज्य पुरुषों को हाथ जोड़ना आदि ।

सूत्र—वचनकायबलायुरुच्छ्वासाः सयोगजिनप्राणाः ॥६१॥

अर्थ—सयोग केवली के चार प्राण होते हैं ।

१ वचनबलप्राण २ कायबलप्राण ३ आयु ४ उच्छ्वास ।

सूत्र—करजानवश्चतुरंगनमस्काराङ्गाः ॥६२॥

अर्थ—चतुरंगनमस्कार के अङ्ग चार हैं।

२ हाथ २ घुटने।

सूत्र—पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरा दिशः ॥६३॥

अर्थ—दिशा चार हैं।

१ पूर्व २ दक्षिण ३ पश्चिम ४ उत्तर।

१ पूर्वदिशा—जिस ओर से सूर्य का उदय होता है वह पूर्व दिशा है।

२ दक्षिणदिशा—पूर्व की ओर मुंह करके खड़े होने पर जिस ओर दाहिना हाथ हो वह दक्षिण दिशा है।

३ पश्चिमदिशा—जिस ओर सूर्य का अस्त हो अथवा पूर्व के सामने पश्चिमदिशा होती है।

४ उत्तरदिशा—पूर्व की ओर मुंह करके खड़े होने पर जिस ओर बांया हाथ हो वह उत्तरदिशा है।

सूत्र—ईशानाग्नेयनैभृत्यवायव्या विदिशः ॥६४॥

अर्थ—विदिशा चार हैं।

१ ईशान २ आग्नेय ३ नैभृत्य ४ वायव्य।

१ ईशान—उत्तर और पूर्व दिशा के मध्य ईशान दिशा है।

२ आग्नेय-पूर्व और दक्षिण दिशा के मध्य आग्नेय विदिशा है।

३ नैऋत्य-दक्षिण और पश्चिम के मध्य नैऋत्यविदिशा है।

४ वायव्य–पश्चिम और उत्तर के मध्य वायव्य विदिशा है ।

सूत्र—अतिक्रमव्यतिक्रमातिचारानाचारा दोषाः ॥६५॥

अर्थ– दोष चार प्रकार के होते हैं ।

१ अतिक्रम २ व्यतिक्रम ३ अतिचार ४ अनाचार

१ अतिक्रम– मानसिक निर्मलता में क्षति होना ।

२ व्यतिक्रम—शील और व्रतों में कुछ उल्लंघन होना ।

३ अतिचार– विषयों में कदाचित् कुछ प्रवृत्ति होना ।

४ अनाचार—विषयों में अत्यन्त आसक्तता होना ।

सूत्र—प्राक्प्रध्वंसान्योन्यात्यन्ताभावा अभावाः ॥६६॥

अर्थ—अभाव के चार भेद हैं ।

१ प्रागभाव २ प्रध्वंसाभाव ३ अन्योन्याभाव ४ अत्यन्ताभाव ।

१ प्रागभाव– वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में अभाव जैसे मिट्टी के पिण्ड में घट का अभाव ।

२ प्रध्वसाभाव—आगामी पर्याय में वर्तमान पर्याय का अभाव जैसे कपाल (ठीकरी) में घट का अभाव ।

३ अन्योन्याभाव—पुद्गल द्रव्य की एक वर्तमान पर्याय में दूसरे पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्याय का न होना, जैसे घट में पट का व पट में घट का अभाव ।

४ अत्यन्ताभाव– एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अभाव,

जैसे जीव में पुद्गल का अभाव ।

सूत्र—साद्यनादिध्रुवाध्रुवाः प्रकृतिबन्धाः ॥६७॥

अर्थ– प्रकृतिबन्ध चार प्रकार का है ।

१ सादिप्रकृतिबन्ध २ अनादिप्रकृतिबन्ध ३ ध्रुव-प्रकृतिबन्ध ४ अध्रुवप्रकृतिबन्ध ।

१ सादिप्रकृतिबन्ध—किसी कर्म प्रकृति का बन्ध रुक गया हो पुनः बन्ध हो उसे सादिबन्ध ।

२ अनादिबन्ध—जिस जाति की कर्म प्रकृति का धारा-प्रवाहबन्ध चला आ रहा हो ।

३ ध्रुवबन्ध– । ४ अध्रुवबन्ध ।

सूत्र— खाद्यस्वाद्यलेह्यपेयान्यशनानि ॥६८॥

अर्थ— अशन (आहार) चार प्रकार का है ।

१ खाद्य २ स्वाद्य ३ लेह्य ४ पेय ।

१ खाद्य— खाने योग्य वस्तुएं जिनसे उदरपूर्ति की जाती हो जैसे दाल भात रोटी आदि ।

२ स्वाद्य— स्वाद लेने योग्य मोदक मेवा इलायची पान इत्यादि वस्तुएं ।

३ लेह्य– चाटने योग्य चीजें जैसे रवड़ी मलाई वगैरह ।

४ पेय– पीने योग्य पानी शरबत दुग्धादि ।

सूत्र—विनयानुभाषणानुपालनभावविशुद्धयोऽनुपालनाशु-द्धयः ॥६९॥

अर्थ—अनुपालनाशुद्धि चार प्रकार की है ।

१ विनयानुपालनाशुद्धि २ अनुभाषणशुद्धि ३ अनु-पालनशुद्धि ४ भावशुद्धि ।

१ विनय ।

२ अनुभाषण ।

३ अनुपालन ।

४ भावशुद्धि ।

सूत्र —उद्दिष्टसमुद्दिष्टादिष्टसमदिष्टाऔद्देशिकाः ॥७०॥

अर्थ– औद्देशिकदोष चार प्रकार के हैं ।

१ उद्दिष्ट २ समुद्दिष्ट ३ आदिष्ट ४ समादिष्ट ।

१ उद्दिष्ट– सर्व के उद्देश से बनाई गई वस्तु ।

२ समुद्दिष्ट– पाखंडियों के उद्देश से बनाई गई वस्तु

३ अनुपालन– पार्श्वस्थ आदि मिथ्या साधुओं के उद्दे-श्य से बनाई वस्तु ।

४ समादिष्ट— साधुओं के उद्देश से बनाई हुई वस्तु ।

सूत्र— रजस्वलाशुष्कचर्मास्थिहिंसकस्पर्शाःस्पर्शनान्तराया : ॥७१॥

अर्थ— १ रजस्वलास्पर्श रजोवती स्त्री का स्पर्श अन्त-राय हैं ।

२ शुष्कचर्मस्पर्शसूखे चमड़े का स्पर्श अन्तराय है ।

३ अस्थिस्पर्श—अस्थि (हड्डी) का स्पर्श अन्तराय है ।

४ हिंसकस्पर्श — हिंसक का स्पर्श अन्तराय है ।

सूत्र—सन्निषेधकासत्प्रतिपादकविहरीत निन्धवचनान्यसत्य-वचनानि ॥७२॥

अर्थ—असत्य वचन चार प्रकार का है ।

१ सन्निषेधक २ असत्प्रतिपादक ३ विरीत ४ निन्द्य

१ सन्निषेधक— विद्यमान पदार्थ का निषेध करने वाला वचन ।

२ असत्प्रतिपादक— अविद्यमान पदार्थ को कहने वाला वचन ।

३ विपरीत—विपरीत उल्टे अर्थ को कहने वाला वचन ।

४ निन्दा—निन्दा योग्य वचन- निन्दा को कहने वाला वचन ।

सूत्र—ततविततघनसुषिराः प्रायोगिक शब्दाः ॥७३॥

अर्थ—प्रायोगिक शब्द चार प्रकार का है ।

१ तत २ वितत ३ घन ४ सुषिर ।

१ तत—चमड़े से मढ़े हुए बाजों का शब्द ।

२ वितत—तार आदि वाले सारंग सितार आदि के शब्द ।

३ घन—झाझ घण्टा आदि बाजों का शब्द ।

४ सुषिर—बासुरी आदि का शब्द ।

सूत्र—स्वपरग्राम देशागताः सर्वाभिघटाः ॥७४॥

अर्थ—सर्वाभिघट चार प्रकार के हैं।

१ स्वग्रामागत २ परग्रामागत ३ स्वदेशागत ४ परदेशागत।

१ स्वग्रामागत—अपने ग्राम से आई हुई वस्तु का देना।
२ परग्रामागत—पर ग्राम से आई हुई वस्तु को देना।
३ स्वदेशागत—अपने देश से आई हुई वस्तु को देना।
४ परदेशागत—परदेश से आई हुई वस्तु को देना।

सूत्र—गणधरप्रत्येकबुद्धश्रुतकेवल्यभिन्नदशपूर्वकथितान्य-भिन्नदशपूर्वसूत्राणि ॥७५॥

अर्थ—अभिन्नदशपूर्वसूत्र चार प्रकार के हैं।

१ गणधरकथित २ प्रत्येकबुद्धकथित ३ श्रुतकेवलिकथित ४ अभिन्नदशपूर्वकथित।

१ गणधरकथित—गणधर द्वारा कहे गये।
२ प्रत्येकबुद्धकथित— प्रत्येकबुद्ध के द्वारा कहे गये।
३ श्रुतकेवलिकथित—श्रुतकेवली द्वारा कहे गये।
४ अभिन्नदशपूर्वकथित—अभिन्नदशपूर्व द्वारा कहे गये।

सूत्र—गृहस्थब्रह्मचर्यवानप्रस्थसन्यासा आश्रमाः ॥७६॥

अर्थ—आश्रम चार प्रकार के हैं।

१ गृहस्थाश्रम २ ब्रह्मचर्याश्रम ३ वानप्रस्थाश्रम ४ सन्यासाश्रम।

१ गृहस्थाश्रम— जहां स्त्री सहित रह कर धर्म अर्थ काम

पुरुषार्थ सेवन हो ।

२ ब्रह्मचर्याश्रम—जहां बालक अवस्था से युवा अवस्था तक पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहकर विद्याभ्यास हो ।

६ वानप्रस्थाश्रम—सप्तमी प्रतिमा धारी नैष्ठिक ब्रह्मचारी से लेकर ११वीं प्रतिमा धारी व्रती ।

४ सन्यासाश्रम—जहां सर्वपरिग्रह का त्याग हो ।

सूत्र—क्लेशतिर्यग्वाणिज्यवधारंभोपदेशाः पापोपदेशाः ॥७७॥

अर्थ—पापोपदेश चार प्रकार का है ।

१ क्लेशवाणिज्योपदेश २ तिर्यग्वाणिज्योपदेश ३ वधोपदेश ४ आरम्भोपदेश ।

१ क्लेशवाणिज्योपदेश—क्लेश को देने वाले व्यापार का उपदेश देना ।

२ तिर्यग्वाणिज्योपदेश—तिर्यञ्चों-पशुओं से व्यापार करने का उपदेश देना ।

३ वधोपदेश—पशु आदिकों को मारने का उपदेश देना ।

४ आरम्भोपदेश—खेती आदि के आरम्भ का उपदेश देना ।

सूत्र—संकल्पारम्भोद्यमविरोधजाहिंसाः ॥७८॥

अर्थ—हिंसा चार प्रकार की है ।

१ संकल्पजा २ आरम्भजा ३ उद्यमजा ४ विरोधजा।

१ संकल्पजा—संकल्प-इरादा से की गई हिंसा।

२ आरम्भजा—आरम्भ से की जाने वाली हिंसा।

३ उद्यमजाहिंसा—उद्यम से की जाने वाली हिंसा।

४ विरोधजाहिंसा—विरोध से की जाने वाली हिंसा।

सूत्र—प्रकाशमार्गालम्बनोपयोगशुद्ध्यईर्यापिथशुद्धयः ॥७६॥

अर्थ—ईर्यापथशुद्धि चार प्रकार की है।

१ प्रकाशशुद्धि २ मार्गशुद्धि ३ आलम्बनशुद्धि ४ उपयोगशुद्धि।

१ प्रकाशशुद्धि—सूर्य का प्रकाश होना।

२ मार्गशुद्धि—मार्ग का निर्जन्तुक होना।

३ आलम्बनशुद्धि—उद्देश उत्तम होना।

४ उपयोगशुद्धि—निर्मलभावपूर्वक गमन करना।

सूत्र—विशेषभोजनदर्शनाहारस्मरणरिक्तोदरासातोदरणातीव्रोदया आहार संज्ञाबाह्यहेतवः ॥८०॥

अर्थ—आहार सञ्ज्ञा के बाह्य हेतु चार हैं।

१ विशेषभोजनदर्शन २ आहारस्मरण ३ ऊनोदर ४ असातोदीरणातीव्रोदय।

१ विशेषभोजन दर्शन—विशेषभोजन की चीजों का देखना

२ आहार स्मरण—स्वादिष्टभुक्त आहार का स्मरण करना।

३ ऊनोदर—पेट का खाली होना।

४ असातोदीरणतीव्रोदय—असाता की उदीरणा और असाता का तीव्रोदय ।

सूत्र—संयोजनाप्रमाणांगारधूमा अशनस्फुटदोषाः ॥८१॥

अर्थ—भोजन के स्फुट दोष चार हैं ।

१ संयोजना २ प्रमाण ३ अङ्गार ४ धूम ।

१ संयोजना—परस्पर विशुद्ध शीत तथा उष्ण भोजन का मिला देना ।

२ प्रमाण—प्रमाण से अधिक भोजन करना ।

३ अङ्गार—गृद्धि से भोजन करना ।

४ धूम—भोजन की और दातार की निन्दा करना ।

सूत्र—उत्थितोत्थितोत्थितोपविष्टोपविष्टोत्थितोपविष्टोविष्टाः कायोत्सर्गाः । ॥८२॥

अर्थ—कायोत्सर्ग चार प्रकार का है ।

१ उत्थितोत्थित २ उत्थितोपविष्ट ३ उपविष्टोत्थित ४ उपविष्टोपविष्ट ।

१ उत्थितोपविष्ट—ऊंचे भाव सहित खड्गासन से ध्यान करना ।

२ उत्थितोपविष्ट—ऊंचे भाव सहित पद्मासन से ध्यान करना ।

३ उपविष्टत्थित—नीचे भाव सहित खड्गासन से ध्यान करना ।

४ उपविष्टोपविष्ट—नीचे भाव सहित खड्गासन से ध्यान करना।

सूत्र—राजब्रह्मदेवपरमर्षयऋ षयः ॥८३॥

अर्थ—ऋषि चार प्रकार के हैं।

१ राजर्षि २ ब्रह्मर्हि, देवर्षि, परमर्षि।

१ राजर्षि—जिनको विक्रिया या अक्षीण ऋद्धि हो।

२ ब्रह्मर्षि—जिनकों बुद्धि वा औषध ऋद्धि हो।

३ देवर्षि—जिनको आकाश गामिनी विद्या हो।

४ परमर्षि—जिनके केवल ज्ञान हो ऐसे अरहन्त।

सूत्र—ऋषि यतिमुन्यनगाराः साधवः ॥८४॥

अर्थ—साधु चार प्रकार के हैं।

१ ऋषि २ यति ३ मुनि ४ अनगार।

१ ऋषि—जिन्हें ऋद्धियां सिद्ध हों।

२ यति—उपशमक वा क्षपक श्रेणि पर आरूढ़मुनि।

३ मुनि—अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी केवलज्ञानी।

४ अनगार—गृहादि परिगृहत्यागीमुनि।

सूत्र- सत्वमैत्रीगुणिप्रमोदक्लिष्टकृपाविपरीतमाध्यस्थानि-भावनाः ॥८५॥

अर्थ—भावना चार प्रकार की है।

१ सत्त्वमैत्री २ गुणिप्रमोद ३ क्लिष्टकृपा ४ विपरीतमाध्यस्थ्य।

१ सत्त्वमैत्री— प्राणीमात्र में मित्रता का भाव होना ।
२ गुणिप्रमोद— गुणियों में प्रमोद भाव का होना ।
३ क्लिष्टकृपा— दुःखियों पर दया भाव रखना ।
४ विपरीतमाध्यस्थ्य—विपरीत-कुमार्ग पर चलने वालों में मध्यस्थ्य भाव होना ।

सूत्र —दण्डकपाटप्रतरलोकपूरणसमुद्घाताः केवलिसमुद्घाताः ॥८६॥

अर्थ —केवलिसमुद्घात चार प्रकार का है ।

१ दंड— जिस समुद्घात में आत्मप्रदेश राजु १४ ऊंचे नीचे दंडाकार हों ।
२ कपाट —जिसमें आत्मप्रदेश कपाटाकार हो ।
३ प्रतर—जिसमें आत्मप्रदेश सर्वलोक व्यापी हो वात वलय को छोड़ ।
४ लोकपूरण—जिसमें आत्मप्रदेश सर्वलोक व्यापी हो ।

सूत्र—दयापात्रसमसर्वदत्तयो दानानि ॥८७॥

अर्थ—दान चार प्रकार का है ।

१ दयादत्ति २ पात्रदत्ति ३ समदत्ति ४ सर्वदत्ति ।
१ दयादत्ति—दयनीय प्राणी को दया पूर्णभाव से दान देना ।
३ समदत्ति—समान जाति वालों को दान देना ।
४ सर्वदत्ति—सभी को (पुत्र आदि को) सर्व परिग्रह

का दान देना ।

सूत्र—आहारौषधिज्ञानभयदानानि च ॥८८॥

अर्थ—दान के चार भेद ये भी हैं ।

१ आहारदान २ औषधदान ३ ज्ञानदान ४ अभयदान ।

१ आहारदान—पात्रों को भक्ति पूर्वक तथा दुःखियों को चारों प्रकार का आहार देना ।

२ ओषधिदान—रोगियों को औषधि का देना ।

३ ज्ञानदान—ज्ञान का दान देना अर्थात् अज्ञानीजनों के अज्ञान को दूर करना ।

४ अभयदान—जीवन दान देना ।

सूत्र—विघ्ननाशशिष्टाचारपालननास्तिकतापरिहारोपकार-स्मरणानि मंगलप्रयोजनानि ॥८९॥

अर्थ—मंगल के चार प्रयोजन हैं ।

१ विघ्ननाश २ शिष्टाचार पालन ३ नास्तिकतापरिहार ४ उपकार स्मरण ।

१ विघ्ननाश—उत्तम कार्यों में आने वाले विघ्नों का नाश ।

२ शिष्टाचार पालन—महापुरुषों के व्यवहार का पालन ।

३ नास्तिकपरिहार—नास्तिकता दोष का दूर करना ।

४ उपकार स्मरण—किये हुए उपकार का स्मरण करना ।

सूत्र—सत्यासत्योभयानुभयानि वचनानि ॥९०॥

अर्थ—वचन चार प्रकार के हैं।

१ सत्यवचन २ असत्यवचन ३ उभयवचन ४ अनुभय वचन।

१ सत्यवचन—हितकारीवचन व यथार्थ वचन।

२ असत्यवचन—अहितकर वचन अयथार्थ वचन।

३ उभयवचन—उक्त दोनों प्रकार के वचन।

४ अनुभयवचन— जो न सत्य हो न असत्य हो अर्थात् बुलाने आदि के वचन।

सूत्र—इन्द्रियवेदनाकषायनोकषायवशार्तमरणानिवशार्तमरणानि ॥६१॥

अर्थ—वशार्तमरण चार प्रकार के हैं।

१ इन्द्रियवशार्तमरण २ वेदनावशार्तमरण ३ कषायवशार्तमरण ४ नोकषायवशार्तमरण।

१ इन्द्रियवशार्तमरण— इन्द्रियों के वश आर्तध्यान से मरण करना।

२ वेदनावशार्तमरण— वेदना के वश से आर्तध्यान से मरण करना।

३ कषायवशार्तमरण— कषाय के वशीभूत हो आर्तध्यान से मरण करना।

४ नोकषायवशार्तमरण— नोकषाय के वशीभूत हो आर्तध्यान से मरण करना।

सूत्र- फलेक्षुधान्यरसगोरसाविकारिरसाः ॥९२॥
अर्थ- विकार को उत्पन्न करने वाले चार रस हैं।
१ फलरस २ इक्षुरस ३ धान्यरस ४ गोरस।
१ फलरस- आम्र अनार शन्तरा आदि फलों का रस।
२ इक्षुरस- ईख के रस को इक्षुरस कहते हैं।
३ धान्यरस- चावल आदि अन्न के रस को धान्यरस कहते हैं।
४ गोरस- गाय के दुग्ध आदि को गोरस कहते हैं।
सूत्र- असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्कराहेत्वाभासाः ॥९३॥
अर्थ- हेत्वाभास चार प्रकार का है।
१ असिद्ध २ विरुद्ध ३ अनैकान्तिक ४ अकिञ्चित्कर
१ असिद्धहेत्वाभास- जो हेतु असिद्ध हो वह असिद्ध-हेत्वाभास है।
२ विरुद्धहेत्वाभास- जो हेतु साध्य से विरुद्ध को सिद्ध करे वह विरुद्धहेत्वाभास है।
३ अनैकान्तिकहेत्वाभास- जो हेतु सपक्ष तथा विपक्ष दोनों में रहे वह अनैकान्तिनेहेत्वाभास है।
४ अकिञ्चित्करहेत्वाभास- जो हेतु साध्य की सिद्धि में अकिञ्चित्कर हो अर्थात् कुछ भी न कर सकता हो वह अकिञ्चित्करहेत्वाभास है।
सूत्र- साध्यसाधनोभयविकलातिप्रसंगाअन्वयदृष्टान्ताभा-

सा: ॥६४॥

अर्थ— अन्वयदृष्टान्ताभास चार प्रकार का है ।

१ साध्यविकल २ साधनविकल ३ उभयविकल ४ अतिप्रसंग ।

१ साध्यविकल— जिस दृष्टान्त में साध्य न हो ।

२ साधनविकल— जिस दृष्टान्त में साधन न हो ।

३ उभयविकल— जिस दृष्टान्त में साध्य और साधन दोनों न हों ।

४ अतिप्रसंग— जिस दृष्टान्त में विपरीत अन्वय आदि हों ।

सूत्र— व्यतिरेकदृष्टान्ताभासश्च ॥६५॥

अर्थ— व्यतिरेकदृष्टान्ताभास भी चार प्रकार का है ।

१ साध्यविकल २ साधनविकल ३ उभयविकल ४ अतिप्रसग ।

सूत्रार्थ १ साध्यविकल— जिस दृष्टान्त में साध्य न हो ।

२ साधनविकल— जिस दृष्टान्त में साधन न हो ।

३ उभयविकल— जिस दृष्टान्त में साध्य तथा साधन दोनों न हों ।

४ अतिप्रसंग— जिस दृष्टान्त में विपरीत व्यतिरेक आदि हों ।

सूत्र— स्थलहनभश्चरपर्याप्तनिवृत्त्यपर्याप्ता भोगभूमिजप-

श्चेन्द्रियतिर्यग्जीवसमासाः ॥६६॥

अर्थ—भोगभूमिजपञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवसमास चार प्रकार का है ।

१ स्थलचरपर्याप्त २ स्थलचरनिवृत्यपर्याप्त ३ नभचरपर्याप्त ४ नभचरनिवृत्यपर्याप्त ।

सूत्र— सुकुभोगभूमिजस्थलनभश्चरपर्याप्ता वा ॥६७॥

अर्थ— अथवा सुभोगभूमिजकुभोगभूमिजपञ्चेन्द्रिय तिर्यंच जीव समास चार प्रकार का है ।

१ सुभोगभूमिजस्थलचरपर्याप्त ।

२ सुभोगभूमिजनभचरपर्याप्त ।

३ कुभोगभूमिजस्थलचरपर्याप्त ।

४ कुभोगभूमिजनभचरपर्याप्त ।

सूत्र—आर्यगर्भजपर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तौसम्मूर्च्छन लब्ध्यपर्याप्तम्लेच्छपर्याप्तनिवृत्यपर्याप्ताकर्मभूमिजमनुष्यजीवसमासाः ॥६८॥

सूत्र—सुकुभोगभूमिजमनुष्यपर्याप्तनिवृत्यपर्याप्ताभोगभूमिज मनुष्यजीवसमासाः ॥६९॥

अर्थ—भोगभूमिज मनुष्य जीव समास चार का प्रकार है ।

१ सुभोगभूमिज पर्याप्त मनुष्य २ सुभोगभूमिज निवृत्य पर्याप्त मनुष्य ३ कुभोगभूमिज पर्याप्त मनुष्य ४ कुभोग भूमिजनिवृत्यपर्याप्त मनुष्य ।

सूत्र—प्रथमकरणचरणद्रव्यानुयोगाअनुयोगाः ॥१००॥

अर्थ—अनुयोग चार प्रकार के हैं।

१ प्रथमानुयोग २ करणानुयोग ३ चरणानुयोग ४ द्रव्यानुयोग।

१ प्रथमानुयोग—जिसमें त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का चरित्र वर्णित हो।

२ करणानुयोग—जिसमें लोक और अलोक के विभाग का तथा युगों के परिवर्तन आदि का वर्णन हो।

३ चरणानुयोग—जिसमें ग्रहस्थ धर्म तथा मुनि धर्म का वर्णन हो।

४ द्रव्यानुयोग—जिसमें षड् द्रव्यों के स्वरूप का वर्णन हो।

सूत्र— कांक्षापिपासामहाकांक्षातिपिपासाःसीमन्तदिग्बिलनामानि ॥१०१॥

अर्थ—सीमन्त इन्द्रकबिल की चारों दिशाओं के बिलों के नाम।

१ कांक्षा २ पिपासा ३ महाकांक्षा ४ अति पिपासा।

सूत्र—अनिच्छाऽविद्या महानिच्छामहाविद्यास्ततक दिग्बिल नामानि ॥१०२॥

अर्थ—ततक इन्द्रक बिल की चारों दिशाओं के चार बिल हैं।

१ अनिच्छा २ अविद्या ३ महानिच्छा ४ महाविद्या ।

सूत्र—दुःखावेदा महादुःखामहावेदास्तप्तेन्द्रक दिग्बिल-
नामानि ॥१०३॥

अर्थ—तप्तेन्द्रक बिल की चारों दिशाओं के चार बिलों के नाम ।

१ दुःखा २ वेदा ३ महादुःखा ४ महावेदा ।

सूत्र—निसृष्टानिरोधाऽनिसृष्टामहानिरोधा आरेन्द्रकदिग्बिल
नामानि ॥१०४॥

अर्थ—आरेन्द्रक इन्द्रक बिल की चारों दिशाओं के चार बिलों के नाम ।

१ निःसृष्टा २ निरोधा ३ अनिसृष्टा ४ महानिरोधा ।

सूत्र— निरुद्धविमर्दनानिनिरुद्धमराविमर्दनानितमकेन्द्रक
दिग्बिलनामानि ॥१०५॥

अर्थ—तमककेन्द्रक बिल की चारों दिशाओं के चार बिलों के नाम ।

१ निरुद्ध २ विमर्दन ३ अतिनिरुद्ध ४ महाविमर्दन ।

सूत्र— नीलापङ्कामहानीलामहापङ्काहिमकेन्द्रकदिग्बिलानि
॥१०६॥

अर्थ—हिमकेन्द्रक बिल की चारों दिशाओं के चार बिलों के नाम ।

१ नीला २ पङ्का ३ महानीला ४ महापङ्का ।

सूत्र—काल रौरवकमहाकालमहारौरवामाघवीदिग्विलानि ।

अर्थ—माघवीपृथ्वी की दिशाओं के चार बिलों के नाम ।

१ काल २ रौरव ३ महाकाल ४ महारौरव ।

सूत्र—इन्द्रकदिग्विलविदिग्विलप्रकीर्णकानि विलानि ॥१०८॥

अर्थ—बिल चार प्रकार के हैं ।

१ इन्द्रक बिल २ दिग्विल ३ विदिग्विल ४ प्रकीर्णक बिल ।

सूत्र— मानुषोत्तरस्वयम्प्रभकुण्डरुचिकगिरयोद्वीपमध्यपरिक्षेपिपर्वताः ॥१०९॥

अर्थ—द्वीपमध्यपरिक्षेपि पर्वतों की संख्या चार है ।

१ मानुषोत्तर २ स्वयंप्रभ ३ कुण्डल ४ रूचिक ।

सूत्र—चन्द्राभासुषीमाप्रभंकरार्चिमालिन्यश्चन्द्रमुख्य देव्यः ॥११०

अर्थ—चन्द्रभा की मुख्य देवियां चार है ।

१ चन्द्रमा २ सुषीमा ३ प्रभंकरा ४ अर्चिमालिनी ।

सूत्र—द्युतिसूर्यप्रभाप्रभंकरार्चिमालिन्यः सूर्यमुख्यदेव्यः ॥१११॥

अर्थ—सूर्य की मुख्य देवियां चार हैं ।

१ द्युति २ सूर्यप्रभा ३ प्रभंकरा ४ अर्चिमालिनी ।

सूत्र—वैडूर्यरजताशोकमृषत्कासाराह्वाणिस्वर्गदक्षिणेन्द्रदिग्विमानानि ॥११२॥

अर्थ—स्वर्गों में दक्षिण दिशा के इन्द्रों के दिग्वर्तीविमानों

के नाम।

१ वैडूर्य २ रजत ३ अशोक ४ मृषत्कासार।

सूत्र—रूचिकमन्दराशोकसप्तच्छदाह्वानिस्वर्गोत्तरेन्द्रदिग्विमा-
नानि ॥११३॥

अर्थ—स्वर्गों में उत्तर दिशा के इन्द्रों के दिग्वर्तीविमानों के नाम।

१ रूचिक २ मन्दर ३ अशोक ४ सप्तच्छद।

सूत्र— कामाकामिनीपद्मगन्धालंवूषाः कल्पेन्द्रगणिकामहत्तरी
पुर्यः ॥११४॥

अर्थ—कल्पेन्द्र गणिका महत्तरियों की नगरियों के नाम।

१ कामा २ कामिनी ३ पद्मगन्धा ४ अलंवूषा।

सूत्र—भद्रशालनन्दनसौमनसपाण्डुकवनानिमेरुवनानि ॥११५॥

अर्थ—सुमेरुपर्वत के वनों के नाम।

१ भद्रशालवन २ नन्दनवन ३ सौमनसवन ४ पाण्डु-
कवन।

सूत्र— मानीचारणगन्धर्वचित्राणिनन्दनवनस्थितभवनानि
॥११६॥

अर्थ—नन्दनवन वर्तीभवनों के नाम।

१ मानीभवन २ चारणभवन ३ गन्धर्वभवन ४ चित्र
भवन।

सूत्र—वज्रवज्रप्रभसुवर्णसुवर्णप्रभाणिसौमनवनस्थ भवनानि ॥११७॥

अर्थ—सौमनसवनवर्तीभवनों के नाम ।

१ वज्र २ वज्रप्रभ ३ सुवर्ण ४ सुवर्णप्रभ ।

सूत्र— लोहिताञ्जवहारिद्रपाण्डुराणिपाण्डुकवनस्थ भवनानि ॥११८॥

अर्थ—पाण्डुकवनवर्ती भवनों के नाम ।

१ लोहित २ आञ्जव ३ हारिद्र ४ पाण्डुर ।

सूत्र— सोमयमवरुणकुवेरामेरुवनस्थभवनाधिपतयः ॥११९॥

अर्थ— सुमेरुपर्वत के वनों में स्थित भवनों के स्वामियों के नाम

१ सोम २ यम ३ वरुण ४ कुवेर ।

सूत्र—स्वयम्प्रभारिष्टजलप्रभवल्गुप्रभाणि सौधर्म लोकपाल कल्प विमानानि ॥१२०॥

अर्थ—सौधर्मस्वर्ग के लोकपालों के कल्प विमानों के नाम ।

१ स्वयम्प्रभ २ अरिष्ट ३ जलप्रभ ४ वल्गुप्रभ ।

सूत्र—पाण्डुकपांडुकंवलरक्तरक्तकंवलाः पांडुकवनशिलाः ॥१२१॥

अर्थ—पांडुक वन में चार ओर चार शिलायें हैं । जिन पर तीर्थंकरों का जन्माभिषेक होता है ।

१ पांडुक, २ पांडुकंबल, ३ रक्त, ४ रक्तकंबल ।

सूत्र—माल्यवन्महासौमनसविद्युत्प्रभगंधमादनाः गजदन्ताः ॥१२२॥

अर्थ– मेरुपर्वत और निषध नील कुलाचल से मिले हुए गजदन्तों के नाम ये चार हैं ।

१ माल्यवान् २ महासौमनस ३ विद्युत्प्रभ ४ गंधमादन ।

सूत्र—चित्रकूटपद्मकूटनलिनैकशैलाः सीतोत्तरभागस्था वक्षाराः ॥१२३॥

अर्थ—सीता नदी के उत्तर भाग में स्थित वक्षार पर्वत चार हैं ।

१ चित्रकूट, २ पद्मकूट, ३ नलिन, ४ एकशैल ।

सूत्र–त्रिकूटवैश्रवणाञ्जनात्माञ्जनाःसीतादक्षिणस्थाः ॥१२४॥

अर्थ—सीता नदी के दक्षिण भाग में स्थित वक्षार पर्वत ये चार हैं ।

१ त्रिकूट, २ वैश्रवण, ३ अञ्जन, ४ आत्माञ्जन ।

सूत्र—श्रद्धावद्विजटावदाशीविषसुखावहाःसीतोदादक्षिणस्थाः ॥१२५॥

अर्थ—सीतोदा नदी के दक्षिण भाग में स्थित वक्षारपर्वत चार हैं ।

१ श्रद्धावान्, २ विजटावान्, ३ आशीविष, ४ सुखावह

सूत्र—चंद्रसूर्यदेवनागमालाः सीतोदोत्तरस्थाः ॥१२६॥

अर्थ—सीतोदा नदी के उत्तर भाग में स्थित वक्षार पर्वत ये चार हैं।

१ चंद्रमाल २ सूर्यमाल ३ देवमाल ४ नागमाल ।

सूत्र—अरिष्टसुरसमितिब्रह्मब्रह्मोत्तराह्वानिब्रह्मब्रह्मोत्तरकल्पेन्द्रकविमानानि ॥१२७॥

अर्थ—ब्रह्मब्रह्मोत्तर कल्प के इन्द्रक विमान चार हैं।

१ अरिष्ट २ सुरसमिति ३ ब्रह्म ४ ब्रह्मोत्तर ।

सूत्र—श्रद्धाविजटापद्मगधवन्तोनाभिगिरिनामानि ॥१२८॥

अर्थ—नाभिगिरि के पर्वतों के चार नाम हैं।

१ श्रद्धावान् २ अविजटावान् ३ पद्मवान् ४ गंधवान्

सूत्र— सिद्धवक्षारपार्श्वदेशद्वयाह्वाः वक्षारकूटाः ॥१२९॥

अर्थ—वक्षार पर्वत पर जो कूट हैं उनके यह चार नाम हैं

१ सिद्ध २ वक्षार ३ पार्श्व ४ देशद्वय ।

सूत्र—असिदंडच्छत्रचक्ररत्नान्यायुधगेहभवानि ॥१३०॥

अर्थ—चक्रवर्ती के आयुधगृह में होने वाले रत्न चार हैं

१ असि २ दंड ३ छत्र ४ चक्र ।

सूत्र—वीरांगदसर्वश्र्यग्निलपंगुसेनादुःखमान्तिमचतुर्विधसंघप्रधानाः ॥१३१॥

अर्थ—दुःखमा काल के अन्त में चतुर्विधसघ के मुखिया चार हैं ।

१ वीरांगदमुनि २ सर्वश्रीआर्यिका ३ अग्निलश्रावक ४ पंगुसेनाश्राविका ।

सूत्र— विजयवैजयन्तजयन्तापराजिताह्वयान्यकृत्रिमप्रासाद द्वाराणि ॥१३२॥

अर्थ—अकृत्रिम (अनाधि निधन) प्रासादों के द्वार चार हैं ।

१ विजय २ वैजयन्त ३ जयन्त ४ अपराजित ।

सूत्र—जम्बूद्वीपचतुर्दिग्द्वाराणि ॥१३३॥

अर्थ—जम्बूद्वीप के चारों दिशा सम्बन्धी चार द्वार हैं ।

१ विजय २ वैजयन्त ३ जयन्त ४ अपराजित ।

सूत्र—वडवामुखकदम्बकपातालयूपकेसराणिलवणसमुद्रदिग् गतपातालानि ॥१३४॥

अर्थ—लवण समुद्र की दिशाओं के पाताल चार हैं ।

१ वडवामुख २ कदम्बक ३ पाताल ४ यूपकेसर ।

सूत्र—विमलनित्यालोकस्वयंप्रभनित्योद्योतारुचकाभ्यन्तर मुख्यचतुर्दिक्ककूटाः ॥१३५॥

अर्थ—रुचकपर्वत के अभ्यन्तर की मुख्य चार दिशाओं के चार कूट हैं ।

१ विमल २ नित्यालोक ३ स्वयंप्रभ ४ नित्योद्योत

सूत्र— कनकाशतहृदाकनकचिन्तासौदामिन्यस्तन्निवासिन्यो देव्यः ॥१३६॥

अर्थ—रुचक पर्वत के उक्त चारों कूट पर निवास करने वाली देवी क्रमशः चार हैं।

१ कनका २ शतहृदा ३ कनकचिन्ता ४ सौदामिनी

सूत्र— वैडूर्यरुचकमणिकूटराज्योत्तमारुचकाभ्यन्तराभ्यन्तर-चतुर्दिक्कूटाः ॥१३७।

अर्थ—रुचक पर्वत के अभ्यन्तर से भी और पहिले चारों दिशाओं में ये चार कूट हैं।

१ वैडूर्य २ रुचक ३ मणिकूट ४ राज्योत्तम।

सूत्र—रुचकारुचककीर्तिरुचककान्तारुचकप्रभास्तन्निवासिन्यो देव्यः । १३८॥

अर्थ—उक्त चारों कूटों पर निवास करने वाली क्रमशः चार देवी हैं।

१ रुचका २ रुचककीर्ति ३ रुचककान्ता ४ रुचकप्रभा

सूत्र—अशोकसप्तच्छदचंपकाम्राणांनन्दीश्वरद्वीपे वनानि ॥१३९॥

अर्थ—नन्दीश्वर द्वीप के वन चार हैं।

१ अशोक २ सप्तच्छद ३ चम्पक ४ आम्र।

सूत्र—नन्दानन्दावतीनन्दोत्तरानन्दिषेणाः पूर्वदिशिवापिकाः ॥१४०॥

अर्थ—नन्दीश्वर द्वीप की पूर्व दिशा की चार वावड़ी चार हैं।

१ नन्दा २ नन्दावती ३ नन्दोत्तरा ४ नन्दिषेणा।

सूत्र—शक्रैशानचमरवैरोचनास्तदधीशाः ॥१४१॥

अर्थ—नन्दीश्वर दीप की उक्त वापिकाओं के स्वामी क्रमशः चार हैं।

१ नन्दाका-शक्र २ नन्दावतीका-ऐशान ३ नन्दोत्तरा काचमर ४ नन्दिषेणाकावैरोचन।

सूत्र—अरजाविरजागतशोकावीतशोकादक्षिणदिशिवापिकाः ॥१४२॥

अर्थ—नन्दीश्वर दीप की दक्षिण दिशा की वापिका (वावड़ियां) चार हैं।

१ अरजा २ विरजा ३ गतशोका ४ वीतशोका।

सूत्र—वरुणयमसोमवैश्रवणास्तदधीशाः ॥१४३॥

अर्थ—नन्दीश्वर द्वीप की दक्षिण दिशा की उक्त वापिकाओं के स्वामी क्रमशः चार हैं।

१ वरुण २ यम ३ सोम ४ वैश्रवण।

सूत्र—विजयावैजयन्तीजयन्त्यपराजिताःपश्चिमदिशिवापिकाः ॥१४४॥

अर्थ—नन्दीश्वर द्वीप की पश्चिम दिशा में चार वापिका (वावड़ियां) हैं।

१ विजया २ वैजयन्ती ३ जयन्ती ४ अपराजिता।

सूत्र—वेणुदेववेणुतालवरुणभूतानन्दास्तदधीशाः ॥१४५॥

अर्थ—नन्दीश्वर द्वीप की पश्चिम की उक्त वापिकाओं के स्वामी क्रमशः चार हैं ।

१ वेणुदेव २ वेणुताल ३ वरुण ४ भूतानन्द ।

सूत्र—रम्यारमणीयासुप्रभाचरमाउत्तरदिशि ॥१४६॥

अर्थ—नन्दीश्वर द्वीप की उत्तर दिशा में वापिकायें चार हैं ।

१ रम्या २ रमणीया ३ सुप्रभा ४ चरमा ।

सूत्र—वरुणयमसोमवैश्रवणासादधीशाः ॥१४७॥

अर्थ—नन्दीश्वर द्वीप की उत्तर दिशा की उक्त वापिकाओं के स्वामी चार हैं । उनके नाम क्रमशः ये हैं ।

१ वरुण २ यम ३ सोम ४ वैश्रवण ।

सूत्र—नरकतिर्यङ् नरदेवानामायूंषिभवविपाकीनि ॥१४८॥

अर्थ—भवविपाकी आयु चार हैं ।

१ नारकायु २ तिर्यगायु ३ नरायु ४ देवायु ।

१ नारकायु– नारक शरीर में जीव को रोकने वाला ।

२ तिर्यगायु–तिर्यग् शरीर में जीव को रोकने वाला ।

३ नरायु–नर-मनुष्य शरीर में जीव को रोकने वाला ।

४ देवायु–देव शरीर में जीव को रोकने वाला ।

सूत्र—आनुपूर्व्याणिक्षेत्रविपाकीनि ॥१४९॥

अर्थ– क्षेत्र विपाकी आनुपूर्व्य चार हैं ।

१ नारकगत्यानुपूर्व्य २ तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य ३ मनुष्य-

गत्यानुपूर्व्य ४ देवगत्यानुपूर्व्य ।

१ नारकगत्यानुपूर्व्य—नारक गति में जाने से पूर्व विग्रह गति में आत्मा का आकार पूर्व शरीर के आकार बना रहना ।

२ तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य– तिर्यग्गति में पहुंचने से पूर्व विग्रह गति में आत्मा का आकार पूर्व शरीर के आकार का बना रहे ।

३ नरगत्यानुपूर्व्य– मनुष्य गति में पहुँचने से पूर्व विग्रह गति में आत्मा के आकार का पूर्व शरीर के आकार बना रहना ।

४ देवगत्यानुपूर्व्य– देव गति में पहुंचने से पूर्व विग्रह गति में आत्मा के आकार का पूर्व शरीर के आकार बना रहना ।

सूत्र—नामस्थापनाद्रव्यभावरूपाणिकर्माणि ॥१५०॥

अर्थ– निक्षेपों की अपेक्षा कर्म चार प्रकार के हैं ।

१ नामकर्म २ स्थापनाकर्म ३ द्रव्यकर्म ४ भावकर्म

१ नामकर्म– जाति गुण आदि की मुख्यता न करके पौद्गलिक कर्म परमाणुओं का कर्म ऐसा नाम रखना ।

२ स्थापनाकर्म– कर्म वर्गणाओं में कर्म इस प्रकार की स्थापना करना ।

३ द्रव्यकर्म– पूर्व में बंधे हुए व आगामी बंधने वाले

कर्म वर्गणा समूह में कर्म व्यवहार करना ।

४ भावकर्म— वर्तमान में कर्म रूप परिणमें कर्मों में कर्म ऐसा व्यवहार ।

सूत्र—प्रकृतिपापकर्ममल कर्मसंज्ञाः ॥१५१॥

अर्थ—कर्म के पर्याय वाचक शब्द चार हैं ।

१ प्रकृति २ पाप ३ कर्म ४ मल ।

सूत्र— प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभादेशसंयतगुणे-वन्धव्युच्छिन्ताःप्रकृतयः ॥१५२॥

अर्थ— देशसंयतगुणस्थान ५वें में वन्धव्युच्छिन्नप्रकृति चार हैं ।

१ प्रत्याख्यानावरणक्रोध २ प्रत्याख्यानावरणमान ३ प्रत्याख्यानावरणमाया ४ प्रत्याख्यानावरणलोभ ।

सूत्र—हास्यरतिभयजुगुप्साअपूर्वकरणचरमभागेवन्धव्युच्छिन्नाः ॥१५३॥

अर्थ—अपूर्वकरण ८वें गुणस्थान के चरमभाग में वन्धव्युच्छिन्न प्रकृति चार हैं ।

१ हास्य २ रति ३ भय ४ जुगुप्सा ।

सूत्र—पूर्वस्पर्द्धकापूर्वस्पर्द्धकवादरकृष्टिसूक्ष्मकृष्टयःस्पर्द्धकाः ॥१५४॥

अर्थ—स्पर्द्धक चार प्रकार के हैं

१ पूर्वस्पर्द्धक २ अपूर्वस्पर्द्धक ३ वादरकृष्टि ४ सूक्ष्म-

कृष्टि ।

१ पूर्वस्पर्द्धक–

२ अपूर्वस्पर्द्धक– कर्मवर्गणाओं के समूह रूप वे स्पर्द्धक जिन को अनिवृत्तिकरण के परिणामों से अपूर्व अनन्तवें भाग रूप अनुभाग वाले कर दिया जावे।

३ बादरकृष्टि—अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थान में संज्वलन क्रोधादि चार कषायों का अनुभाग घटाकर स्थूल खण्ड करना।

४ सूक्ष्मकृष्टि—कर्मों के अनुभाग को घटाकर कम कर देना।

सूत्र–सम्यक्प्रकृत्यर्द्धनाराचकीलका सम्प्राप्तसृपाटिका संहननान्यप्रमत्ते, उदयव्युच्छिन्नाः प्रकृतयः ॥१५५॥

अर्थ—अप्रमत्त ७वें गुण स्थान में उदय व्युच्छिन्न प्रकृति चार हैं।

१ सम्यक्त्व प्रकृति २ अर्द्धनाराच ३ कीलक
४ असम्प्राप्तसृपाटिका संहनन।

सूत्र—स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणः स्थावरचतुष्कम्। ॥१५६॥

अर्थ—स्थावरचतुष्क से चार प्रकृतियों का ग्रहण होता।

१ स्थावर २ सूक्ष्म ३ अपर्याप्त ४ साधारण।

सूत्र— नरकगतिनरकगत्यानुपूर्व्यवैक्रियिकशरीर

वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गा नरक चतुष्कम् ॥१५७॥

अर्थ—नरक चतुष्क में चार प्रकृतियों का ग्रहण होता है।

१ नरकगति २ नरकगत्यानुपूर्व्यं ३ वैक्रियक शरीर ४ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग।

सूत्र— अष्टकसप्तकषट्कैकबन्धतोमूलकर्मबन्धस्थानानि ॥१५८॥

अर्थ—मूलकर्मबन्धस्थान चार प्रकार के हैं।

१ अष्टक २ सप्तक ३ षट्क ४ एक।

१ अष्टक—जहां आठों प्रकृतियों का बन्ध होता है जैसे १ले २रे ४थे ५वें ६वें ७वें गुणस्थानों में जिस समय आयु का बन्ध हो रहा हो।

२ सप्तक—जहां आयु कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मों का बन्ध हो रहा हो जैसे १ले गुणस्थान से ले कर नौवें गुणस्थान तक।

३ षट्क—जहां मोहनीय आयुकर्म को छोड़ कर शेष छह कर्मों का बन्ध होता हो। जैसे १०वां गुणस्थान।

४ एक—जहां सिर्फ साता वेदनीय का समय मात्र बन्ध हो जैसे ११वां १२वां १३वां गुणस्थान।

सूत्र— प्रथमोपशमसम्यक्त्ववेदकसम्यक्त्वदेशसंयमानन्तानुबन्धिविसंयोजनान्यसंख्यातवारविराध्यानि ॥१५९॥

अर्थ—असंख्यातवार विराधनी वस्तुएं चार हैं ।

१ प्रथमोपशमसम्यक्त्व २ वेदकसम्यक्त्व ३ देशसंयम ४ अनन्तानुबन्धिविसंयोजन ।

१ प्रथमोपशमसम्यक्त्व—मिथ्यात्व की अवस्था के पश्चात् जो सम्यक्त्व होता है उसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहते हैं ।

२ वेदकसम्यक्त्व—अनन्तानुबन्धि चतुष्क और मिथ्यात्व सम्यङ् मिथ्यात्व रूप सर्वघाती प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय और इन्हीं का सदवस्था रूप उपशम तथा देश घाती सम्यक्प्रकृति का उदय होने पर जो सम्यक्त्व हो उसे वेदकसम्यक्त्व कहते हैं ।

३ देशसंयम—श्रावकों के व्रतों को देशसंयम कहते हैं ।

४ अनन्तानुन्धिवविसंयोजन—अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि का अधःकरण आदि पूर्वक अप्रत्याख्यानावरण रूप कर देना ।

सूत्र—चतुस्त्रिद्विकैकानिमूलास्त्रवस्थानानि ॥१६०॥

अर्थ—आस्रव के मूलस्थान चार हैं ।

१ चतुः २ त्रिः ३ द्विः ४ एक ।

१ चतुः—चार, मिथ्यत्व, अविरति, कषाय, योग ।

२ त्रिः—तीन, अविरति, कषाय, योग ।

३ द्विः—कषाय, योग ।

४ एक—योग।

सूत्र— अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभाःसासादनेव्युच्छि-
न्नाः आस्रवाः ॥१६१॥

अर्थ—सासादनगुणस्थान में व्युच्छिन्नास्रव प्रकृतियां चार हैं।

१ अनन्तानुबन्धीक्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ।

सूत्र—तीव्रकषायबहुमोहपरिणतिरागद्वेषसन्तपनचारित्र
गुणहननानिचारित्रमोहास्रवमुख्यकारणानि ॥१६२॥

अर्थ—चारित्र मोहनीय के आस्रव के मुख्य कारण चार हैं। वे चारों, चारित्र गुण के घातक हैं।

१ तीव्रकषायपरिणति— कषायोदय की तीव्रता से होने वाली आत्मा की परिणति विशेष।

२ बहुमोहपरिणति—मोह की बहुलता से होने वाली आत्मा की परिणति विशेष।

३ रागद्वेषसन्तपन— राग और द्वेष में तपते रहना।

४ चारित्रगुणहननानि— चारित्र गुण का घात।

सूत्र— मन्दकषायतादानरतिशीलसंयमविहीनतामध्यमगुणा
मनुष्यायुर्बन्धमुख्य हेतवः ॥१६३॥

अर्थ— मनुष्यायु के बन्ध के मुख्य कारण चार हैं।

१ मन्दकषायता २ दानरति ३ शीलसंयमविहीनता ४ मध्यमगुण।

५ मन्दकषायता—क्रोध आदि कषाओं की मन्दता का होना ।

२ दानरति– दान देने में अनुराग का होना ।

३ शीलसंयमविहीनता— शीलव्रत की शून्यता ।

४ मध्यमगुण— मध्यम गुणों का होना ।

सूत्र—असत्योभयमनोवचनयोगाः क्षीणमोहेव्युच्छिन्ना आस्रवाः ॥१६४॥

अर्थ– क्षीण मोह की व्युच्छिन्न आस्रवप्रकृतियां चार हैं।

१ असत्यमनोयोग २ उभयमनोयोग ३ असत्यवचन योग ४ उभयवचनयोग ।

सूत्र— योगकुटिलतामायाप्रशंसेच्छाप्रशंसकताअशुभनाम कर्मणामास्रवाः ॥१६५॥

अर्थ—अशुभनाम कर्म के आस्रव चार हैं ।

१ योगकुटिलता २ माया ३ प्रशंसेच्छा ४ प्रशंसकता ।

१ योगकुटिलता—मन वचन काय की अन्यथा प्रवृति ।

२ माया– छल कपट रूप व्यवहार ।

३ प्रशंसेच्छा—नाम वरी की इच्छा ।

४ प्रशंसकता—अपने मुख से अपनी तारीफ करना ।

सूत्र— सरलतानिष्कपटताप्रशंसानिच्छाऽप्रशंसकताःशुभ नामकर्मणामीस्रवाः ॥१६६॥

अर्थ—शुभनामकर्म के आस्रव चार हैं ।

१ सरलता २ निष्कपटता ३ प्रशंसानिच्छा ४ प्रशंसकता।

१ सरलता—मन वचन काम की सरल प्रवृत्ति ।

२ निष्कपटता—छल कपट शून्यव्यवहार ।

३ प्रशंसानिच्छा—प्रशंसा की इच्छा नहीं करना ।

४ अप्रशंसकता— अपनी प्रशंसा अपने मुख से नहीं करना ।

सूत्र— स्वपरप्राणहिंसालीनताजिनपूजाविघ्नरत्नत्रयविघ्नदानविघ्नता अन्तरायस्य ॥१६७॥

अर्थ—अन्तराय कर्म के आस्रव चार हैं ।

१ स्वपरप्राणहिंसालीनता २ जिनपूजाविघ्न ३ रत्नत्रयविघ्नता ४ दानविघ्नता ।

१ स्वपरप्राणहिंसालीनता— अपने तथा पर के प्राणों की हिंसा में तन्मयता का होना ।

२ जिनपूजाविघ्नता— जिनेन्द्र भगवान की पूजा में विघ्न करना ।

३ रत्नत्रयविघ्नता— सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र में विघ्न करना ।

४ दानविघ्नता— दान में विघ्न करना ।

सूत्र— एकेन्द्रियविकलेन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिनोजीवसमासाः ॥१६८॥

अर्थ—जीव समास चार हैं ।

१ एकेन्द्रिय २ विकलेन्द्रिय ३ संज्ञी ४ असंज्ञी।

सूत्र—पर्याप्तापर्याप्तास्त्रसस्थावराश्च ॥१६९॥

अर्थ—प्रकारान्तर से जीव समास चार प्रकार का है।

१ पर्याप्तत्रस २ अपर्याप्तत्रस ३ पर्याप्तस्थावर ४ अपर्याप्तस्थावर।

सूत्र— चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानिदर्शनावरणस्य तृतीयबन्धस्थानप्रकृतयः ॥१७०॥

अर्थ-दर्शनावरण कर्म के तीसरे बन्ध स्थान की प्रकृतियां चार हैं।

१ चक्षुर्दर्शनावरण २ अचक्षुर्दर्शनावरण ३ अवधिदर्शनावरण ४ केवलदर्शनावरण।

सूत्र—चतुष्कसत्वस्थानप्रकृतयश्च ॥१७१॥

अर्थ—दर्शनावरणकर्म की सत्वस्थान प्रकृतियां चार हैं।

१ चक्षुर्दर्शनावरण २ अचक्षुर्दर्शनावरण ३ अवधिदर्शनावरण ४ केवलदर्शनावरण।

सूत्र—संज्वलनक्रोधमानमायालोभा मोहनीयचतुष्कबन्धस्थानप्रकृतयः ॥१७२॥

अर्थ—मोहनीय की चार प्रकृतिवाले बन्धस्थान की प्रकृतियां चार है।

१ संज्वलन क्रोध २ संज्वलनमान ३ संज्वलनमाया ४ संज्वलन लोभ।

सूत्र—चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि दर्शनावरण-
चतुष्कोदयस्थानप्रकृतयः ॥१७३॥

अर्थ—दर्शनावरणकर्म की उदय स्थान प्रकृतियाँ चार हैं। १ चक्षुर्दर्शनावरण २ अचक्षुर्दर्शनावरण ३ अवधिदर्शनावरण ४ केवलदर्शनावरण।

सूत्र—संज्वलनक्रोधानमायालोभेष्वेकाहास्यरत्यरतिशोकेषु द्वयंवेदेष्वेकाप्रमत्ताप्रमत्तविरतापूर्वकरणेषुमोहनीयचतुष्को-
दयस्थानप्रकृतयः ॥१७४॥

अर्थ—

१ प्रमत्तविरत २ अप्रमत्तविरत ३ अपूर्वकरण इन तीन गुणस्थानों में मोहनीय की चार प्रकृति वाले उदस-स्थान की चार प्रकृतियां ये हैं।

१ संज्वलन क्रोध मान माया लोभ इन चारों में से कोई एक।

२-३ हास्य, रति, अरति, शोक, इन चारों में से कोई दो का एक जोड़ा।

४ स्त्री वेद पुम्वेद नपुंसक वेदों में से कोई एक वेद।

सूत्र—संज्वलनक्रोधमानमायालोभामोहनीयचतुःप्रकृतिकस-
त्वस्थानप्रकृतयः ॥१७५॥

अर्थ—प्रमात्तविरत अप्रमत्तविरत अपूर्वकरण इन तीन गुणस्थानों में मोहनीयकी चार प्रकृतिवाले सत्वस्थान

की चार प्रकृतियाँ हैं। वे निम्न प्रकार से हैं।

१ संज्वलनक्रोध २ संज्वलनमान ३ संज्वलनमाया ४ संज्वलनलोभ।

सूत्र—नरकतिर्यङ्मनुष्यदेवाजीवस्यविभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाः ॥१७६॥

अर्थ—जीव द्रव्य की विभावद्रव्यव्यञ्जन पर्यायें चार हैं।

१ नरक २ तिर्यञ्च ३ मनुष्य ४ देव।

सूत्र— अनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि स्वभावगुणपर्यायाः ॥१७७॥

अर्थ—जीव की स्वभावगुण पर्यायें चार हैं।

१ अनन्तज्ञान २ अनन्तदर्शन ३ अनन्तसुख ४ अनन्तवीर्य।

सूत्र—मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानानि विभावगुणपर्यायाः ॥१७८॥

अर्थ—जीवकी विभावगुण पर्यायें चार हैं।

१ मतिज्ञान २ श्रुतज्ञान ३ अवधिज्ञान ४ मनःपर्यय ज्ञान।

सूत्र—सविकल्पप्रमाणानि वा ॥१७६॥

अर्थ—अथवा उक्त चारों ज्ञान सविकल्प प्रमाण हैं।

सूत्र—ए ऐ ओ औ इति संधिजस्वराः ॥१८०॥

अर्थ—संधि से होने वाले मूल स्वर चार हैं।

१ ए, २ ऐ, ३ ओ, ४ औ।

सूत्र—यवरला अन्तस्थाः ॥१८१॥

अर्थ—अन्तस्थ व्यञ्जन चार हैं।

१ य, २ व, ३ र, ४ ल।

सूत्र—शषसहा ऊष्माणः ।१८२॥

अर्थ—ऊष्म व्यञ्जन चार हैं।

१ श, २ ष, ३ स, ४ ह।

सूत्र—प्रमाणकारणधूमाङ्गारा आहारमहादोषाः ॥१८३॥

अर्थ—आहार के बड़े दोष चार हैं।

१ प्रमाण, २ कारण, ३ धूम, ४ अङ्गार।

१ प्रमाण– प्रमाण से अधिक भोजन करना।

२ कारण–

३ धूम– दाता व भोजन की निन्दा करते हुए भोजन करना।

४ अङ्गार—आसक्ति से खाना।

सूत्र—देवमनुष्यतिर्यक्कृताचेतनोपसर्गाः उपसर्गाः ॥१८४॥

अर्थ—उपसर्ग चार तरह के होते हैं।

१ देवकृतउपसर्ग, २ मनुष्यकृतउपसर्ग, ३ तिर्यक्कृत उपसर्ग, ४ अचेतनोपसर्ग।

१ देवकृत—व्यन्तर आदि देवों द्वारा उपसर्ग होना।

२ मनुष्यकृत– दुष्टमनुष्यों द्वारा ताडनादि उपसर्ग होना ।

३ तिर्यक्कृत—सिंह स्याल आदि द्वारा भक्षणादि उपसर्ग होना ।

४ अचेतनोपसर्ग—आग में जलजाना आदि उपसर्ग ।

सूत्र—मद्यमांसमधुनवनीता महाविकृतयः ॥१८५॥

अर्थ—महाविकृति पदार्थ चार हैं ।

१ मद्य, २ मांस, ३ मधु, ४ नवनीत ।

१ मद्य—अनेक पदार्थों की सड़ाई हुई चीज जैसे शराब ।

२ मांस—द्वीन्द्रियादि जीवों का कलेवर ।

३ मधु—मक्खियों का वमन और कै (शहद) ।

४ नवनीत—मक्खन (कामोत्पादक) ।

सूत्र—पृथ्वीशिलाकाष्ठपट्टतृणमयाःक्षपकशय्याः ॥१८६॥

अर्थ—क्षपक के योग्य शय्या चार प्रकार की होती हैं ।

१ पृथ्वी, २ शिलापाषाण, ३ काष्ठफलक, ४ तृणमय ।

१ पृथ्वी—निर्जन्तु समान भाग वाली जमीन ।

२ शिला—पत्थर की समान भाग वाली शिला ।

३ काष्ठपट्ट—काठ का निर्जन्तु पटिया ।

४ तृणमय—धान्य का पुराल, सूखा घास आदि प्रासुकतृण ।

सूत्र— प्राणिहिंसाचौर्यमैथुनपरिग्रहसंग्रहाअशुभकाययोगाः ॥१८७॥

अर्थ—अशुभकाययोग चार तरह के हैं।

१ प्राणिहिंसा, २ चौर्य, ३ मैथुन, ४ परिग्रहसंग्रह।

१ प्राणिहिंसा— प्राणियों की हिंसा का करना व ताड़ना आदि।

२ चौर्य— पराई वस्तु बिना उसकी आज्ञा और इच्छा के उठा लेना।

३ मैथुन— स्त्री पुरुष की संयोग क्रिया को कहते हैं।

सूत्र— व्यवहारसम्यक्त्वज्ञानचारित्रपंडितमरणानि पंडितमरणानि ॥१८८॥

अर्थ—पंडितमरण चार प्रकार के हैं।

१ व्यवहारपंडितमरण, २ सम्यक्त्वपंडितमरण ३ ज्ञानपण्डितमरण, ४ चारित्रपण्डितमरण।

१ व्यवहारपण्डितमरण—जो व्यवहार की अपेक्षा शुद्ध क्रिया विवेक वाले हैं उनके मरण को व्यवहारपण्डितमरण कहते हैं।

२ सम्यक्त्वपण्डितमरण—सम्यग्दर्शन के होते हुए मरण होने को सम्यक्त्वपण्डितमरण कहते हैं।

३ ज्ञानपण्डितमरण—जो सम्यग्ज्ञानी ज्ञान में बहुत बड़े हैं ऐसे विशिष्टश्रुतज्ञानी व अवधिज्ञानी आदि के मरण

को ज्ञानपण्डितमरण कहते हैं ।

४ चारित्रपण्डितमरण—जिनका चारित्र भी विशिष्ट है और उत्तम तप भी है ऐसे योगी के मरण को चारित्र-पण्डितमरण कहते हैं ।

सूत्र—आर्तरौद्रध्यानसहितवेदनाकषायनोकषायवशार्तमरणानि विशार्तमरणानि ॥१८९॥

अर्थ—१ आर्तरौद्रध्यानसहितमरण २ वेदनावशार्तमरण ३ कषायवशार्तमरण, नोकषायवशार्तमरण ये ४ वशार्तमरण हैं ।

१ आर्तरौद्र—आर्तरौद्रध्यानों से मरण होना ।

२ वेदनावशार्त—शारीरिकवेदना से संक्लेश परिणामों से मरण होना वेदनावशार्तमरण है

सूत्र—क्रोधमानमायालोभवशार्तमरणानि कषाय वशार्तमरणानि ॥१९०॥

अर्थ—कषायवशार्तमरण के चार भेद हैं ।

१ क्रोधकषायवशार्तमरण २ मानकषायवशार्तमरण । ३ मायाकषायवशार्तमरण ४ लोभकषायवशार्तमरण ।

१ क्रोधकषायवशार्तमरण—क्रोधकषाय के वश होकर आर्तध्यान सहित मरण को क्रोधकषायवशार्तमरण कहते हैं ।

२ मानकषायवशार्तमरण—मानकषाय के वशीभूत होकर

आर्तध्यान से मरण करना मानकषायवशार्तमरण है।

३ मायाकषायवशार्तमरण—मायाकषाय के वशीभूत होकर आर्तध्यान से मरण करना मायाकषायवशार्तमरण है।

४ लोभकषायवशार्तमरण—लोभकषाय के वशीभूत होकर आर्तध्यान से मरण करना लोभकषायवशार्तमरण है।

सूत्र—उपगूहनस्थितिकरणवात्सल्यप्राभावनाः सम्यक्त्व-वर्द्धकगुणाः ॥१६१॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन को बढ़ाने वाले गुण चार हैं।

१ उपगूहन २ स्थितिकरण ३ वात्सल्य ४ प्रभावना।

१ उपगूहन—पवित्रमार्ग की अज्ञानियों द्वारा की गई निन्दा को दूर करना।

२ स्थितिकरण—जो जीव किसी कारणवश रत्नत्रय से च्युत हो रहे हों उन्हें सस्नेह उन्हीं में स्थिर करना।

३ वात्सल्य—अपने सहधर्मी भाइयों के प्रति धर्मानुराग से प्रेरित हो निश्छलभाव से हार्दिक प्रेम करना।

४ प्रभावना—अज्ञानरूप घोरान्धकार को दूर करते हुये जिन मार्ग की लोकोत्तर प्रभावना करना।

सूत्र—प्रमाणदुष्प्रमाणसुनयदुर्नयवाक्यानि वाक्यानि ॥१६२॥

अर्थ—वाक्य के चार भेद हैं।

१ प्रमाणवाक्य २ दुष्प्रमाणवाक्य ३ सुनयवाक्य ४ दुर्नय वाक्य ।

१ प्रमाणवाक्य—वस्तु के परिपूर्ण स्वरूप का बोध कराने वाला वाक्य ।

२ दुष्प्रमाणवाक्य—वस्तुके विपरीतस्वरूपको बोध कराने वाला वाक्य ।

३ सुनयवाक्य—वस्तुके समीचीन किसी एक अंशका ज्ञान कराने वाला वाक्य ।

४ दुर्नयवाक्य—वस्तु के असमीचीन किसी एक अंश का ज्ञान कराने वाक्य ।

सूत्र—पूर्वप्रयोगासंगत्वबन्धच्छेदतथागतिपरिणामा मुक्तोर्ध्वगति हेतवः ॥१६३॥

अर्थ—मुक्त (कर्मबन्धनशून्य) जीवों के ऊर्ध्वगमन के कारण चार हैं ।

१ पूर्वप्रयोग २ असङ्गत्व ३ बन्धच्छेद ४ तथागति परिणाम ।

१ पूर्वप्रयोग—कर्म सहित अवस्था में जो क्रिया हो रही थी कर्मों के छोड़ने के बाद भी समयमात्र उस क्रिया का होना कुम्भकार के द्वारा घुमाये गये चाक के छोड़ने पर भी चाक की क्रिया के तुल्य ।

२ असङ्गत्व—सङ्ग (कर्म सम्बन्ध) से रहित होने के

कारण भी ऊर्ध्वगमन होता है जैसे मिट्टी के लेप वाली जल में डूबी हुई तुम्बी मिट्टी के लेप के घुल जाने पर ही ऊपर आ जाती है।

३ वन्धच्छेद—कर्मबन्ध का छेद होने से भी आत्मा ऊपर ही जाता है एरण्ड बीज की तरह जैसे एरण्ड का बीज फली में से निकल कर ऊपर जाता है।

४ तथागति परिणाम—ऊर्ध्वगमनरूप परिणमन होने से भी ऊपर को ही जाता है जैसे अग्नि की शिखा हवा के न लगने से ऊपर को ही जाती है।

सूत्र—द्रव्यक्षेत्रकालभावाध्यानसामग्र्यः ॥१६४॥

अर्थ—ध्यान की सामग्री चार प्रकार की है।

१ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल ४ भाव।

१ द्रव्य–प्रारम्भ में अर्हन्तादिरूपद्रव्य।

२ क्षेत्र–निर्जन्तुक निर्बाध एकान्तस्थान।

३ काल–प्रातःकालादिरूप काल।

४ भाव–उत्तमोत्तम विचार समता आदि।

सूत्र—पूर्वपश्चिमदेवोत्तर कुरवोविदेहाः ॥१६५॥

अर्थ—विदेह के चार भाग हैं।

१ पूर्वविदेह २ पश्चिमविदेह ३ देवकुरु ४ उत्तरकुरु।

१ पूर्वविदेह—विदेहक्षेत्र में मेरु पर्वत से सीता नदी के ओर के देशसमूहों को पूर्वविदेह कहते हैं।

२ पश्चिमविदेह—विदेहक्षेत्र में मेरु पर्वत से सीतोदा नदी के ओर १— देश समूहों को पश्चिमविदेह कहते हैं ।

३ देवकुरु—विदेह से निषध कुलाचल की ओर देवकुरु ।

४ उत्तरकुरु—विदेह से नीलकुलाचल की ओर उत्तरकुरु ।

सूत्र—द्रव्यक्षेत्रकालभावालोकोत्तरप्रमाणाः ॥१९६॥

अर्थ—लोकोत्तरप्रमाण चार विभागों में विभक्त है ।

१ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल ४ भाव ।

१ द्रव्यप्रमाण— अनन्त असंख्यात आदि रूप से द्रव्यों की संख्या कहना ।

२ क्षेत्रप्रमाण—सूच्यंगुल राजु आदि द्वारा क्षेत्रों के प्रदेशों का परिमाण करना ।

३ कालप्रमाण—आवलीमुहूर्तकल्पकाल आदि काल के समयों का परिमाण करना ।

४ भावप्रमाण—अविभाग प्रतिच्छेदों से द्रव्यगतभावों का परिमाण करना ।

सूत्र— स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराःकल्पोपपन्नाकायप्रवीचाराः ॥१९७॥

अर्थ—कल्पों में उत्पन्न होने वाले देव एवं देवाङ्गनाओं के काम पीडा का कायसम्भोगरति प्रतीकार चार प्रकार से होता है ।

१ स्पर्श २ रूप ३ शब्द ४ मनः ।

१ स्पर्शप्रवीचार—तीसरे तथा चौथे स्वर्ग की देव तथा देवाङ्गनायें परस्पर के स्पर्श करनेमात्र से अपनी काम पीडा को शान्त करती है।

२ रूपप्रवीचार- ५वें स्वर्ग से ८वें स्वर्ग तक रूप से अर्थात् एक दूसरे को देखनेमात्र से काम पीडा शान्त हो जाती है।

३ शब्दप्रवीचार- शब्द से अर्थात् एक दूसरे के शब्द सुनने मात्र से होने वाला काम पीडा का प्रतिकार ९वें स्वर्ग से १२वें स्वर्ग तक होता है।

४ मनःप्रवीचार-मन से अर्थात् परस्पर कामना में विचार करनेमात्र से होने वाला कामपीडा का प्रतिकार १३वें स्वर्ग से १६वें स्वर्ग तक होता है।

सूत्र— काञ्चनाशोकमन्दिरमस्तारगल्वानि सौधर्मेन्द्रविमान पार्श्वस्थानगराणि ॥१९८॥

अर्थ—सौधर्मस्वर्ग के इन्द्र के विमान के समीप में स्थित नगर चार हैं।

१ काञ्चना २ शोकमन्दिर ३ मस्तार ४. गल्व।

सूत्र- एकसंख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशाःपुद्गलभेदाः ॥१९९॥

अर्थ- एकप्रदेश २ सख्यातप्रदेश ३ असंख्यातप्रदेश ४ अनन्तप्रदेश। ये चार पुद्गलद्रव्य के भेद हैं।

सूत्र—आसन्नदूरदूरतराभव्यसमानभव्याः ॥२००॥

अर्थ—भव्य चार प्रकार के हैं।

१ आसन्नभव्य २ दूरतव्य ३ दूरतरभव्य ४ समान भव्य।

१ आसन्नभव्य– जो शीघ्र ही रत्नत्रय को प्राप्त कर मुक्त होने की योग्यता रखते हैं।

२ दूरभव्य—जो दीर्घ काल के बाद मुक्त होने की योग्यता रखें।

३ दूरतरभव्य— जो अनन्त काल के पश्चात् मोक्ष जाने की योग्यता रखें।

४ समानभव्य— जो अनतानन्त काल में कभी भी मुक्त नहीं हो सकें अर्थात् मुक्त होने की शक्ति तो रखें किन्तु योग्यता को प्राप्त न कर सकें।

सूत्र– विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषादानविशेषहेतवः ॥२०१॥

अर्थ— दान विशेष के हेतु चार हैं।

१ विधिविशेष २ द्रव्यविशेष ३ दातृविशेष ४ पात्र-विशेष।

१ विधिविशेष– नवधा भक्ति की विशेषता।

२ द्रव्यविशेष— द्रव्य की विशेषता-ऋतु आदि का ध्यान रखते हुए संयमी की साधना के साधक द्रव्य का देना।

३ दातृविशेष– दाता की विशेषता अर्थात् संयमीपात्र के

प्रति श्रद्धा भक्ति तुष्ठि आदि मुख्य सात गुणों का धारी होना ही दाता की विशेषता है ।

४ पात्रविशेष— पात्र की विशेषता अर्थात् तीर्थंकर मुनि जैसे उत्तमोत्तमपात्र, अनेक ऋद्धिधारी सकलसंयमी अथवा सामान्य महाव्रति मुनि आदि पात्र ही पात्र विशेष कहे जाते हैं ।

सूत्र — विशुद्धिक्षेत्रस्वामीविषयाअवधिमनःपर्ययविशेषकाः ॥२०२॥

अर्थ—अवधिज्ञान से मनःपर्यय ज्ञान में चार प्रकार से विशेषता है ।

१ विशुद्धि २ क्षेत्र ३ स्वामी ४ विषय ।

१ विशुद्धि—अवधिज्ञानी के परिणामों की निर्मलता से मनः पर्ययज्ञानी के परिणामों की निर्मलता बहुत अधिक होती है ।

२ क्षेत्र—अवधिज्ञानी के अवधिज्ञान का ज्ञातव्य क्षेत्र जितना होता है उस से अधिक ज्ञातव्य क्षेत्रमनःपर्यय ज्ञानी का होता है ।

३ स्वामी—अवधिज्ञान के स्वामी सामन्य रूप से चतु-र्गति के जीव होते हैं किन्तु मनःपर्यय ज्ञान के स्वामी ऋद्धिधारी मुनि ही होते हैं अन्य नहीं ।

४ विषय—अवधिज्ञान के विषय मूल पदार्थ के अनन्तवें

भाग को जानने वाला मनःपर्ययज्ञान है।

सूत्र—कालुष्याशुचित्वविरुद्धत्व दुःखहेतुत्वान्यास्रव मुख्य-दोषाः ॥२०३॥

अर्थ—आश्रव के मुख्य दोष ये चार हैं।

१ कालुष्य, २ अशुचित्व, ३ विरुद्धत्व, ४ दुःखहेतुत्व।

१ कालुष्य— रागद्वेषमोहादि भावों में कलुषता का होना।

२ अशुचित्व—पर पदार्थ के सम्बन्ध के कारण खालिस तत्त्व न रहना।

३ विरुद्धत्व—आत्मा के शुद्ध ज्ञायक स्वभाव के विरुद्ध आकुलता का होना।

४ दुःखहेतुत्व—नाना प्रकार के दुःखों का कारण होना।

सूत्र—यौगिकरूढयोगरूढायौगिकरूढानिपदानि ॥२०४॥

अर्थ—पद चार प्रकार के हैं।

१ यौगिक २ रूढ ३ योगरूढ ४ अयौगिकरूढ।

१ यौगिक—जो पद प्रकृति और प्रत्यय के मिलने पर बनते हैं वे यौगिकपद हैं जैसे राग-द्वेष।

२ रूढ—जो किसी प्रकृति प्रत्यय की अपेक्षा न रखते हों वे पद रूढपद हैं जैसे डित्थ-ऽवित्थ।

३ योगरूढ—जो प्रकृति प्रत्यय से बनकर भी किसी

विशेष अर्थ में रूढ़ हो वे योगरूढ हैं जैसे पङ्कज ।

४ अयौगिकरूढ—

सूत्र— स्वपरभयोत्पादननिर्दयत्वत्रासनपरिणामाः भयवेदनीयस्य नोकषायस्यास्रवहेतवः ॥२०५॥

अर्थ—भय को वेदन कराने वाले नोकषाय के आस्रव के कारण चार हैं ।

१ स्वभयोत्पादनपरिणाम २ परभयोत्पादनपरिणाम ३ निर्दयत्वपरिणाम ४ त्रासनपरिणाम ।

१ स्वभयोत्पादनपरिणाम—अपने में भय उत्पन्न रूप परिणाम ।

२ परभयोत्पादनपरिणाम—दूसरे में भय पैदा कराने वाले परिणाम ।

३ निर्दयत्वपरिणाम—दयारहित परिणाम ।

४ त्रासनपरिणाम– पर को पीडा पहुंचाने रूप परिणाम ।

सूत्र— परारतिप्रादुर्भावरतिविनाशपापशीलसंसर्गताकुलालक्रियाप्रोत्साहन जातीया अरतिवेदनीयस्य ॥२०६॥

अर्थ—अरति को वेदन कराने वाले-अरतिनोकषाय के आस्रव के कारण चार हैं ।

१ परारतिप्रादुर्भाव २ रतिविनाश ३ पापशीलसंसर्गता ४ कुलालक्रियाप्रोत्साहन ।

१ परारतिप्रादुर्भाव—दूसरे में अरति उत्पन्न कराने वाले भाव ।

२ रतिविनाश—रति का नाश कराने वाले भाव ।

३ पापशीलसंसर्गता—पापी जनों का संसर्ग करना ।

४ कुलालक्रियाप्रोत्साहन— दुष्कर्म आरम्भ आदि के कामों में उत्साह दिलाना ।

सूत्र— जीवदयारत्नत्रयोत्तम क्षमादिवस्तुस्वभावा धर्मलक्षणानि ॥२०७॥

अर्थ—धर्म के लक्षण चार प्रकार के हैं ।

१ जीवदया २ रत्नत्रय ३उत्तमक्षमादिरूप ४ वस्तु-स्वभाव ।

१ जीवदया—जीवों पर दया का भाव रखना ।

२ रत्नत्रय– सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र रूप धर्म है ।

३ उत्तमक्षमा आदि दश प्रकार का धर्म भी धर्म का स्व-रूप हैं ।

४ वस्तुस्वभाव—जो पदार्थगत धर्म है वही उसका धर्म है ।

सूत्र—अनन्तानुवन्धिक्षयमिथ्यात्वमिश्रोपशमसम्यक्प्रकृत्यु-दयजानन्तानुवन्धिमिथ्यात्वक्षयमिश्रोपशमसम्यक्प्रकृत्यु दयजानन्तानुवन्धिमिथ्यात्वमिश्रक्षयसम्यक्प्रकृत्युदयजान

न्तानुवन्धिमिथ्यात्वमिश्रोपशमसम्यक्प्रकृत्युदयजानिवेदक सम्यक्त्वानि ॥२०८॥

अर्थ—वेदक सम्यक्त्व के चार भेद हैं।

१ अनन्तानुवन्धिक्षयमिथ्यात्वमिश्रोपशमसम्यक्प्रकृत्युदयज-(४ का क्षय, २ का उपशम, १ का उदय)

२ अनन्तानुवन्धिमिथ्यात्वक्षयमिश्रोपशमसम्यक् प्रकृत्युदयज—(५ का क्षय, १ का उपशम, १ का उदय)।

३ अनन्तानुवन्धि मिथ्यात्वमिश्रक्षयसम्यक्प्रकृत्युदयज-(६ का क्षय का १ उदय)

४ अनन्तानुवन्धिमिथ्यात्वमिश्रोपशमसम्यक्प्रकृत्युदयज—(६ का उपशम, १ का उदय)

सूत्र—ज्ञानदर्शनसुखशक्तयोऽनन्तचतुष्टयम् ॥२०९॥

अर्थ—आत्मा के अनन्त मुख्यगुण चार हैं।

१ अनन्तज्ञान २ अनन्तदर्शन ३ अनन्त सुख ४ अनन्त शक्ति।

सूत्र—अनुजीविगुणाश्च ॥२१०॥

अर्थ—जीव के अनुजीवी गुण चार हैं।

१ ज्ञान २ दर्शन ३ सुख ४ शक्ति।

१ ज्ञान—आत्माका वह मुख्य गुण जिससे स्व और पर का जानना हो।

२ दर्शन—आत्माका वह गुण जो पदार्थ ज्ञान के पहले

पदार्थ की सामान्य सत्ता का अवलोकन करे ।

३ सुख—आत्माका निराकुलतारूप परिणमन ।

४ शक्ति—आत्माका वह अनन्तगुण जो ज्ञानादि गुणों का आधार रूप हो ।

सूत्र—चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनानि-दर्शनोपयोगाः ॥२११॥

अर्थ—दर्शनोपयोग चार प्रकार का है ।

१ चक्षुर्दर्शनोपयोग २ अचक्षुर्दर्शनोपयोग ३ अवधि-दर्शनोपयोग ४ केवलदर्शनोपयोग ।

सूत्र—नामस्थापनाद्रव्यभावन्यासा निक्षेपाः ॥२१२॥

अर्थ—निक्षेप के चार भेद हैं ।

१ नामनिक्षेप २ स्थापनानिक्षेप ३ द्रव्यनिक्षेप ४ भावनिक्षेप ।

१ नामनिक्षेप—जिसमें जो गुण नहीं है उसको उस गुण से कहना नामनिक्षेप है यह लोक व्यवहार चलाने में मुख्य साधन है ।

२ स्थापनानिक्षेप—तदाकार और अतदाकार पदार्थ में किसी आकार बात की स्थापना करने को स्थापना निक्षेप कहते हैं ।

३ द्रव्यनिक्षेप—भूत और भविष्य की पर्याय को वर्तमान में व्यवहार करना ही द्रव्यनिक्षेप है ।

४ भावनिक्षेप—वर्तमान पर्याययुक्तद्रव्य को उसी पर्याय से पुकारना भावनिक्षेप है ।

सूत्र—स्वरूपाचरणदेशसकलयथाख्यातचारित्राणि चारित्राणि ॥२१३॥

अर्थ—चारित्र चार प्रकार का है ।

१ स्वरूपाचरण २ देशचारित्र ३ सकलचारित्र ४ यथाख्यातचारित्र ।

१ स्वरूपाचरणचारित्र—यह वह चारित्र है जो सम्यग्दर्शन के साथ अविनाभाव रखता है। यह आत्मस्वरूपरमणरूप होता है ।

२ देशचारित्र—श्रावकों के त्रसहिंसा का त्याग और स्थावर हिंसा का अत्यागरूप १२ बारह व्रत स्वरूप होता है –५ अणुव्रत ३ गुणव्रत ४ शिक्षाव्रत ।

३ सकलचारित्र—मुनियों के महाव्रत को सकल चारित्र कहते हैं इसमें षट्काय के जीवों की रक्षा ५ इन्द्रिय और ६वें मन को वश में करना अनिवार्य है । ।

४ यथाख्यातचारित्र—मोह के सर्वथा अभाव होने पर यह चारित्र प्रकट होता है इसी का दूसरा नाम शुद्धात्मा चरण है ।

सूत्र—अरहन्त इतिचतुरक्षरमंत्रवर्णाः ॥२१४॥

अर्थ—अरहन्त यह चार अक्षर का मंत्र है ।

सूत्र—ओंसिद्धेभ्यः ॥२१५॥

अर्थ—ओंसिद्धेभ्यः, यह भी चार अक्षर का मंत्र है।

सूत्र—धर्माधर्माकाशकाला अरूपिण अजीवाः ॥२१६॥

अर्थ— १ धर्मद्रव्य २ अधर्मद्रव्य ३ अकाशद्रव्य ४ कालद्रव्य ये चार रूप रहित —(स्पर्शरसगन्धवर्ण) शून्य-अमूर्तिक अजीवद्रव्य हैं।

१ धर्मद्रव्य—जीवों और पुद्‌गलों के चलने में सहायक द्रव्य।

२ अधर्मद्रव्य—जीवों और पुद्‌गलों की स्थिति में सहायता करने वाला द्रव्य।

३ आकाश—समस्त द्रव्यों को स्थान प्रदान करने वाला द्रव्य।

४ कालद्रव्य—सभी द्रव्यों की हालतों के बदलने में सहकारी द्रव्य।

सूत्र— मनःपर्ययज्ञानपरिहारविशुद्धिप्रथमोपशमसम्यक्त्वाहारद्विकाःपरस्परविरोधिसद्‌भावाः ॥२१७॥

अर्थ—परस्परविरुद्ध सद्‌भाव वाले चार भाव हैं।

१ मनःपर्ययज्ञान २ पहिहारविशुद्धिसंयम ३ प्रथमोपशमसम्यक्त्व ४ आहारद्विक।

सूत्र —क्षायोपशमिकविशुद्धिदेशनाप्रायोग्यलब्धयोभव्याभव्यसाधारणलब्धयः ॥२१८॥

अर्थ—भव्यों के और अभव्यों के समानरूप से पाई जाने वाली लब्धियां चार हैं।

१ क्षायोपशमिकलब्धि २ विशुद्धिलब्धि ३ देशनालब्धि ४ प्रायोग्यलब्धि।

१ क्षायोपशमिकलब्धि—सम्यक्त्व के योग्य कर्मों के क्षयोपशम होने को कहते हैं।

२ विशुद्धिलब्धि- परिणामों की निर्मलता विशेष होने को या अत्यन्त मन्द कषाय होने को कहते हैं।

३ देशनालब्धि—सद्गुरूओं के द्वारा सैद्धान्तिक अध्यात्मिक उपदेश मिलने को कहते हैं।

४ प्रायोग्यलब्धि—पंचेन्द्रिय भव्य संज्ञी पर्याप्त मंदकषाय आदि योग्यता को कहते हैं।

सूत्र- अगृहीतमिश्रगृहीतक्रममिश्रागृहीतगृहीतक्रममिश्रगृहीतागृहीतक्रमगृहीतमिश्रागृहीतक्रमाद्रव्यपरिवर्तन प्रकाराः ॥२१६॥

अर्थ- द्रव्यपरिवर्तन के चार भेद हैं।

१ अगृहीतमिश्रगृहीतक्रम २ मिश्रागृहीतगृहीतक्रम ३ मिश्रगृहीतागृहीतक्रम ४ गृहीतमिश्रागृहीतक्रम।

१ अगृहीतमिश्रगृहीतक्रम—

२ मिश्रागृहीतगृहीतक्रम—

३ मिश्रगृहीतागृहीतक्रम-

४ गृहीतमिश्रागृहीतक्रम—

सूत्र—सम्बन्धाभिधेयशक्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनानिशास्त्रादरहेतवः ॥२२०

अर्थ—शास्त्रका आदर करने के चार कारण हैं।

१ सम्बन्ध २ अभिधेय ३ शक्यानुष्ठान ४ इष्टप्रयोजन।

१ सम्बन्ध—

२ अभिधेय।

३ शक्यानुष्ठंान।

४ इष्टप्रयोजन।

सूत्र—कारकसाकल्यस्यखण्डयविकल्पाः सकलकारकाणितद्धर्मः, तत्कार्यं, पदार्थान्तरंवा ॥२२१॥

अर्थ—कारकसाकल्य को प्रमाण मानने पर उसके खंडन में चार विकल्प उत्पन्न होते हैं— १ क्या सकल कारकों को प्रमाण माना जाय, २ अथवा कारकों के धर्म को प्रमाण माना जाय, ३ अथवा कारकों के कार्य को प्रमाण माना जाय, ४ अथवा पदार्थान्तर को कार्य माना जाय ?

१ प्रथम पक्ष में यह दोष आता है कि यदि कारकों को कर्त्ता या कर्मरूप मानते हैं, तो वे करण रूप नहीं माने जा सकते।

२ कारकों के धर्म को प्रमाण मानने पर इसमें अनेक विकल्प उठते हैं, इसलिये कारकों के धर्म को प्रमाण नहीं माना जा सकता ।

३ कारकों के नेत्रोद्घाटन आदि कर्मों को भी साकल्य नहीं मान सकते, क्योंकि नित्य कारकों को यदि कार्य का जनक माना जायेगा, तो सर्वदा कार्य की की उत्पत्ति का प्रसंग आता है और यदि अनित्य कारकों को कार्य का जनक माना जायगा, तो कार्य की उत्पत्ति कभी होगी और कभी नहीं होगी, यह आपत्ति आती है ।

४ पदार्थान्तर रूप चौथे विकल्प के मानने पर अन्य सर्व पदार्थों के साकल्य रूपता का प्रसंग आता है ।

सूत्र—ज्ञातृव्यापारस्यधर्मस्वभावेज्ञातुर्धर्मःभिन्नो भिन्नो उभयभयं वा ॥२२२॥

अर्थ—यदि ज्ञाता का व्यापार धर्मस्वभावरूप माना जाय, तो वह धर्मरूप स्वभाव ज्ञाता से भिन्न होगा, अथवा अभिन्न होगा, अथवा उभयरूप होगा, या अनुभय रूप होगा ?

१ यदि ज्ञातासे धर्म भिन्न माना जायेगा, इस ज्ञाता का यह धर्म है, इस प्रकार का सम्बन्ध नहीं कर सकेगा ।

२ यदि ज्ञाता से धर्म को अभिन्न माना जायगा, तो वह धर्म न होकर ज्ञातारूप धर्मी ही सिद्ध होगा।

३ भिन्नाभिन्नरूप उभय पक्ष के मानने पर विरोध आता है कि वह यदि भिन्न है तो अभिन्न कैसा ? और यदि अभिन्न है तो भिन्न कैसा ?

४ अनुभयपक्ष भी अयुक्त है क्योंकि परस्पर अवच्छेद रूप धर्मों का एक साथ प्रतिषेध नहीं किया जा सकता।

सूत्र—२ सृष्टिकारणस्य व्यसततया, अनुकम्पया, परोपकारार्थं वाऽदृष्टवशाद्वा ॥२२३॥

अर्थ—यदि ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता है, तो इस विषय में चार विकल्प उठते हैं—१ क्या वह व्यसन (आदत) से सृष्टि रचता है, अथवा २ अनुकम्पा (दया) से, ३ अथवा परोपकार के लिए, ४ अथवा अदृष्ट के वश से सृष्टि रचता है ?

१–प्रथम पक्ष में ईश्वर के अप्रेक्षाकारित्वका अर्थात् बिना विचारे कार्य करने का प्रसंग आता है।

२—यदि अनुकम्पा से ईश्वर सृष्टि रचता है, उसे सदा जगत् को सुखी ही बनाना चाहिए, और कभी कभी भी जगत् का प्रलय नहीं करना चाहिए।

३—तृतीय पक्ष भी नहीं माना जा सकता क्योंकि ईश्वर

के सिवाय जगत् में और पर वस्तु है ही कौनसी, जिसके कि उपकार के लिए वह सृष्टि को रचता है ?

४—चौथा पक्ष मानने पर ईश्वर स्वतंत्रता का व्याघात होता है। इस प्रकार किसी भी तरह से ईश्वर जगत् का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता।

सूत्र—ओघप्रथमचरमसंचयानुगमा अनुगमाः ॥२२४॥

अर्थ—अनुगम चार प्रकार का है: १ ओघानुगम, २ प्रथमानुगम, ३ चरमानुगम और ४ संचयानुगम।

सूत्र—नामस्थापनाद्रव्यभावानां ग्रन्थकृतयः ॥२२५॥

अर्थ—ग्रन्थकृति के चार भेद हैं।

१ नामग्रन्थकृति, २ स्थापनाग्रन्थकृति, ३ द्रव्यग्रन्थकृति और ४ भावग्रन्थकृति।

१ नामग्रन्थकृति—

२ स्थापनाग्रन्थकृति—

३ द्रव्तग्रन्थकृति—

४ भावग्रन्थकृति—

सूत्र—जिनाश्च ॥२२६॥

अर्थ—जिन भी चार प्रकार के होते हैं।

१ नामजिन, २ स्थापनाजिन, ३ द्रव्यजिन और ४ भावजिन।

१ नामजिन— जिस किसी भी व्यक्ति का 'जिन' ऐसा

नाम रखना ।

२ स्थापनाजिन—जिस किसी भी वस्तु में 'यह जिन है' ऐसी स्थापना या कल्पना करना ।

३ द्रव्यजिन—जिसमें आगामी काल में 'जिन' होने की योग्यता हो ।

४ भावजिन—जो वर्तमान में 'जिन' पर्याय से परिणत हों ।

सूत्र—अवधिविषयाश्च ॥२२७॥

अर्थ– नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव की अपेक्षा अवधि ज्ञान का विषय चार प्रकार का है ।

सूत्र—औत्पत्तिकीवैनयिकीकर्मजापारिणामिक्यःप्रज्ञाः ॥२२८॥

अर्थ—प्रज्ञा चार प्रकार की है ।

१ औत्पत्तिकी, २ वैनयिकी, ३ कर्मजा और ४ पारिणामिकी ।

१ औत्पत्तिकी– हस्तकला, तैरना आदि सीखने को कहते हैं ।

२ वैनयिकी– जो बुद्धि गुरुओं के विनय से आती है ।

३ कर्मजा– ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम से जो प्रगट होती है ।

४ पारिणामिकी– स्वभाव से जो बुद्धि प्रगट होती है ।

सूत्र—क्रोधमानमायालोभकषायविवेकाःकषायविवेकाः ॥२२६॥

अर्थ– कषायविवेक चार प्रकार का है ।

१ क्रोधकषायविवेक, २ मानकषायविवेक, ३ माया-कषायविवेक, और ४ लोभकषायविवेक ।

१ क्रोधकषायविवेक–क्रोध करने की हानियां समझ क्रोध छोड़ने को कहते हैं ।

२ मानकषायविवेक— मान करने की हानियाँ समझ मान क्रोध छोड़ने को कहते हैं ।

३ मायाकषायविवेक— माया करने की हानियाँ समझ माया छोड़ने को कहते हैं ।

सूत्र—अर्हत्सिद्धसाधुभक्तिधर्मवासनाः प्रशस्तरागाः ॥२३०॥

अर्थ— प्रशस्तराग चार प्रकार का है ।

१ अरहन्तकी भक्ति करना २ सिद्धकी भक्ति करना, ३ साधुकी भक्ति करना और ४ धर्म की वासना अर्थात् धारण करने की प्रबल अभिलाषा रखना ।

१ अर्हंतभक्ति—४६ गुण सहित अरहत के गुण गाते हुए खासकर अनन्त चतुष्टय पर दृष्टि देकर दर्शनपूजा अभिषेक करना ।

२ सिद्धभक्ति— ८गुण सहित सिद्धों का स्वरूप समझना कि किस कर्म के अभाव से कौन कौनसा गुण प्रगट

हुआ और उस गुण का क्या स्वरूप है मैं भी शक्ति से सिद्ध समान हूँ आत्मानुभव को पैदाकर सिद्ध हो सकता है।

३ साधुभक्ति— आचार्य उपाध्याय साधु के भेद से तीन प्रकार के साधु या, १ आचार्य २ उपाध्याय ३ शैक्ष्य ४ साधु ५ गण ६ कुल ७ संघ ८ साधु ९ मनोज्ञ १० तपस्वी इन दस प्रकार के साधुओं का अनुगमनभक्ति सेवा करके तद्रूप बनना।

४ धर्मवासनाप्रशस्तराग—आत्मानुभवरत्नत्रय दशलक्षण सोलह कारण रूप धर्म में विशेष उत्साह होने को कहते हैं।

सूत्र—बाधागमब्रह्मचर्यश्रुतसमाधयोविविक्तशय्यासनप्रयोजनानि ॥२३१॥

अर्थ—एकान्त में शयन आसन के ये चार प्रयोजन हैं।

१ बाधागम, २ ब्रह्मचर्य, ३ श्रुत, ४ समाधि।

१ बाधागम—एकान्त में शयन-आसन करने से बाहरी बाधाएं नहीं आतीं अथवा परीषह-उपसर्गादि के आने से सहन शीलता बढ़ती है।

२ —स्त्री, नपुंसक आदि कुत्सितजनों के सम्पर्क से दूर रहने के कारण ब्रह्मचर्य में दृढ़ता आती है।

३ —चित की चंचलता न होने से श्रुतका अभ्यास

निरन्तर बढ़ता है

४ —एकान्त में मन के स्थिर रहने से चित्त की समाधि बढ़ती है।

सूत्र— हितमितपरिमितसूत्रानुवीचिभाषणानि वाचिक विनयाः ॥२३२॥

अर्थ—हितकारीभाषण, प्रियकरभाषण, परिमितभाषण और शास्त्रानुमोदितभाषण ये चार प्रकार का वाचिक विनय है।

सूत्र—कायोत्सर्गस्थितियौगिकीवंदनामुक्ताशुक्तिमुद्रा मुद्राः ॥२३३॥

अर्थ—मुद्रा चार प्रकार की है।

१ कायोत्सर्गस्थितिमुद्रा, २ यौगिकीमुद्रा, ३ वंदना मुद्रा, और ४ मुक्ताशक्तिमुद्रा।

१ कायोत्सर्गस्थितिमुद्रा–कायोत्सर्ग कर हाथों को नीचे लटका कर रखना।

२ यौगिकीमुद्रा—पद्मासन से हाथ पर हाथ रखकर बैठना।

३ वन्दनामुद्रा—जिन भगवान् की वन्दना करने की मुद्रा।

४ मुक्ताशुक्तिमुद्रा—हस्त–संपुट को अंजुलि-बद्ध करना।

सूत्र—सभ्यसभापतिवादिप्रतिवादिनो वादाङ्गाः ॥२३४॥

अर्थ—वाद अर्थात् शास्त्रार्थ के चार अंग होते हैं।

सभ्य, (सभासद) सभापति, वादी, और प्रतिवादी।

सूत्र—आरम्भविषयानारम्भ-अभ्युपगतपक्षास्थापनापरस्थापिताप्रतिषेध-प्रतिषिद्धापरिहारा अप्रतिपत्तयः ॥२३५॥

अर्थ—अप्रतिपत्ति चार प्रकार की होती है।

आरम्भविषयानारम्भ, अभ्युपगतपक्षास्थापना, परस्थापिताप्रतिषेध, और प्रतिषिद्धापरिहार।

१ आरम्भ किये हुए विषय को न चला सकना सो आरंभविषयानारम्भ है।

२ माने हुए पक्ष को न रख सकना अभ्युपगतपक्षास्थापना है।

३ पर के द्वारा रखे गये मत का निषेध न कर सकना परस्थापिताप्रतिषेध है।

४ परके द्वारा किये गये खण्डन का परिहार न कर सकना प्रतिषिद्धापरिहार है।

सूत्र—एकव्यक्तौसर्वात्मनावर्तमानस्यसामान्यस्येतरव्यक्तौ वृत्तेः कारणस्य खण्ड्यविकल्पाः— तद्देशेगमनात्, पिण्डेन सहोत्पादात्, तद्देशे सद्भावादंशवन्तया वा ॥२३६॥

अर्थ—एक व्यक्ति में सर्वात्मरूप से रहने वाला सामान्य यदि इतर व्यक्ति में रहता है, तो उसके विषय में खण्डन करने वाले ये चार विकल्प उत्पन्न होते हैं:—

१ क्या वह सामान्य पूर्व व्यक्तिको छोड़कर अन्य व्यक्ति के देश में गमन करता है, २ अथवा इतर व्यक्ति के पिण्ड के साथ ही उत्पन्न होता है, ३ अथवा उस दूसरे व्यक्ति के देश में उसका सद्भाव पाया जाता है, ४ अथवा क्या वह सामान्य अन्श वाला है ? इन चारों विकल्पों के द्वारा विचार करने पर सामान्य का खण्डन हो जाता है, अर्थात् वह कोई वस्तु नहीं ठहरता ।

सूत्र—एकोपलम्भरूपसहोपलम्भस्य खण्डकविकल्पाः किमेकत्वेनोपलम्भः, एकेनैवोपलम्भः, एकलोलीभावेनोपलम्भः, एकस्यैवोपलम्भो वा ? ॥२३७॥

अर्थ—एकोपलम्भरूपसहोपलम्भ के खण्डन करने वाले चार विकल्प उत्पन्न होते हैं—

१ क्या एकत्व से होने वाले उपलम्भ को एकोपलम्भ कहते हैं, अथवा २ क्या एक के द्वारा ही होने वालेउपलम्भ को एकोपलम्भ कहते हैं, ३ अथवा क्या एक लोली भाव से उपलम्भ को एकोपलम्भ कहते हैं, ४ अथवा एक ही के उपलम्भ को एकोपलम्भ कहते हैं ।

सूत्र—अनुमानादस्वसंविदितज्ञानसिद्धौ तत्साधनं अर्थज्ञप्तिरिन्द्रियमर्थस्तत्सहकारिप्रगुणमनो वा ॥२३८॥

अर्थ—अनुमान से अस्वसंविदित ज्ञान की सिद्धि मानने पर चार विकल्प होते हैं—

१ क्या अस्वसंविदित ज्ञान का साधन अर्थज्ञप्ति है, २ या इन्द्रिय है, ३ अथवा अर्थ (पदार्थ) है, ४ अथवा उसका सहकारी प्रगुण मन है ?

१ अर्थज्ञप्ति ज्ञान स्वभावरूप तुम्हारे असिद्ध है, अर्थ स्वभाव होने पर प्रकटता बिना ज्ञप्ति ही क्या ? २, ३ इन्द्रिय अर्थ विज्ञानसद्भाव बिना सिद्ध नहीं है। ४ मनकी सिद्धि प्रकट ज्ञान बिना असिद्ध है।

सूत्र—ज्ञानेज्ञानक्रियाविरोधेक्रिया किं परिस्पंदात्मिकोत्पत्तिरूपा धात्वर्थरूपाज्ञप्तिरूपावाविरुद्धयते ॥२६६॥

अर्थ—ज्ञान में ज्ञान क्रिया का विरोध करने में खण्डय विकल्प ४ हैं।

१ क्या वह क्रिया परिस्पंदात्मक है, २ अथवा उत्पत्ति रूप है, ३ धात्वर्थरूप है, ४ या ज्ञप्तिरूप है।

१ परिस्पन्दात्मिका क्रिया द्रव्य में होती है, ज्ञान में मानी नहीं गई।

२ स्वसामग्रीविशेष से ज्ञान की उत्पत्ति है, स्वयं में यह व्यवहार नहीं।

३ धात्वर्थ तो क्रियावान् में ही रहता उसका विरोध क्या।

४ ज्ञप्ति तो स्वरूप ही है उसका विरोध असिद्ध है।

सूत्र—ज्ञानान्तरवेद्यत्वे ज्ञानस्यानवस्थाया अभावस्य किं

शक्तिक्षयादीश्वराद्विषयान्तरसञ्चारादद्दष्टाद्वा ॥२४०॥

अर्थ—ज्ञानको ज्ञानान्तरवेद्य माननेपर भी अनवस्था के अभावके हेतुके खण्डय विकल्प चार हैं।

१ क्या शक्तिक्षय से अनवस्था का अभाव है, २ अथवा ईश्वरसे, ३ विषयान्तरमें प्रवेशसे, ४ या अदृष्टसे।

१ शक्तिक्षय होनेपर पूर्व ज्ञानोंके अप्रमाण रह जानेसे विज्ञान, व्यवहारका अभाव हो जायगा।

२ कृतकृत्य ईश्वरको इन बखेड़ोंसे कोई प्रयोजन नहीं।

३ विवक्षित ग्रहणाकांक्षाके रहते हुये अन्याकांक्षा नहीं होती।

४ सीधा स्पष्ट स्वसंवेदनको छोड़कर अदृष्ट कल्पना करना विडम्बना है।

सूत्र–कौतुकभूतिकर्माऽऽजीव निर्मलाः कुशीलाः ॥२४१॥

अर्थ—कुशील साधु ४ प्रकार के हैं।

१ कौतुककुशील, २ भूतिकर्मकुशील, ३ आजीवकुशील, ४ निर्मलकुशील।

सूत्र—उपक्रमनिक्षेपानुगमनया अवताराः ॥२४२॥

अर्थ—अवतार चार प्रकार के हैं।

१ उपक्रम, २ निक्षेप, ३ अनुगम, ४ नय।

सूत्र–ज्ञानस्य सर्वथापरोक्षत्वे प्रकाशता हि किमर्थधर्मः? ज्ञान

धर्मःउभयधर्मःस्वातन्त्र्यं वा ? ॥२४३॥

अर्थ—ज्ञानको सर्वथा परोक्ष माननेपर चार खण्ड्य विकल्प हैं।

१ वह प्रकाशपन क्या अर्थका धर्म है, २ या ज्ञान का धर्म है, ३ अथवा दोनोंका धर्म है, ४ या स्वतन्त्रपना है।

१ अर्थका धर्म है तो अर्थमें रहना चाहिये।

२ ज्ञानका धर्म है तो सर्वथा परोक्ष कैसा।

३ उभय धर्ममें दोनों विकल्प।

४ स्वतन्त्रता में पराश्रयताका अभाव आदि।

सूत्र—द्रव्यक्षेत्रकालभावानां संयोगाः ॥२४४॥

अर्थ—संयोग चार प्रकार के हैं।

१ द्रव्यसंयोग, २ क्षेत्रसंयोग, ३ कालसंयोग, ४ भावसंयोग।

सूत्र— नारका मिथ्यात्वसासादनमिश्राविरतसम्यक्त्वेषु ॥२४५॥

अर्थ—नारकी जीव चार प्रकार के हैं।

१ मिथ्यादृष्टिनारक, २ सासादनसम्यक्त्वीनारक, ३ सम्यग्मिथ्यादृष्टिनारक, ४ अविरतसम्यग्दृष्टिनारक।

सूत्र—पर्याप्तकाश्च ते ॥२४६॥

अर्थ—पर्याप्तकनारकी भी पूर्वसूत्रोक्त चार प्रकार के हैं।

सूत्र—देवाः ॥२४७॥

अर्थ—देव भी चार प्रकार के हैं।

१ मिथ्यादृष्टिदेव, २ सासादनसम्यक्त्वीदेव, ३ सम्यग्मिथ्यादृष्टिदेव, ४ अविरतसम्यग्दृष्टिदेव।

सूत्र—पर्याप्ताश्च ते ॥२४८॥

अर्थ—पर्याप्तदेव भी पूर्वोक्त चार प्रकार के हैं।

सूत्र—वैक्रियककाययोगिनः ॥२४९॥

अर्थ—वैक्रियककाययोगी जीव चार प्रकार के हैं।

१ मिथ्यादृष्टि, २ सासादनसम्यक्त्वी, ३ मिश्र, ४ अविरतसम्यग्दृष्टि।

सूत्र—कृष्णलेश्यकाः ॥२५०॥

अर्थ—कृष्णलेश्यावाले जीव भी पूर्वोक्त चार प्रकारके हैं।

सूत्र—नीललेश्यकाः ॥२५१॥

अर्थ—नीललेश्यावाले जीव भी पूर्वोक्त चार प्रकारके हैं।

सूत्र—कपोतलेश्यकाः ॥२५२॥

अर्थ—कपोतलेश्यावाले जीव भी पूर्वोक्त ४ प्रकार से हैं।

सूत्र—औदारिकमिश्रकाययोगिनो मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतसम्यक्त्वसयोगिषु ॥२५३॥

अर्थ—औदारिकमिश्रकाययोगी जीव ४ प्रकार के हैं।

१ मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती, २ सासादनसम्यक्त्वी, ३ असंयतसम्यग्दृष्टि, ४ सयोगी ।

सूत्र—कार्माणकाययोगिनश्च ॥२५४॥

अर्थ—कार्माणकाययोगी जीव भी पूर्वोक्त चार प्रकार के हैं।

सूत्र—यथाख्यातविहारशुद्धिसंयता उपशान्तक्षीणकषाय सयोगायोगकेवलिनः ॥२५५॥

अर्थ—यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमी आत्मा ४ प्रकार के हैं—

१ उपशान्तकषाय, २ क्षीणकषाय, ३ सयोगकेवली, ४ अयोगकेवली ।

सूत्र—वेदकसम्यग्दृष्टय असंयतसम्यक्त्वदेशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तविरतेषु । ॥२५६॥

अर्थ—वेदकसम्यग्दृष्टि जीव चार प्रकार के हैं—

१ असंयतसम्यग्दृष्टि, २ देशसंयत, ३ प्रमत्तविरत, ४ अप्रमत्तविरत ।

सूत्र—अनाहारका विग्रहगतिसमापन्नसमुद्घातगतकेवल्ययोगकेवलिसिद्धाः ॥२५७॥

अर्थ—अनाहारक जीव ४ प्रकार के हैं—

१ विग्रहगतिको प्राप्त, २ समुद्घातगतकेवली, ३ अयोगकेवली, ४ सिद्ध ।

सूत्र—अज्ञाननिवृत्तिहानोपेक्षाः प्रमाणफलानि ॥२५८॥

अर्थ—प्रमाण के फल ४ प्रकार के हैं—

१ अज्ञाननिवृत्ति, २ हान, ३ उपादान, ४ उपेक्षा।

१ अज्ञाननिवृत्ति—अज्ञान दूर होनेको अज्ञाननिवृत्ति-कहते हैं।

२ हान—छोड़ने योग्य अर्थके छोड़ देनेको हान कहते हैं।

३ उपदान—ग्रहण करनेयोग्य अर्थ ग्रहण करनेको उपादान कहते हैं।

४ उपेक्षा— रागद्वेषके अभावरूप उदासीनभावको उपेक्षा कहते हैं।

सूत्र—शुद्धद्रव्यार्थाशुद्धद्रव्यार्थशुद्धद्रव्यव्यञ्जनाशुद्धद्रव्यव्य-ञ्जनपर्यायनैगमा द्रव्यपर्यायनैगमाः ॥२५९॥

अर्थ—द्रव्यपर्यायनैगम चार प्रकार के हैं।

१ शुद्धद्रव्यार्थपर्यायनैगम, २ अशुद्धद्रव्यार्थपर्यायनै-गम, ३ शुद्धद्रव्यव्यञ्जनपर्यायनैगम, ४ अशुद्धद्रव्य व्यञ्जनपर्यायनैगम।

सूत्र—परमशुद्धद्रव्यप्रदर्शकपरमशुद्धनिश्चयनयशुद्धद्रव्यनि रूपणात्मकशुद्धनिश्चयनयशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकाशुद्धनि-श्चयनयाशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकव्यवहारनया द्रव्यप्रदर्श-कनयाः ॥२६०॥

अर्थ—द्रव्यको प्रदर्शित करनेवाले नय चार प्रकार

के हैं ।

१ परमशुद्धद्रव्यप्रदर्शकपरमशुद्धनिश्चयनय— पर्यायकी अपेक्षा छोड़कर परमशुद्धद्रव्यका प्रदर्शन करनेवाला नय है ।

२ शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकशुद्धनिश्चयनय— शुद्धपर्याय गर्भितशुद्धद्रव्यका निरूपण करनेवाला नय है ।

३ अशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकाशुद्धनिश्चयनय— अशुद्धपर्यायाविष्ट द्रव्यको निरूपण करनेवाला नय है ।

४ अशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकव्यवहारनय— पर्यायाविष्ट अशुद्ध अनेक द्रव्योंके सम्बन्धविषयक अर्थका निरूपण करनेवाला व्यवहारनय ।

सूत्र—स्पृष्टेषत्स्पृष्टसंवृतविवृतानि वचनसंस्कारान्तःप्रयत्नानि ॥२६१॥

अर्थ—वचनसंस्कार के कारणभूत आभ्यन्तर प्रयत्न चार हैं ।

१ स्पृष्ट, २ ईषत्स्पृष्ट, ३ संवृत, ३ विवृत ।

सूत्र—स्वेन्द्रियस्वभावपरद्रव्यपरभावहिंसा हिंसाः ॥२६२॥

अर्थ—हिंसा चार प्रकार की है ।

१ स्वेन्द्रियहिंसा, २ स्वभावहिंसा, ३ परद्रव्यहिंसा, ४ परभावहिंसा ।

१ स्वेन्द्रियहिंसा– अपने द्रव्यप्राणोंका घात या पीडन करना स्वेन्द्रियहिंसा है ।

२ स्वभावहिंसा—रागादि भावोंके कारण अपने स्वभावमय विशुद्ध ज्ञानदर्शनका तिरोभाव करना स्वभावहिंसा है ।

३ परद्रव्यहिंसा—परजीवोंके प्राणोंका घात या पीडन करना परद्रव्यहिंसा है ।

४ परभावहिंसा—परजीवोंको आन्तरिक पीडा पहुंचाना परभावहिंसा है ।

सूत्र— अप्रतिष्ठानजम्बूद्वीपसर्वार्थसिद्धिमेरवःप्रसिद्धाएक-लक्षयोजनकाः ॥२६३॥

अर्थ—एक लाख योजन विस्तार वाले प्रसिद्ध ४ हैं—
१ अप्रतिष्ठाननामकसप्तमनरकीयइन्द्रकबिल, २ जम्बूद्वीप, ३ सर्वार्थसिद्धि, ४ मेरु ।

सूत्र— परमार्थसंस्तवमुनितपरमार्थयतिजनसेवाकुदृष्टिपरित्यागरूपाणि श्रद्धानानि ॥२६४॥

अर्थ—श्रद्धान ४ प्रकारके कार्यरूपमें होता है—
१ परमार्थसंस्तव, २ मुनितपरमार्थ, ३ यतिजनसेवा, ४ कुदृष्टिपरित्याग ।

सूत्र– सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयताःप्रमत्ताप्रमत्तविरतापूर्वकरणानिवृत्तिकरणगुणेषु ॥२६४॥

अर्थ—सामायिकछेदोपस्थापनाचारित्रवाले आत्मा ४ गुणस्थानवर्ती होते हैं।

१ प्रमत्तविरत, २ अप्रमत्तविरत, ३ अपूर्वकरण, ४ अनिवृत्तिकरण।

(अपूर्ण)